शृङ्गार रस का
शास्त्रीय विवेचन

डॉ० इन्द्रपाल सिंह

चौखम्बा प्रकाशन

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

॥ श्रीः ॥

चौखम्बा राष्ट्रभाषा ग्रन्थमाला

४

श्रृङ्गार रस का शास्त्रीय विवेचन

लेखक :-

डॉ० इन्द्रपाल सिंह

एम० ए०, एल एल० बी०, पी-एच० डी०, डी०लिट्०

प्राध्यापक : हिन्दीविभाग,

तिलकधारी महाविद्यालय, जौनपुर

चौखम्बा विद्याभवन

वाराणसी

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रकाशक
चौखम्बा विद्याभवन
(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)
चौक (बनारस स्टेट बैंक भवन के पीछे)
पो० बा० नं० १०६९, वाराणसी २२१००१
दूरभाष : ४२०४०४

सर्वाधिकार सुरक्षित

पुनर्मुद्रित २००५
मूल्य १५०-००

अन्य प्राप्तिस्थान
चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
के० ३७/११७, गोपालमन्दिर लेन
पो० बा० नं० ११२९, वाराणसी २२१००१

*

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
३८ यू. ए., बंगलो रोड, जवाहरनगर
पो० बा० नं० २११३
दिल्ली ११०००७
दूरभाष : २३६३९१

मुद्रक
फूल प्रिण्टर्स
वाराणसी

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

THE

CHOWKHAMBA RASHTRABHASHA SERIES

4

****

S'ṚṄGĀRA RASA KĀ S'ĀSTRĪYA VIVECHANA

(A Critical Discussion of the Sentiment of Love)

By

DR. INDRAPĀLA SINGH

M.A., LL.B., Ph.D., D.Litt.

Hindī Department, Tilakdhari Degree College, Jaunpur.

CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN

VARANASI

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

© CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN
(Oriental Publishers & Distributors)
CHOWK (Behind The Benares State Bank Building)
Post Box No. 1069
VARANASI 221001
Telephone : 2420404

Reprint Edition
2005

Also can be had of
CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN
K. 37/117, Gopal Mandir Lane
Post Box No. 1129
VARANASI 221001

*

CHAUKHAMBA SANSKRIT PRATISHTHAN
38 U. A., Jawaharnagar, Bungalow Road
DELHI 110007
Telephone : 236391

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्राक्कथन

प्रस्तुत ग्रन्थ का नामकरण इस आधार पर नहीं किया गया है कि इसमें संस्कृत के काव्य-शास्त्रीय ग्रन्थों में किये गये शृंगार-रस के विवेचनों से भिन्न कोई मौलिक वा अभूतपूर्व विवेचन है। इसमें पूर्वपक्ष और उत्तरपक्ष का उत्थापन करके न तो कोई विवाद खड़ा किया गया है और न ही किसी अभिनव सिद्धान्त की स्थापना की गई है। इस सम्पूर्ण ग्रन्थ के सम्प्रति दो भाग किये गये हैं। प्रथम में संस्कृत के प्रसिद्ध एवं सुलभ शास्त्रीय ग्रन्थों से शृंगार-रस सम्बन्धी अंशों का आकलन एवं समाचयन किया गया है। उदाहरण उक्त ग्रन्थ से ही, संस्कृत और प्राकृत के दिये गये हैं। विषय को स्पष्ट करने के लिए यथावसर आवश्यक व्याख्या भी कर दी गई है। ग्रन्थारम्भ में ही भरत के रससूत्र की प्रसिद्ध चार व्याख्यायें दे दी गई हैं। इनके व्याख्याकार हैं—भट्टलोल्लट, शंकुक, भट्टनायक एवं अभिनवगुप्त। भट्टलोल्लट का उत्पत्तिवाद, शंकुक का अनुमितिवाद, भट्टनायक का मुक्तिवाद एवं अभिनवगुप्त का अभिव्यक्तिवाद उक्त रस-सूत्र की प्रख्यात व्याख्यायें हैं। काम और शृंगार के व्युत्पत्तिपरक अर्थ देकर उनके सर्वभूत व्यापकत्व, एवं अन्योन्याश्रय-सम्बन्ध का विवरण दिया गया है। इसके अतिरिक्त जब-जब भी कोई नया विषय उठाया गया है तब तब उसको स्पष्ट करने के लिए एक छोटी सी भूमिका अवश्य दे दी गई है। ग्रन्थ का प्रस्तुत प्रथम भाग, अपने मूल रूप में आचार्य भरत के 'नाट्यशास्त्र' (ई० पू० २०० से ३०० वा ४०० के मध्य में), घनंजय के 'दशरूपक' (१० वीं शती ई०), भोजराज (११ वीं शती विक्रमी) के 'शृंगारप्रकाश' तथा 'सरस्वतीकंठाभरण', विश्वनाथ कविराज (१४ वीं शती) के 'साहित्य दर्पण', शारदातनय (१३ वीं शती) के 'भावप्रकाशन' तथा यत्र-तत्र भानुदत्त (१४ वीं शती) की 'रसमञ्जरी' के शृंगार-रस से सम्बद्ध सिद्धान्तों एवं मान्यताओं का समीक्षात्मक एकत्रीकरण है। इसका उद्देश्य है, ग्रन्थ के द्वितीय भाग (संस्कृत-अपभ्रंश भाग) की रचना के लिए एक आधार स्थापित करना। द्वितीय भाग, संस्कृत अपभ्रंश भाग है। ७ वीं शती ई० से लेकर १६ वीं १७ वीं शती तक बिखरे हुए विशाल किन्तु विशद अपभ्रंश-साहित्य के मन्थन से जो शृंगार-रसात्मक सामग्री प्राप्त हुई है उसके तत्व और काव्य सौष्ठव की कसौटी यह प्रथम भाग ही

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

है जो एक प्रकार से उसकी शास्त्रीय-परीक्षा के लिए आकर का काम करेगा। शृंगार रस-सम्बन्धी समग्र सुलभ सामग्री का यह संकलन अपभ्रंश साहित्य में प्राप्त शृंगारिक अवतरणों के शास्त्रीय सन्दर्भान्वेषण की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा।

वस्तुतः हमारा उद्देश्य, इस प्रथम भाग के ही आधार पर, द्वितीय, अपभ्रंश-भाग के समान एक तृतीय, 'आधुनिक हिन्दी-भाग' की रचना करना भी है जिसमें; आधुनिक हिन्दी के प्रबन्ध एवं मुक्तककाव्यों के समस्त शृंगार रसादि के स्थलों का मार्गण एवं विवेचन शास्त्रीय ढंग से ही करना है। इस प्रकार यदि हमारा ध्येय निर्बाध सफल हुआ तो 'शृंगार-रस का शास्त्रीय विवेचन' ग्रन्थ शीघ्र ही तीन भागों में प्रस्तुत हो जाएगा— (१) संस्कृत प्राकृत भाग, (२) संस्कृत अपभ्रंश भाग, (३) संस्कृत-आधुनिक हिन्दी भाग। यह स्पष्ट है कि अन्तिम दोनों भागों के शास्त्रीय विवेचन का आधार यह प्रथम भाग ही रहेगा, जिसमें, शृंगार-रस का सम्पूर्ण शास्त्रीय प्रणयन एवं तत्व-संचयन कर दिया गया है। आलोचनायें, व्याख्यायें और टिप्पणियाँ भी हैं किन्तु इतनी स्वल्प कि मूल शास्त्र-ग्रन्थों की प्रधान धारा में कहीं अवांछित, भ्रामक उद्वेलन, वा अवरोध नहीं होने पाया है। शृंगाररस-सम्बन्धी कुछ और शास्त्रीय ग्रन्थों, जैसे बड़े शाह अकबर की 'शृंगारमंजरी' भानुदत्त की 'रसमंजरी' और 'रसतरंगिणी'; शिगभूपाल (१४ वीं शती) के 'रंजकोल्लास', 'रसोल्लास' और 'भावोल्लास'; रूपगोस्वामी (१५ वीं १६ वीं शती) के 'भक्ति-रसामृतसिन्धु' तथा 'उज्ज्वलनीलमणि' के मतों का उल्लेख, हम ग्रन्थ के प्रथम संकलन-भाग में ही कर देना चाहते थे, किन्तु इन ग्रन्थों के, समय पर उपलब्ध न हो सकने कारण इनसे लाभ न उठाया जा सका। तथापि इतना तो निश्चय है कि उक्त मतों का भी आलोचित-विवेचित समाचयन द्वितीय वा तृतीय भाग में कर दिया जाएगा। द्वितीय भाग 'संस्कृत-अपभ्रंश' भाग भी पूर्णतः प्रस्तुतः है। किन्तु मुद्रण एवं प्रकाशन की सुकरता के लिए उसकी स्वच्छ, सुस्पष्ट प्रतिलिपि करना है। तृतीय भाग (संस्कृत-आधुनिक हिन्दी भाग) की सामग्री भी प्रायः प्रस्तुत ही है। उसके समारम्भ में विलम्ब मेरे डी० लिट्० के शोध-प्रबन्ध के कारण हुआ है, जिसका विषय है—'अपभ्रंश साहित्य में शृंगार रस'। यह प्रबन्ध भी इस वर्ष लखनऊ विश्वविद्यालय द्वारा डी. लिट्. की उपाधि के लिये स्वीकृत हो गया। तृतीय भाग का भी रचना-कार्य अब आरम्भ होगा, आशा है

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

भगवान् सहायता करेगा जिसका सरस, सुरुचिपूर्ण और परम मोहक अखिल ब्रह्माण्डरूपी काव्य न तो मरता है, न जीर्ण ही होता है—'यस्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति'।

इतना तो हुआ मेरे कृतित्व का प्राक्कथन, जिससे ग्रन्थरचना का मेरा सदाशय और मेरी भावी योजना स्पष्ट हो गई होगी। किन्तु कृतित्व की कृतकार्यता की सफलता-विफलता सदाशय और योजना के वश की बात नहीं है। सुधी पाठकों को यदि यह ग्रन्थ तनिक भी उपयोगी सिद्ध हो सका, शृंगार-रस और उसके रस-राजत्व के प्रतिपादन की दिशा में यदि लाभ का एक लव भी उनको प्राप्त हुआ एवं तत्फल-स्वरूप उसका संमोदन इसे मिला तो यह प्रयास सफल होगा।

इस प्रसंग में मैं अपने अनुज चि० विजयनाथ सिंह एम० ए० उपाधीक्षक, अपराधान्वेषण विभाग; एवं प्रिय भ्रातृज चि० शक्तिमान सिंह, एम० ए० (संस्कृत) को उनके सत्सहयोग के लिये शुभाशीष प्रदान करता हूँ तथा अपने सुहृद् श्री डा० त्रिभुवन सिंह एम० ए०, पी-एच० डी०, प्राध्यापक, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, के प्रति, उनके सत्प्रयासों एवं उनकी अमूल्य सहायताओं के लिए, हृदय से आभारी हूँ। उनकी 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' वाली दृष्टि, अध्यवसाय, और मनोयोग के बिना इस ग्रन्थ का प्रकाशन प्रायः असम्भव ही था।

प्रकाशक अंगी होता है, लेखक अंग; अगांगिभाव के समुचित समन्वयन के बिना साहित्य-सृष्टि असम्भव है। इस नाते चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी, का मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूँ जिन्होंने प्रकाशनावलम्ब देकर साहित्य-सेवा का उज्ज्वल भविष्य मेरे लिए प्रशस्त किया है।

भाद्रपद शुक्ल १४
सं० २०२४

विनीत
इन्द्रपाल सिंह

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

विषय-सूची

प्रथम अध्याय

विषय — पृष्ठ

रस: उसकी अभिव्यक्ति ... १-२३

द्वितीय अध्याय

भोजकृत श्रृंगार रस का विवेचन ... २४-६३

- अनुराग-स्थापन २५
- अनुराग के प्रभेद ३५
- श्रृंगार-प्रकाश में श्रृंगार-रस ३८
- विप्रलम्भ श्रृंगार के भेद एवं तद्गत विप्रलम्भ की स्थिति ... ३९
- संभोग श्रृंगार के भेद ५४
- विप्रलम्भ श्रृंगार के नायिकाविषयक भेदोपभेद ... ५७
- विप्रलम्भ श्रृंगार के ऋतुविषयक भेद ५८
- नायिकाओं की रमणीयताओं के भेद ५९
- नायक-नायिका-भेद ६१

तृतीय अध्याय

भरत के नाट्यशास्त्र में श्रृंगार-रस ... ६४-८६

- नायिकादि के अलंकार ६६
- पुरुषगत अलंकार ७०
- स्वभावानुसार स्त्रियों के भेद ७१
- स्त्रियों की प्रकृतियाँ और कामोत्पत्ति ७४
- स्त्रियों की दश कामदशायें ७५
- वासक के भाव-अभाव की दृष्टि से नायिकाओं के भेद ... ७८
- वेश्या, कुलजा एवं प्रेष्या नायिकाओं द्वारा सुप्त प्रिय का प्रबोधन ८२
- नायक के भरत-कृत दो भेद ८२
- यौवन के चार भेद ८६
- स्त्रीसम्प्रयोग (मैथुन) विषयक पुरुषों के पाँच भेद ... ८७

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

चतुर्थ अध्याय

दशरूपक में श्रृंगार ... ९०–१५६

श्रृंगार के तीन विभाग ९६

नायक के सामान्य गुण १११

नायकों के विशेष भेद ११५

श्रृंगारी नायकों के भेद ११७

नायकों के सहायक १२१

नायकों के सात्विक गुण १२२

नायिका-भेद १२७

नायिकाओं के आभूषण १४४

नायिकाओं की सहायिनी १४४

यौवन में स्त्रियों के अलंकार १४५

नायक के व्यापार की चार वृत्तियाँ १५६

पंचम अध्याय

साहित्यदर्पण में श्रृंगार-रस का विवेचन ... १५७–१९३

नायक के भेद १७१

नायक के सहायक १७३

नायिका-भेद १७३

नायिकाओं के अलंकार १८५

नायिकाओं की अनुराग-चेष्टायें १९२

भावाभिव्यक्ति के अन्य उपाय १९३

षष्ठ अध्याय

शारदातनय के भावप्रकाश में श्रृंगार ... १९४–२०९

विभाव १९४

अनुभाव १९५

रस और उसके भेद १९८

श्रृंगारोचित पात्र २०४

नायिकाओं के भेद २०४

यौवन की अवस्थायें २०७

वैशिक नायक के लक्षण २०८

शील के आधार पर नायिकाओं के भेद २०९

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

शृङ्गाररस का शास्त्रीय विवेचन

प्रथम भाग

(संस्कृत-प्राकृत)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

रस : उसकी अभिव्यक्ति

भिन्न भिन्न विषयों के रचयिताओं का विवरण देते हुए राजशेखर ने 'काव्य-मीमांसा' के प्रथम अध्याय में लिखा है...'रूपक निरूपणीयं भरतः, रसाधिकारिकं नन्दिकेश्वरः' भरत ने रूपक अर्थात् नाट्य-विषय पर एवं नन्दिकेश्वर ने रस विषय पर अपनी-अपनी ग्रन्थ-रचना की। भरत मुनि ने नाट्य तथा तदात्मस्वरूप रस की सृष्टि का कारण स्वयं ब्रह्मा को माना है। नाट्य-वेद की रचना भगवान् ब्रह्मा ने चारों वेदों से सामग्री लेकर की—'ऋग्वेद से पाठ्यांश, सामवेद से गीत, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्व से रस'[1]। नाट्यशास्त्र को 'चतुर्वेदांगसम्भव' एवं 'भगवता-सृष्टो' कहकर महामुनि ने उसकी दिव्यता, पावनता एवं रसमत्ता की ओर संकेत किया है। श्रुति ने 'रसो वै सः' वाक्य द्वारा रस को परब्रह्म कहा है। भरत के मतानुसार 'रस के बिना किसी भी अर्थ वा विषय का प्रवर्तन, आरम्भ या आविष्कार सम्भव नहीं है।'[2] 'काव्य हो अथवा पंचतत्त्व-विरचित सृष्टि के अन्य भोज्य, आस्वाद्य तथा दृश्य, कोई भी अन्य पदार्थ हों, रस-रूप में ब्रह्म सर्वत्र विद्यमान है। वही जल है, वही ज्योति है, वही रस, वही अमृत है। वृक्षों में, औषधियों में, तृणादिकों में वही रस रूप से रहता है।'[3] गीता में भगवान् ने कहा है 'रसोऽहमप्सुकौन्तेय'—हे कौन्तेय ! जल में रस मैं हूँ।

भरतमुनि का रसविषयक लक्षण सूत्र-अत्यन्त प्रसिद्ध है। उनके अनुसार 'विभाव, अनुभाव और व्यभिचारियों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती

---

१. एवं संकल्प्य भगवान् सर्ववेदाननुस्मरन्।
नाट्यवेदन्ततश्चक्रे चतुर्वेदांगसम्भवम्॥ १६ ॥
जग्राह पाठ्यमृग्वेदात्सामभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि ॥ १७ ॥
.... ।
एवं भगवता सृष्टो ब्रह्मणा सर्ववेदिना ॥ १८ ॥ (ना० शा०)

२. नहि रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्तते। (ना०शा० प्रथमोध्यायः)

३. आपो, ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म। स एव ब्रह्मरूपो भर्गो रसः तृणवृक्षौषध्यादिषु स्थावरेषु च स एव रसरूपेण वसतीत्यर्थः। (घृ० क० पृ० १०३)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

है।'[1] इस सूत्र की व्याख्या भट्टलोल्लट, शंकुक, भट्टनायक एवं अभिनवगुप्त ने स्वमतानुसार भिन्न-भिन्न अर्थों में की है। भट्टलोल्लट मीमांसक थे अतः वे कार्य-कारणवाद के आधार पर विभावादिकों को उत्पादक (कारण) एवं रस को उत्पाद्य (कार्य) मानते हैं। मिट्टी, दण्ड और चक्रादि जिस प्रकार घट को उत्पन्न करते हैं ठीक उसी प्रकार विभावादिक रस को उत्पन्न करते हैं।[2] यह मत उत्पत्तिवाद के नाम से विख्यात हुआ। भट्टलोल्लट के मतानुसार रस की अनुभूति केवल राम दुष्यन्तादि पात्रों को ही होती है, नट अथवा सामाजिक को नहीं। क्योंकि रस के उत्पादक कहे जाने वाले सीता-दुष्यन्तादि विभाव, उनके प्रेमजन्य चेष्टारूप अनुभाव तथा हर्ष-विषादादि व्यभिचारी राम-दुष्यन्तादि के प्रत्यक्ष-समक्ष घटित हुए थे, उनके समवर्ती थे अतएव केवल उनको ही रसमग्न कर सकते थे, परवर्ती नटों अथवा सभ्यों, सामाजिकों (दर्शकों, श्रोताओं) को नहीं जो विभावादिकों के प्रत्यक्ष-दर्शी न होकर क्रमशः केवल अवस्थानुकर्ता (अभिनेता) तथा रूपक, अभिनय अथवा अवस्थानुकृति के दर्शकमात्र हैं। राम-दुष्यन्तादि का अभिनय करनेवाले नटों के अनुकरण को देखकर सामाजिकों को राम-दुष्यन्तादि की भ्रान्तिमात्र होती है जैसे सीप में चाँदी की। रस की वास्तविक अनुभूति करने वाले राम-दुष्यन्तादि की भ्रान्ति ही सामाजिकों के हृदय में उपचार (परम्परा) से रस की उत्पत्ति कर देती है। नट पर राम का आरोप कर लेने से ही रसोत्पत्ति का यह मत स्थापित नहीं हो पाया। लोल्लट का यह मत नितान्त दुर्बल और दुष्ट आधार पर खड़ा किया गया है। यदि आश्रय (राम-दुष्यन्तादि) और आलम्बन (सीता-शकुन्तलादि) की प्रत्यक्ष सत्ता से ही रस-सृष्टि सम्भव होती, परोक्ष कथा-श्रवण अथवा आङ्गिक, वाचिक और आहार्य अभिनयों द्वारा नहीं तब तो आदिकवि के संश्लिष्ट, बिम्बाधायक सूक्ष्म प्रकृति-चित्रण, कालिदास की उपमा, भारवि के अर्थ गौरव, दण्डी के पदलालित्य और माघ के 'त्रयो गुणाः' के ढिंढोरा पीटने वाले श्रव्य और दृश्यकाव्यों का अस्तित्व ही निरर्थक एवं असम्भव हो

---

१. तत्र विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः'

(६·३१ गद्यभाग ना० शा०)

२. "विभावैर्ललनोद्यानादिभिरालम्बनोद्दीपनकारणैः रत्यादिको भावो जनितः; अनुभावैः कटाक्षभुजाक्षेपप्रभृतिभिः कार्यैः प्रतीतियोग्यः कृतः; व्यभिचारिभिर्निर्वेदादिभिः सहकारिभिरुपचितो; मुख्यया वृत्त्या रामादावनुकार्ये; तद्रूपतानुसन्धानान्नर्तकेऽपि प्रतीयमानो रस, इति भट्टलोल्लटप्रभृतयः"।

(का० प्र० ४. २७-२८. ४३ वृत्ति)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

गया होता। अनादिकाल से चली आती हुई रसों की अविच्छिन्न परम्परा को समग्र और प्रत्यग्र रूप में वहन करने वाले काव्य और उनके कविगण इन रसों के चिरन्तन उद्गाता ही तो हैं। भ्रान्ति एवं उपचार पर आधारित लोल्लट के मत का खण्डन नैयायिक शंकुक ने किया।

शंकुक का मत अनुमितिवाद के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसके अनुसार विभाव, अनुभाव और व्यभिचारीभावों के संयोग से रस का अनुमान सामाजिकों को होता है। अतः विभावादिक अनुमापक हुए और रस अनुमाप्य। धूम-दर्शन से पर्वत के अग्निमान् होने के ज्ञान को अनुमिति कह सकते हैं। पर्वत अग्निमान है, क्योंकि वह धूमवान् है—इस न्याय के अनुसार ही सामाजिक परामर्श (वितर्क) करता है कि नट रसमान् है, क्योंकि वह अनुभाववान् है। जिस प्रकार वास्तविक अनुकार्य राम-दुष्यन्तादि के अनुभावावादिकों को देख कर सामाजिकों को उनकी रसमग्नता की प्रतीति हो जाती है उसी प्रकार नट अर्थात् अनुकर्ता की आङ्गिक चेष्टाओं को देख कर उनमें रस की अनुमिति हो जाती है। इस अनुमिति की पुष्टि के लिए शंकुक ने 'चित्रतुरगन्याय' की भी कल्पना की है। चित्र में बने हुए घोड़े को देख कर, मिथ्या होते हुए भी, जिस प्रकार हम उसकी कृत्रिमता को भूल कर, उसे वास्तविक घोड़ा मान लेते हैं उसके मिथ्या-घोटकत्व में भी घोटकत्व का अनुमान कर लेते हैं, उसी प्रकार नटों के द्वारा अभिनीत मिथ्या विभावादिकों को भी वास्तविक मान कर हम नटों में स्थायीभाव और रस का अनुमान कर लेते हैं। सामाजिकों को इस अनुमान से ही रसोद्बोध हो जाता है। सामाजिक नटों में रसोत्पत्ति का अनुमान कर स्वयं भी रसास्वादन करने लगता है। इस प्रकार श्री शंकुक के मत का पूर्ण निदर्शन काव्यप्रकाशकार ने बड़ी ही पटुता के साथ किया है।[१] शंकुक का

---

१. "राम एवायम् अयमेव राम इति, न रामोऽयमित्यौत्तरकालिके बाधे रामोऽयमिति, रामः स्याद्वा न वाऽयमिति, रामसदृशोऽयमिति, च सम्यङ्मिथ्या-संशय-सादृश्य-प्रतीतिभ्यो विलक्षणया चित्रतुरगादिन्यायेन रामोऽयमिति प्रतिपत्त्या ग्राह्ये नटे—

सेयं ममाङ्गेषु सुधारसच्छटासुपूरकर्पूरशलाकिका दृशोः।
मनोरथश्रीर्मनसः शरीरिणी प्राणेश्वरी लोचनगोचरं गता॥
दैवादहमद्य तया चपलायतनेत्रया वियुक्तश्च।
अविरलविलोलजलदः कालः समुपागतश्चायम्॥

इत्यादिकाव्यानुसन्धानबलाच्छिक्षाभ्यासनिर्वर्तितस्वकार्यप्रकटनेन च न नटेनैव प्रकाशितैः कारणकार्यसहकारिभिः कृत्रिमैरपि तथाऽनभिमन्यमन्यमानैर्विभावा-

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अनुमितिवाद भी लोल्लट के आरोप वा भ्रान्तिवाद के समान विद्वानों को ग्राह्य नहीं हो पाया। रस के शास्त्रीय-स्वरूप-निरूपण एवं आस्वादन प्रकार के निर्देशन पर यदि हम ध्यान दें तो उक्त मतों के दोष स्पष्ट हो जाते हैं। साहित्यदर्पण-कार ने कहा हैं—'अन्तःकरण में सत्वगुण के उद्भव (उपक्रम) से अखण्ड, स्वयं प्रकाशरूप, आनन्दमय, शुद्ध ज्ञानस्वरूप रस का साक्षात्कार होता है। रस के आस्वादन के समय विषयान्तर का ज्ञान नहीं रह जाता क्योंकि वह ब्रह्मास्वाद के समान होता है। इस रस का सार अलौकिक चमत्कार है। अर्थात् आत्मा में रस का स्फुरण, आस्वादान होते ही चित्त विस्तृत और विस्मित हो जाता है। इस रस का आस्वादन कोई पुण्यशाली ही अपने अभिन्न आकार की भाँति करता है।'[१] लोल्लट के उत्पत्तिवाद के अनुसार 'विभावादिक रस को उत्पन्न करते हैं, वे कारण हैं और रस कार्य। किन्तु यदि रस कार्य होता तो वह विभावादि के कारण (ही) उत्पन्न होता। रस की प्रतीति के समय विभावादिकों की प्रतीति, तब, न हो पाती, क्योंकि कारण और कार्य एक साथ प्रतीत नहीं हुआ करते। चन्दन के स्पर्श का ज्ञान और चन्दन के स्पर्श से उत्पन्न सुख का ज्ञान एक काल में नहीं होता। परन्तु रस की प्रतीति के काल में विभावादिकों की भी प्रतीति होती है। विभावादिकों के समूहालम्बनात्मक ज्ञानरूप से ही रस की प्रतीति होती है। अतः विभावादि-ज्ञान रस का कारण नहीं और इसके सिवा अन्य किसी की कारणता सम्भव नहीं, अतः विभावादि-समूहालम्बनात्मक होने के कारण रस किसी का कार्य नहीं हो सकता।'[२]

नटों पर राम-दुष्यन्तादि के आरोप से अथवा रजतशुक्तिवत् नटों में राम-दुष्यन्तादि की भ्रान्ति से सामाजिकों में रसास्वादन सम्भव नहीं। इसी प्रकार

दिशब्दव्यपदेश्यैः 'संयोगात्' गम्यगमकभावरूपात्, अनुमीयमानोऽपि वस्तु सौन्दर्य-बलाद्रसनीयत्वेनान्यानुमीयमानविलक्षणः स्थायित्वेन सम्भाव्यमानो रत्यादिर्भाव-स्तत्रासन्नपि सामाजिकानां वासनया चर्व्यमाणो रस' इति श्रीशंकुकः।"

(का० प्र० का० २७-२८, सू० ४३ वृत्ति)

१. सत्त्वोद्रेकादखण्डस्वप्रकाशानन्दचिन्मयः।
वेद्यान्तरस्पर्शशून्यो ब्रह्मास्वादसहोदरः॥ २॥
लोकोत्तरचमत्कारप्राणःकैश्चित्प्रमातृभिः।
स्वाकारवदभिन्नत्वेनायमास्वाद्यते रसः॥ ३॥

(सा० द० तृतीय परिच्छेद)

२. यदि रसः कार्यः स्यात्तदा विभावाविज्ञानकारणक एव स्यात्। ततश्च रसप्रतीतिकाले विभावाद्यो न प्रतीयेरन्। कारणज्ञानतत्कार्यज्ञानादीनां युगपद-

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

शंकुक के अनुमितिवाद अथवा चित्रतुरगन्याय से भी नटों में रसोत्पत्ति का अनुमान कर सामाजिकों के हृदय में रस की चर्वणा सिद्ध नहीं की जा सकती है। उक्त उत्पत्ति, आरोपवाद और अनुमितिवाद से रससम्बन्धी अन्य बाधायें भी उपस्थित होती हैं। रस वेद्यान्तरस्पर्शशून्य है, रसास्वादन काल में किसी भी अन्य विषय का ज्ञान रह नहीं सकता। स्वाकारावदभिन्नत्वेन रस का आस्वादन होता है। जैसे गौरोऽहम्, काणोऽहम् कह कर, आत्मा से भिन्न अपने शरीर के आकार को हम आत्मा से अभिन्न ही मानते हैं उसी प्रकार आत्मा से भिन्न होने पर भी रस उससे अभिन्न प्रतीत होता है। उपर्युक्त अनुमिति और आरोप की दशा में तो इस प्रकार की एकात्मकता सम्भव नहीं है। इन दोनों दशाओं में यह ज्ञान सामाजिकों को सदा बना ही रहेगा कि अमुक राम-दुष्यन्तादि नहीं अपितु उनका अनुकर्त्ता नट मात्र है। विभावादिकों से सीधा सम्बन्ध न होने के कारण न तो नटों को ही रसमग्नता होगी और न सामाजिकों को ही। इसके अतिरिक्त रस स्वप्रकाश भी कहा गया है। रसात्मकता ही रस का सार है। वह स्वाभिन्नास्वाद विषय होता है, स्वयमेव आस्वाद्य होता है। उसके आस्वादन में विभावादिकों की कारणता नहीं होती। वह प्रकाश (ज्ञान) स्वरूप है; अतः ज्ञान का विषय नहीं है, अज्ञेय है। जैसे घट के ज्ञान के अनन्तर 'घटमहं जानामि' कहने में ज्ञाता और उसके ज्ञानरूप घट का भेद स्पष्ट प्रतीत होता है, उसी प्रकार रस और उसके ज्ञान में भेद घटित नहीं हो सकता क्योंकि रस स्वसंवेद्य अतः ज्ञान स्वरूप ही है। अनुमिति और आरोप द्वारा सामाजिक नट में रसास्वादन की कल्पना करता है और तब उस कल्पित रसानुभूति की अनुभूति वह परम्परा से स्वयं करता है। इस समग्र प्रक्रिया में कृत्रिमता है—मानो किसी यान्त्रिक क्रिया से बहता हुआ कल्पित रस नट से सामाजिक में पहुँचा दिया गया हो। स्वयंप्रकाश, स्वयंवेद्य रस की प्रतीति, नट-हृदय से सामाजिक तक की शोभायात्रा में प्रायः स्वांग मात्र रह जाती है। रस का प्रत्यक्ष ज्ञान न होने के कारण उसकी प्रतीति हो ही नहीं पाती।

अब भरतमुनि के रससूत्र की तृतीय व्याख्या भट्टनायक ने की। इनकी व्याख्या भुक्तिवाद के नाम से प्रख्यात है। इनके अनुसार विभावादि रस के भोजक हैं और रस भोज्य। इन्होंने काव्य के सम्बन्ध में तीन क्रियायें (व्यापार)

दर्शनात्। नहि चन्दनस्पर्शज्ञानं तज्जन्यसुखज्ञानं चैकदा सम्भवति। रसस्य च विभावादि समूहालम्बनात्मकतयैव प्रतीतेर्न विभावादिज्ञानकारकत्वमित्याभिप्रायः। यस्मादेष विभावादि समूहालम्बनात्मकः। तस्मान्न कार्यः·········
(सा० द० ३-२० तथा कारिका)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

मानी हैं—अभिधा, भावकत्व और भोजकत्व। अभिधा की सहायता से काव्य के वाच्य अर्थ का बोध होता है। अर्थ-बोध के उपरान्त भावकत्व व्यापार के द्वारा सामाजिक या श्रोता राम-दुष्यन्तादि पात्रों की भावना के साथ अर्थानुसन्धान अर्थात् विभावन (साधारणीकरण) द्वारा अपनी भावनाओं का तादात्म्य स्थापित करता है। इस तादात्म्य से रामादि पात्रों की रामता, विशेषता लुप्त हो जाती है एवं साधारणीकृति की अवस्था उत्पन्न हो जाती है। इस साधारणीकरणसे रामादि साधारण बन कर उनके रसास्वादन, चवर्णा के अनुकूल हो जाते हैं। रामादि के साथ भावतादात्म्य होते ही सामाजिक का मन रजस् तथा तमस् गुणों से मुक्त हो कर सत्वगुण से अभिभूत हो जाता तथा समस्त भौतिक इच्छाओं से स्वतंत्र हो जाता है। सत्वगुण-सम्पन्न होते ही वह रसास्वादन की पूर्ण स्थिति में आ जाता है। यह रसास्वादन भोजकत्व व्यापार के कारण होता है। इसकी समुचित व्याख्या काव्यप्रकाशकार ने की है[१]। भट्टनायक के इस सिद्धान्त से अभिनवगुप्त सहमत नहीं हुए। उनके अनुसार इनके प्रतिपादित भावकत्व और भोजकत्व व्यापारों का कोई शास्त्रीय आधार नहीं था। किन्तु भट्टनायक के साधारणीकरण के सिद्धान्त को अभिनवगुप्त ने ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया।

अभिनवगुप्त व्यंजनावादी और ध्वनिवादी हैं। व्यंजना के द्वारा अभिव्यक्त व्यंग्यार्थ जब अभिधा द्वारा उद्‌बुद्ध वाच्यार्थ से अधिक चमत्कारक होता है तब वह काव्य ध्वनिकाव्य कहा जाता है।[२] अभिनवगुप्त रस को भी ध्वनि का ही एक भेद मान कर उसे रसध्वनि कहते हैं। उनके अनुसार रस अभिधा से वाच्य वा लक्षणा से लक्ष्य न होकर व्यंजना से व्यंग्य होता है। विभावानुभावादि रस के अभिव्यंजक तथा रस अभिव्यंग्य हैं। अपने लौकिक जीवन में मानव नित्यप्रति नये-नये अनुभव प्राप्त करता रहता है। इन अनुभवों की पुनरावृत्ति होती रहती है। पुनरावृत्ति इन नये पुराने अनुभवों को वासनाओं में परिणत करता रहता है। ये वासनायें भी दृढ़मूल होती-होती धीरे-धीरे संस्कार बन

---

१. 'न ताटस्थ्येन नात्मगतत्वेन रसः प्रतीयते, नोत्पद्यते, नाभिव्यज्यते अपि तु काव्ये नाट्ये चाभिधातो द्वितीयेन बिभावादिसाधारणीकरणात्मना भावकत्वव्यापारेण भाव्यमानः स्थायी सत्त्वोद्रेकप्रकाशानन्दमयसंविद्विश्रान्तिसतत्त्वेन भोगेन भुज्यते' इति भट्टनायकः। (का० प्र० का० २७-२८ सू० ४३ वृत्ति)

२. 'वाच्यातिशयिनि व्यंग्ये ध्वनिस्तत्काव्यमुत्तमम् ॥ १ ॥ वाच्यादधिकचमत्कारिणि व्यंग्यार्थे ध्वन्यते अस्मिन्निति व्युत्पत्त्या ध्वनिर्नामोत्तम काव्यम्। (का० द० ४-१ तथा वृत्ति)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

जाती हैं। इन्हीं संस्कारों को हम भाव तथा स्थायीभाव कह सकते हैं। रसानुभूतिपर्यन्त जो भाव स्थिर रहते हैं उनको स्थायी तथा बीच में लुप्त होकर पुनः उठने वाले एवं स्थायी भावों के सहायक और पोषक भाव जो समुद्र में तरंगों के समान उन्हीं (स्थायी भावों) में निमग्न, उन्मग्न होते रहते हैं, उन्हें व्यभिचारीभाव कहते हैं। ये स्थायीभाव विरुद्धाविरुद्ध सभी इतर भावों को उसी प्रकार आत्मसात् कर लेते हैं जैसे समुद्र सब प्रकार के खारे या मीठे जल को तद्रूप बना लेता है।[१] कहा जाता है कि उक्त वासनाख्य संस्कारों से युक्त सहृदय पुण्यवान वैसे ही रसास्वादन करता है जैसे कोई विशिष्ट योगी ब्रह्मानन्द का।[२] अभिनवगुप्त के अनुसार विभावानुभाव व्यभिचारिभाव रस को अभिव्यक्त करते हैं। लेकिन यह अभिव्यक्त रस आस्वादित उसी के द्वारा होता है जिसके हृदय में रति आदि इदानींतनी (इस जन्म की) और प्राक्तनी (पूर्व जन्म की) वासनायें विद्यमान रहती हैं।[३] सामाजिक के इस रस-दशा को प्राप्त होने के पूर्व यह आवश्यक है कि वह स्वयं तथा रसाभिव्यंजक राम-सीतादि विभाव अपनी वैयक्तिकता का त्याग कर साधारणीकृत हो जाय। दोनों की जब व्यक्तिगत विशेषतायें लुप्त हो जायँ, जब दोनों तदात्म और एकाकार हो जायँ तब ही रसानुभूति हो पाती है अन्यथा नहीं। सामाजिक की यह दशा शैव-वेदान्त की विमर्श दशा से मिलती-जुलती है जब साधक ब्रह्ममय होकर 'शिवोऽहम्' की अनुभूति करने लगता है। अभिनवगुप्त ने भट्टनायक के विभावन व्यापार और साधारणीकरण नामक सिद्धान्तों को स्वीकार कर जिस अभिव्यक्तिवाद की स्थापना की वह तत्कालीन और परवर्ती अधिकांश विद्वानों को मान्य हुआ। इसका कारण इस मत की दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक आधार-भित्ति है। इस मत की दार्शनिकता रस की अनुभूति की ब्रह्मास्वाद-सहोदरता में निहित है तथा मनोवैज्ञानिकता सामाजिक एवं विभावादिकों के

---

१. 'रसावस्थः परं भावः स्थायितां प्रतिपद्यते ॥ (सा० द० १–१)
विशेषादाभिमुख्येन चरन्तो व्यभिचारिणः ।
स्थायिन्युन्मग्ननिर्मग्नाः कल्लोला इव वारिधौ ॥ (द० रु० ४–७)
विरुद्धैरविरुद्धैर्वा भावैर्विच्छिद्यते न यः ।
आत्मभावं नयत्यन्यान् स स्थायी लवणाकरः ॥ (द० रु० ४–३४)

२. 'पुण्यवन्तः प्रमिण्वन्ति योगिवद्रससंततिम् ॥ (सा० द० ३–३ कारिका)

३. 'न जायते तदास्वादो विना रत्यादिवासनाम् ।
वासना-वेदानींतनी प्राक्तनी च रसास्वादहेतुः ॥'
(सा० द० ३–९ तथा कारिका)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

परस्पर तादात्म्य और समानरसमग्नता में। अभिनवगुप्त का उक्त व्यंजनावादी मत भरतमुनि के मतों से बहुत मेल खाता है। इसलिए भी विद्वानों ने इसे बिना किसी ननुनच के स्वीकार कर लिया। भरत के मतानुसार विभाव, अनुभाव और व्यभिचारिभाव, जिनको प्रवीण नट उपस्थित करता है, सामाजिकों के हृदय में विराजमान स्थायिभावों को रस रूप में परिणत कर चर्वणा (आस्वादन) के योग्य बना देता है। दूसरे शब्दों में रसास्वादन करने वाली मानवीय चित्तवृत्तियाँ स्थायिभावों के रूप में हृदय में निवास करती हैं। सामाजिक जब अभिनय देखता है तो ये 'स्थायिभाव' विभावादिकों के सम्पर्क मे आकर, उनकी व्यंजक शक्ति के द्वारा रस में परिवर्तित किये जाकर आनन्दानुभूति का विधान करते हैं। इसी आनन्दोपभोग को रसानुभूति भी कहते हैं जो श्रव्यकाव्य के मनन एवं नाटकीय अभिनयों के दर्शन द्वारा भी सम्भव है। सामान्य जीवन में घटित होने वाले शृंगारिक अथवा वीरतासूचक कार्य नाट्यरस या सामान्य रस नहीं कहे जा सकते। भरत ने उक्त आनन्दानुभूति का वर्णन करते हुए उसकी तुलना उस रस से की है जो विविध प्रकार के सुस्वादु व्यंजनों के उपभोग के समय प्राप्त होता है। स्मरणीय है कि उक्त व्यंजनों के भोजन के समय मधुर तिक्तादि षड्रस भोक्ता की जिह्वा में सूक्ष्म, अमूर्त रूप में विद्यमान रहते हैं, जो विविध स्वादयुक्त व्यंजनों के मिश्रित रससमूह से एक स्वतन्त्र रस के रूप में उद्दीप्त हो उठते हैं। इन व्यंजनों तथा अभिनयों में अनुभूत होने वाले रसों का आस्वादन व्यंजनों के भोजकों अथवा अभिनय के दर्शकों पर निर्भर करता है। उक्त व्यंजनों के उपादान (सामग्री) तथा नटों की विविध अनुकरण-सम्बन्धी आकृतियाँ उन रसों की व्यंजिकायें अथवा उद्घाटिकायें हैं जो व्यक्ति में सूक्ष्मतः निहित रहते हैं न कि उन रसों के उपभोग के रचनात्मक साधन। इस प्रकार अभिनवगुप्त ने प्रमाणित (सिद्ध) कर दिया है कि काव्य, नाट्य एवं सुरुचिपूर्ण व्यंजनों से प्राप्त रसानुभव में व्यंजनावृत्ति की मुख्य साधनता है।[1]

---

[1] Abhinavagupta's new system of aesthetic enjoyment, is fully based on Bharata's Rasa Sutra and Bharata's explanation of the process of enjoyment of Rasa as contained in the Natya Shastra. He has established that Vibhāva, Anubhāva and Vyabhichāri bhāva presented by the clever actors, help the respective sthāyibhāvas or permanent receptive moods of different Rasas situated within the careful and attentive spectators to develop into different Rasas so that

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu. Collection.

अभिनव का यह सिद्धान्त भरत के रस-विवरण से साम्य रखता है। छठे अध्याय में भरत ने रसों और उनकी निष्पत्ति पर विचार किया है। अपने प्रसिद्ध रस-सूत्र 'विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः' को सामान्य तुलनात्मक दृष्टान्तों से स्पष्ट करते समय उन्होंने श्रव्य-काव्य और नाट्यगत रसानुभूति की प्रक्रिया को सुस्वादुव्यञ्जनोपभोगगत रसानुभूति की प्रक्रिया से तुलना की है,

---

they may be enjoyed by the spectators. In other words permanent receptive moods for different Rasas eternally exist in the form of Sthāyibhāvas within all human beings and when the latter witness any preformance these Sthāyibhāvas due to the contact of the Vibhāvas, Anubhāvas and Vyabhichari bhāvas presented on the stage manifest themselves by the suggestive capacity of Vibhāva and others into the developed form of Rasas which in turn afford enjoyment. This enjoyment alone is called Rasānubhāva which is possible only through the poetry or dramatic performances. The S'ringāra, Vīra and other actions in ordinary life are not to be called as Nātya-Rasas or even as Rasas. This method of enjoyment of Rasas has been clearly illustrated by Bharat himself who equates it with the enjoyment felt by persons while they relish tasteful food comprising of a variety of ingredients and served along with vegetables of several tastes. It will be observed that in this illustration of the enjoyment of a feast, the six Rasas—sweetness etc. are always present in subtle forms in the tongues of persons and that they are merely kindled to manifest and develop into such a single form of Rasa which is enjoyed as a jumble of Rasas on account of the combination of various things and touch with the foodstuffs relished. The enjoyment of the Rasas in food or the Rasas in dramatie performances depends only upon the persons who relish the food or carefully witness the Vibhāva etc. in the performances raspectively.

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

एक स्थान पर नहीं दो-दो, तीन-तीन स्थानों पर। उक्त सूत्र की स्थापना करने के उपरान्त वे कहते हैं—'विविध प्रकार के व्यजंन (दूध,घी आदि) औषधि (हल्दी, चिचा, इमली, चूका नामक साग) और द्रव्य (गुड़ादि) के संयोग से जैसे रस की निष्पत्ति होती है वैसे ही विविध प्रकार के भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। जैसे गुड़ आदि द्रव्य, दूध आदि व्यंजन (व्यज्यते, भ्रक्ष्यते, अन्नादि संयोज्यते अनेन) चिचा, हरिद्रा आदि से छहों रसों (मधुर, तिक्त, अम्ल, लवण, कटु, कषाय) की सिद्धि, परिपाक वा अभिव्यक्ति होती है, वैसे ही नाना प्रकार के भावों के संयोग अनुकूलाचरणादि से स्थायीभाव रसत्व को प्राप्त होते हैं।[1] रसों के आस्वादन विधि की चर्चा करते हुए वे कहते हैं—जैसे नाना प्रकार के दुग्धादि संयोजकों (व्यंजनों) से परिष्कृत अन्न को खाता हुआ रसिक मनुष्य रसास्वादन करता और हर्ष का अनुभव करता है, वैसे ही नाना भावो से व्यंजित, वाचिक, आङ्गिक और सात्विक अभिनय से संयुक्त स्थायीभाव का सचेतस, हृदयवान् सामाजिक आस्वादन भी करता तथा हर्षित भी होता है।[2] इन उदाहरणों से यह निश्चित हो जाता है कि भरत-मुनि भी व्यंजना वृत्ति द्वारा रस को व्यंजित मानते हैं, चाहे वह रस काव्यगत हो अथवा नाना व्यंजनसंस्कृत अन्नगत। उनके अनुसार चाहे भोज्यान्न के

The ingredients of food or the equipments and gestures of actors on the stage are only vyanjakas or unveilors of Rasas, already existing in persons in subtle form and are not active constituent parts in the enjoyment of Rasas. It is therefore proved by Abhinavagupta that vyanjanā vritti plays a greater role in the process of Rasanubhava (through poems, dramatic performances and tasteful food.

(ना० शा० General Editor G. N. Bhatta, M. A. Vol. I, Second revised edition, Preface pp. 26-27.)

१. 'यथा हि नाना व्यंजनौषधिद्रव्यसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः तथा नानाभावोपगमाद्रसनिष्पत्तिः। यथा हि—गुडादिभिर्द्रव्यैर्व्यंजनैरौषधिभिश्च षाडवादयो रसा निर्वर्त्यन्ते तथा नानाभावोपगता अपि स्थायिनो भावा रसत्वमाप्नुवन्तीति (ना० शा० ६-३१ के उपरान्त कारिका)।

२. यथा हि नाना व्यंजनसंस्कृतमन्नं भुंजाना रसानास्वादयन्ति सुमनसः पुरुषा हर्षादींश्चाधिगच्छन्ति तथा नाना भावाभिव्यंजितान् वागंगसत्वोपेतान् स्थायिभावानास्वादयन्ति सुमनसः प्रेक्षकाः हर्षादींश्चाधिगच्छंति। (वही)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

भोक्ता हों अथवा काव्य, नाट्य के श्रोता-प्रेक्षकादि इन सबके हृदय में रस सूक्ष्म रूप से पहले से विद्यमान रहता है जो अनुकूल वातावरण पाकर भोजन के तत्वों अथवा काव्यादि के विभावों द्वारा अभिव्यक्त हो जाता है। भरत का उपर्युक्त कारिका में प्रयुक्त 'व्यंजन' (नानाव्यंजनसंस्कृतमन्नं) और 'व्यंजित' (नानाभावाभिनयव्यंजितान्········) शब्दों की व्याख्या करते हुए उपर्युक्त नाट्य-शास्त्र के भूमिका-लेखक रामस्वामी शास्त्री ने भी यही मत व्यक्त किया है।[१] अभिनवगुप्त ने भरत के नाट्यशास्त्र के मूलाधार पर अपने रस सम्बन्धी मत 'अभिव्यक्तिवाद' का प्रवर्तन किया है जिसका सुस्पष्ट अंकन मम्मट ने अपने 'काव्यप्रकाश' में किया है।[२] उक्त मत की निर्विरोधिता परवर्ती साहित्यशास्त्रकारों द्वारा अनुसृत हुई। अभिधावादियों का 'सोऽयमिषोरिवदीर्घदीर्घतरो अभिधाव्यापारः' वाला मत अभिनव के व्यंजनावाद के सम्मुख टिक न सका।

रसों की संख्या तथा परस्पर उत्पाद्योत्पादकता :—रसों की संख्या,

---

१. Here the words Vyanjana and Vyanjita show that the ingrediants of fcod and the Vibhāvas of the dramatics only reveal or manifest the Rasas already existing in subtle form in persons and that this process of revelation of Rasa is known as Vyanjanā vritti of wcrds iv poems of Vibhāvas and other bhāvas in dramatic per formances and of ingredients of tasty food (ना० शा० Preface P. 27)

२. लोके प्रमदादिभिः स्थाय्यनुमानेऽभ्यासपाटववतां काव्ये नाट्ये च तैरेव कारणत्वादिपरिहारेण विभावनादिव्यापारवत्वादलौकिकविभावादिशब्दव्यवहार्यैर्ममैवैते शत्रोरेवैते, तटस्थस्यैवैते; न ममैवैते; न शत्रोरेवैते; न तटस्थस्यैवैते; इति सम्बन्धविशेषस्वीकारपरिहारानियमनाध्यवसायात् साधारण्येन प्रतीतैरभिव्यक्तः सामाजिकानां वासनात्मकतया स्थितः स्थायी रत्यादिको, नियतप्रमातृगतत्वेन स्थितोऽपि साधारणोपायबलात् तत्कालविगलितपरिमितप्रमातृभाववशोन्मिषितवेद्यान्तरसम्पर्कशून्यापरिमितभावेन प्रमात्रा सकलसहृदयसंवादभाजा साधारण्येन स्वाकार इवाभिन्नोऽपि गोचरीकृतश्चर्व्यमाणतैकप्राणो, विभावादिजीवितावधिः पानकरसन्यायेन चर्व्यमाणः, पुर इव परिस्फुरन्, हृदयमिव प्रविशन्, सर्वाङ्गीणमिवालिङ्गन्, अन्यत् सर्वमिव तिरोदधद्, ब्रह्मास्वादमिवानुभावयन् अलौकिकचमत्कारकारी शृंगारादिको रसः'।

(का० प्र० ४ का० २७–२८ सू० ४३ वृत्ति)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

भरत के अनुसार आठ हैं—शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स और अद्भुत[1]। इन रसों में शृंगार, रौद्र, वीर और बीभत्स क्रमशः हास्य, करुण, अद्भुत और भयानक रसों के जनक, उत्पादक बताये गये हैं। शृंगाररस (के आभास एवं उसकी अनुकृति) से हास्यरस, रौद्र के कर्म वा फलस्वरूप करुणरस, वीररस के (यशस्वरूप) कर्म वा फल के रूप में अद्भुत की तथा बीभत्स के दर्शन से भयानकरस की उत्पत्ति होती है।[2] अभिनवगुप्त ने रसों की उत्पाद्योत्पादकता का स्पष्टीकरण अभिनवभारती में किया है। उनके अनुसार शृंगार रस का हास्य के साथ उत्पादन में हेतुत्व तब प्रतिपादित होता है जब उस (शृंगाररस) के विभाव, अनुभाव और व्यभिचारीभाव, मात्र आभासरूप में (वास्तविक वा शुद्ध सात्त्विक पवित्र रूप में नहीं) उपस्थित हो कर शृंगाररस के आभास को (शुद्ध उचित शृंगार को नहीं) ही अभिव्यक्त करता है। शृंगार की अनुकृति (औचित्य प्रवृत्त शृंगार नहीं अपितु अनौचित्य प्रवृत्त) शृंगाराभास है। इस शृंगाराभास के विभाव, अनुभाव और व्यभिचारिभाव सब के सब आभासित होते हैं, यहाँ तक कि इन विभावाभासादिकों से उद्बुद्ध, प्रेषित और प्रतीत रस की चर्वणा (आस्वाद) चर्वणाभास ही कही जाती है। शृंगाराभास में रति नामक स्थायीभाव रतित्व की कोटि तक नहीं पहुँच पाता। वह केवल अभिलाष, स्पृहा या कामना मात्र रूप व्यभिचारिभाव ही रह जाता है। यह रति स्थायी न होकर स्थायिकल्प-आभास कही जा सकती है। रावण से सीता द्वेष करती है, उसकी (रावण की) उपेक्षा, तिरस्कार करती है, उसका हृदय-स्पर्श नहीं करती। (ऐसी स्थिति में) सीता के अङ्ग-स्पर्श से (अभिमानी) रावण की अभिमान-हानि होगी। रावण का रतिभाव केवल कामज मोह है, एकाङ्गी, एकदेशीय, अनौचित्य-

---

१. शृंगार-हास्य-करुण-रौद्र-वीर-भयानकाः।
बीभत्साद्भुतसंज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः॥
(६–१५ ना० शा०)

२. शृंगाराद्धि भवेद्धास्यो रौद्राच्च करुणो रसः।
वीराच्चैवाद्भुतोत्पत्तिर्बीभत्साच्च भयानकः॥ ६–३९
शृङ्गारानुकृतिर्या तु स हास्यस्तु प्रकीर्तितः।
रौद्रस्यैव च यत्कर्म सः ज्ञेयः करुणो रसः॥ ६–४०
वीरस्यापि च यत्कर्म सोऽद्भुतः परिकीर्तितः।
बीभत्सदर्शनं यच्च ज्ञेयः स तु भयानकः॥
(६–४१ ना० शा०)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रवृत्त है, सीप में चाँदी के आभास के समान है,[१] अतएव हास्यास्पद है।

अतः भरत के अनुसार रसों की संख्या मूलतः चार ही ठहरती है। इन चार से चार अन्य की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार भरत ने नाट्यशास्त्र में कुल आठ रसों की चर्चा की है। यद्यपि छठे अध्याय के अन्तिम भाग में शान्तरस की भी चर्चा है किन्तु अन्य संस्करणों में अप्राप्य होने के कारण इसे संदिग्ध मानना होगा। आगे चल कर उद्भट ने शान्त नामक नवें रस का भी उल्लेख किया है।[२] किन्तु इस रस की स्थापना अभिनवगुप्त ने 'अभिनवभारती' में की। चौदहवीं शताब्दी में साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ महापात्र ने वात्सल्य नामक दसवें रस की स्थापना यह कह कर की कि उस (वात्सल्यरस) में स्फुट चमत्कार है।[३] अतएव यह रस वात्सल्य-श्रृंगार-अभिधान से श्रृंगाररस में अन्तर्भूत न माना जाकर स्वतन्त्र पद पाने का अधिकारी है। सोलहवीं शताब्दी तक आते-आते प्रकृत श्रृंगाररस से भक्तिरस का भी जन्म हुआ। 'भक्तिरसामृत सिन्धु' और 'उज्ज्वल नीलमणि' नामक ग्रन्थों के रचयिता रूपगोस्वामी ने उज्ज्वल, मधुर अथवा भक्तिरस को भी एक स्वतन्त्र और पूर्णरस के रूप में प्रतिष्ठा दी। ज्ञातव्य है कि भामह, दण्डी, रुद्रट, उद्भट के 'प्रेयस्' और 'प्रेमन्' रस ही भोज, रूपगोस्वामी, मधुसूदन सरस्वती, रामभक्त कवि बघेलवंशीय महाराज विश्वनाथ सिंह आदि आलंकारिकों और कवियों से पोषित होता हुआ भक्तिरस कहा गया। रुद्रट ने रस शब्द की व्युत्पत्ति के प्रसंग में निर्वेदादि भावों को रस ही कहा है।[४]

रसों में प्राधान्य का निर्धारण :—रसों की संख्या निर्धारित हो जाने के पश्चात् विद्वानों का ध्यान इनकी बहुलता में एकता ढूंढ़ने की ओर प्रवृत्त हुआ।

---

१ तदाभासत्वेन तदनुकाररूपतया हेतुत्वं श्रृङ्गारेण सूचितम्। यतो विभावाभासादनुभावाभासाद्व्यभिचार्याभासाद्रत्याभासे प्रतीते चर्वणाभाससारः शृङ्गाराभासः कामना। अभिलाषमात्ररूपा हि रतिरत्र व्यभिचारिभावः। न स्थायी··· यतो रावणस्य सीता द्विष्टा मय्युपेक्षिका वेति हृदयं नैव स्पृशतीति। तत्स्पर्शे ह्यभिमानोऽस्या (स्य) विलीयत एव। (ना० शा० अभिभा० ६–२९५)

२. श्रृंगार-हास्य-करुण-रौद्र-वीर-भयानकाः।
बीभत्साद्भुतशान्ताश्च नव नाट्ये रसाः स्मृताः॥
(काव्यालंकार-सारसंग्रह)

३. स्फुटं चमत्कारितया वत्सलं च रसं विदुः।
स्थायी वत्सलता स्नेहः··············॥ (सा० द० ३–२५१)

४. रसनाद्रसत्वमेषां मधुरादीनामिवोक्तमाचार्यैः।
निर्वेदादिष्वपि तन्निकाममस्तीति रसाः॥ (काव्यालंकार)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

रसों के क्षेत्रों में भी अद्वैत की स्थापना का प्रयत्न होने लगा। अभिनवगुप्त ने शान्त (रस) को प्रकृत तथा शान्तेतर रसों को उस (शान्तरस) की विकृतियाँ माना है। उनके अनुसार मोक्ष नामक श्रेष्ठतम पुरुषार्थ से सम्बद्ध होने के कारण शान्त परम उदात्त तथा मुख्यतम रस है। इस सम्बन्ध में नाट्य-शास्त्र के छठे अध्याय का उपयुक्त अन्तिम भाग द्रष्टव्य है।[1] इसी प्रकार भव-भूति ने करुणरस को प्रकृति और शृंगार-वीरादि अन्य रसों को विकृति रूप में स्थापित किया है। साहित्यदर्पण के अनुसार नाटक में शृंगार अथवा वीर रसों में से कोई एक अङ्गी वा मुख्यरूप से अभिव्यक्त होता है और शेष रस अङ्ग रूप से, मुख्य रस के उपकारक बन कर ही चर्चित होते हैं।[2] भवभूति ने अपने लब्धप्रतिष्ठ नाटक 'उत्तररामचरितम्' में करुणरस को प्राधान्य देकर स्पष्ट ही एक नयी मर्यादा निर्धारित की है। शास्त्रीय नियम के अतिक्रमण-दोष से बचने के लिए उन्होंने युक्ति दी है कि एक ही करुणरस निमित्तभेद से भिन्न होता हुआ वैसे ही शृगारादिक परिणामों में परिवर्तित एवं व्यक्त होता है जैसे एक जल ही भ्रम (भँवर), अम्बुस्फोट (बुलबुला) एवं तरङ्ग का नाम-रूप धारण करता है। वस्तुतः उक्त सारे विकार जल ही हैं (अन्य कुछ नहीं)।[3] 'चमत्कार' शब्द विस्मय का पर्याय है, समानार्थक है। नाटक का अन्त विस्मयोत्पादक होता है—'निर्वहणेऽद्भुतः'। महामुनि भरत, भामह, दण्डी आदि आचार्यों ने नाटक अथवा काव्य में 'अद्भुत' की अवस्थिति अनिवार्य मानी है। ना० शा० ६–७४, काव्यालङ्कार २.८४, ८५ एवं काव्यादर्श २.२१४.२२० क्रमशः तदर्थ द्रष्टव्य है। किन्तु साहित्यदर्पणकार के प्रपितामह पण्डितराज नारायण ने तो स्पष्ट घोषित किया है कि 'सब रसों में चमत्कार सार रूप से प्रतीत होता है। और चमत्कार (विस्मय) के साररूप (स्थायी) होने से

---

१. अथ शान्तो नाम शमस्थायिभावात्मको मोक्षप्रवर्तकः।
(ना० शा० G. O. S. ६–८२)

२. एक एव भवेदंगी शृंगारो वीर एव वा।
अंगमन्ये रसाः सर्वे (सा० द० ६–१०)

३. एको रसः करुण एव निमित्तभेदा-
द्भिन्नः पृथक् पृथगिव श्रयते विवर्तान्।
आवर्तबुद्बुदतरंगमयान्विकारा-
नम्भो यथा सलिलमेव हि तत्समस्तम्॥
(उत्तररामचरितम् ३–४७)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सब जगह अद्भुत रस ही प्रतीत होता है।"[1] रस-प्राधान्य-स्थापना की दिशा में महाराज भोज भी पश्चात् पद नहीं रहे। अभिनवगुप्त इधर, शान्तरस को सर्वरस-समाहर्ता प्रमाणित करने के प्रयास में थे उधर भोज ने शृङ्गार-रस की मुख्यता सम्पादित करने के लिए उसमें एक नया तत्त्व जोड़ा। उनके मतानुसार "सब भावों के मूल में अहंकार अर्थात् अभिमान विद्यमान रहता है। इस अहंकार या अभिमान का ही पर्याय शृंगार है। यह आत्मा का गुण है तथा प्राक्तन सत्कर्मों का फलस्वरूप है। अहंकार का अर्थ आत्मबोध अर्थात् अहं की अनुभूति है जो संस्कृत और असंस्कृत व्यक्तित्व का भेदक है। इसी अहंकार के कारण व्यक्ति के हृदय में अपने और पराये के प्रति प्रेम उत्पन्न होता है। एतदर्थं रस को आत्मरति कहते हैं। यह अहंकार या आत्मरति ही रस है जिसके कारण रति और हासादि अभिव्यक्त होते हैं। भोज ने सरस्वतीकंठाभरण और 'शृंगार-प्रकाश' में इसकी विस्तृत व्याख्या की है।[2] अपने ग्रन्थ "The numbcc of Rasas' में डा० वी राघवन् ने भोज के 'सरस्वती कण्ठाभरण' एवं 'शृंगार-प्रकाश' से कतिपय अंश उधृत किये हैं जो विषय को भलीभाँति स्पष्ट कर देते हैं। भोज-कृत शृंगाररस की स्थापना का विस्तृत विवरण आगे दिया जा रहा है। भोज के उक्त अहङ्कार-शृङ्गार की स्थापना के पूर्व अग्निपुराण में भी इसी से मिलता-जुलता वर्णन प्राप्त होता है। तदनुसार "वेदान्तों के अविनाशी, नित्य, अजन्मा, व्यापक, अद्वितीय, ज्ञानरूप, स्वतः प्रकाशमान परब्रह्म में सहज, स्वाभाविक रूप से आनन्द विद्यमान है जो कभी-कभी अभिव्यक्त हो जाया करता है। परब्रह्म

---

१. रसे सारश्चमत्कारः सर्वत्राप्यनुभूयते।
तच्चमत्कारसारत्वे सर्वत्राप्यद्भुतो रसः।
तस्मादद्भुतमेवाह कृती नारायणो रसः। (सा० द० ३–३ कारिका)

२. He said thatat the root of all Bhāvas lay the germ of Ahaṅkara otherwise called Śṛngāra and Abhimāna. It is a Guṇa of the Atmā and is the result of past acts. By Ahaṅkāra is meant a self consciousness or the sense of 'I', which marks off the cuturedfrom the uncultured. It is that by which not only for hinself but for others and other objects alsodoes man have any love. In this sence it is called Ātma Rati. It is this 'Ego, or 'self-love' that is the one Rasa. Its manifestations are Rati, Hasa etc. [The number of Rasas. P. 197 1940 Edition]

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

की यही आनन्दाभिव्यक्ति चैतन्य, चमत्कार अथवा रस नाम से अभिहित होती है। इसी आनन्दरूप ब्रह्म का प्रथम विकार अहंकार माना गया है। इस अभिमान वा ममता से रति (प्रेम, अनुराग) उद्भूत होता है। यही रति व्यभिचार्यादिकों से परिपुष्ट होकर शृङ्गार-रस कहालाती है जिसके हास्यादिक अनेक भेद हैं। सत्व, रज एवं तमोगुण के सन्तान (विस्तार, परम्परा) से रति ही राग, तीक्ष्णता, गर्व और संकोच इन चार रूपों में परिणत होती है। राग से शृङ्गार, तीक्ष्णता से रौद्र, गर्व से वीर और संकोच से बीभत्स उत्पन्न होता है। इन चार रसों से क्रमशः हास्य, करुण, अद्भुत और भयानक की उत्पत्ति हुई।[1] सारांश यह है कि रति अथवा अनुराग के भाव से उक्त आठ रसों का उद्भव हुआ और उस रति अर्थात् अनुराग के अभाव रूप निर्वेद से शान्तरस प्रसूत हुआ। भावार्थ यह कि रति के भाव से आठ रस और उसके अभाव से नवाँ शान्तरस उत्पन्न हुआ।

शृंगाररस और काम की व्यापकता एवं महत्ता—यह एक संयोग की बात है कि भारतीय साहित्य का सर्वप्रथम लौकिक काव्य, बाल्मीकीयरामायण का प्रथम श्लोक, शोकोत्प्रेरक परिस्थिति में शोकसंतप्त वाणी से उद्भूत हुआ। काव्यमीमांसाकार राजशेखर ने तो यहाँ तक कहा है कि उक्त रामायण के इस प्रथम श्लोक को पढ़कर द्वैपायन व्यास ने

---

१. अक्षरं ब्रह्म परमं सनातनमजं विभुम्।
वेदान्तेषु वदन्त्येकं चैतन्यं ज्योतिरीश्वरम्॥
आनन्दः सहजस्तस्य व्यज्यते स कदाचन।
व्यक्तिः सा तस्य चैतन्य-चमत्कार-रसाह्वया॥
आद्यस्तस्य विकारो यः सोऽहंकार इति स्मृतः।
ततोऽभिमानस्तत्रेदं समाप्तम् भुवनत्रयम्॥
अभिमानाद्रतिः सा च परिपोषमुपेयुषी।
व्यभिचार्यादिसामान्याच्छृङ्गार इति गीयते॥
तद्भेदाः काममितरे हास्याद्या अप्यनेकशः।
स्वस्वस्थायिविशेषोऽथ (त्थ) परिघो (पो) षस्वलक्षणः॥
सत्त्वादिगुणसन्तानाज्जायन्ते परमात्मनः।
रागाद् भवति शृंगारो रौद्रस्तैक्ष्ण्यात्प्रजायते॥
वीरोऽवष्टंभजः सङ्कोचभूर्बीभत्स इष्यते।
शृंगाराज्जायतेहासो रौद्रात्तु करुणो रसः॥
वीराच्चाद्भुतनिष्पत्तिः स्याद् बीभत्साद् भयानकाः॥
(अ० पु० ३३९-१-८)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

महाभारतसंहिता निर्माण किया। काव्यमीमांसा में लिखा है—'सरस्वती से आज्ञा प्राप्त कर बाल्मीकि मुनि जब अपने आश्रम को लौट रहे थे, तब, वे, निषाद के वाण से सहचरी के मारे जाने पर, अति करुण स्वर से चिल्लाते हुए युवा क्रौंच पक्षी को देखकर अत्यन्त शोकसन्तप्त हुए और श्लोकमय वाणी में बोले—"हे निषाद! तूने काम-केलि-रत इस क्रौंच-मिथुन में से एक को मार डाला अतः तू भी अधिक दिनों तक जीवित न रहना।"...ऋषि बाल्मीकि ने भी इस प्रकार स्वाभाविक वाणी के प्रवृत्त होने पर रामायण नामक इतिहास का प्रणयन किया और इसी श्लोक को सबसे पहले पढ़कर द्वैपायनव्यास ने इसी के प्रभाव से एक लाख श्लोकों की महाभारतसंहिता का निर्माण किया।'[1] ये दोनों महाकाव्य करुणरस के महान् प्रख्यापक हैं। किन्तु क्षेत्र की व्यापकता, सात्विकता, स्वाभाविकता और मनोरंजनता आदि की दृष्टि से शृंगाररस की तुलना में अन्य रसों का स्थान गौण है। शब्दकल्पद्रुम में दी गई 'शृंगार' शब्द की परिभाषा इस रस की स्वाभाविकता, पवित्रता और सामाजिक, धार्मिक महत्ता का प्रतिपादन करती है। शृंगार की परिभाषा है—शृंगं कामोद्रेकमृच्छतीति। ऋगतौ कर्मण्यण्। जो कामारम्भ या उसके उद्रेक, वृद्धि में सहायक हो। काम का अर्थ है सहज इच्छा वा कर्त्तव्य कर्म। यह काम ब्रह्म के हृदय से उद्भूत हुआ हैं—"कामस्तु ब्रह्मणो हृदयाज्जातः, यथा, 'हृदि कामो भ्रुवोः क्रोधोलोभश्चाधोरदच्छदात्–इति श्रीमद्भागवतम्। ब्रह्म के मन का जो रेत अर्थात् बीज प्रथमतः निकला वही आरम्भ में काम (अर्थात् सृष्टि निर्माण करने की प्रवृत्ति या शक्ति) हुआ। ज्ञाताओं नें अन्तःकरण में विचार करके बुद्धि में निश्चित किया कि यही असत् में अर्थात् मूल परब्रह्म में सत् का यानी विनाशी दृश्यसृष्टि का (पहला) सम्बन्ध है।"[2] नासदीय सूक्त के ऋषि की

---

१. 'अनुप्रेषितश्च स तया निषाद-निहत सहचरीकं क्रौञ्च युवानं करुण-क्रेंकारयागिरा क्रन्दन्तमुदीक्ष्य शोकवान् श्लोकमुंजगाद।

"मा निषाद! प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौंच मिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥

स तु महामुनिः प्रवृत्तवचनोरामायणमितिहासं समदृभवत्; द्वैपायनस्तु श्लोक-प्रथमाध्यायी तत्प्रभावेन शतसाहस्रीं संहितां भारतम्'।

(का० मी० तृतीयअध्यायः पृ० १६–१७ प्रथम संस्करण)

२. कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत।
सतो बन्धुमसति निरविन्दन् हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा॥

(श्री० भा० गी० र० पृ० २८३)

सन् १९१९

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

यह वाणी श्रृंगार और काम की पावनता और महत्ता की प्रतिपादिका है।

काम और श्रृंगार का सम्बन्ध घनिष्ठ एवं अन्योन्याश्रित है। अन्वय व्यतिरेक से दोनों सहचारी हैं। इनमें परस्पर कार्य-कारणभाव भी है। कभी काम उद्बुद्ध हो कर श्रृंगारिक प्रवृत्तियों को प्रेरित करता है और कभी श्रृंगारिक वातावरण ही कामोद्बोध का कारण बन जाता है। श्रृंगाररस को निष्पन्न करने वाले विभाव, अनुभाव, व्यभिचार भावादिकों में काम-तत्व, शरीर में प्राण की भाँति अन्तर्लीन रहता हैं। देवता हो, मनुष्य हो, पशु, पक्षी आदि कोई भी हो यह श्रृंगारमूल काम किसी को भी अप्रभावित नहीं छोड़ता। कुमारसम्भव में काम के भस्म हो जाने पर, आकाशवाणी ने रति को आश्वासन दिया—'कामोद्रेक से उत्तेजित होकर प्रजापति ब्रह्मा ने अपनी पुत्री सरस्वती के प्रति कामाभिलाष प्रकट किया। किन्तु तदनन्तर उक्त कामविकार को नियंत्रित कर उन्होंने काम को शाप दिया कि तुम भस्म हो जाओगे। उसी शाप का फल आज तुझे भोगना पड़ा।[1] मानव की क्रीड़ाओं के उदाहरण तो सर्वत्र प्राप्त हैं, तिर्यगादि भी इस कामोल्लास से उल्लसित रहते हैं। यथा-चमेली अथवा रमणीय वनों के बीच, लताओं में अपने प्रियतम का आह्वान करती, किसी भ्रमरी ने वीणा की मधुर ध्वनि के समान ध्वनि से गाना आरम्भ किया।'[2]

भर्तृहरि ने 'श्रृंगारशतकम्' के मंगलश्लोक में ठीक लिखा है—'जिसने शिव, ब्रह्मा और विष्णु को मृगनयनियों के गृहकर्मों में निरन्तर सेवक बना रक्खा है, जिसका वर्णन वाणी के लिए भी असाध्य है, ऐसे चरित्रों से विचित्र प्रतीत होने वाले उस भगवान काम को प्रणाम'[3]। धर्मविहित काम वस्तुतः भगवान् ही है। गीता में भगवान् ने कहा है—'हे भरतश्रेष्ठ ! प्राणियों

---

१. अभिलाषमुदीरितेन्द्रियः स्वसुतायामकरोत्प्रजापतिः।
अथ तेन निगृह्य विक्रियामभिशप्तः फलमेतदन्वभूत ॥
(कु० सं० ४. ४१)

२. मल्लीमतल्लीषु वनान्तरेषु बल्ल्यन्तरे वल्लभमाह्वयन्ति।
चंचद्विपंचीकलनादभङ्गी संगीतमंगीकुरुते स्म भृङ्गी ॥
(सा० द० ३-१७४)

३. शम्भुस्वयम्भुहरयो हरिणेक्षणानां येनाक्रियन्त सततं गृहकुम्भदासाः।
वाचामगोचर-चरित्र-विचित्रिताय तस्मै नमो भगवते मकरध्वजाय ॥
(१ श्रृङ्गारशतकम्)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

में, धर्म के विरुद्ध न जाने वाला (धर्माविरुद्ध) काम भी मैं हूँ ।[१] यह 'धर्माविरुद्ध' कामरूप भगवान् सौन्दर्य का स्रोत है । ऋग्वेद में भगवान का गुणानुवाद करते समय ऋषि-हृदय उसके सौन्दर्य पर भी रीझा है—'हे सुन्दरता के स्रोत ! तुमसे निकल कर सौन्दर्य तथा सौभाग्य की धारायें वैसे ही फैलती हैं जैसे वृक्ष की शाखायें। तुम्हारे भक्त को अन्नादि धन, वेग, सामाजिक शक्ति (बल) दैवी वृष्टि, स्तुत्य जलधारायें तुझसे ही प्राप्त हो जाती हैं ।'[२] मनुष्य प्रकृत्या सौन्दर्य पर रीझता है और सौन्दर्य शृंगार का अविच्छेद्य धर्म है । 'उज्वलनीलमणि, में सौन्दर्य की परिभाषा देते हुए कहा है—'अङ्ग (बाहु आदि), प्रत्यङ्ग (प्रकोष्ठ अर्थात् पहुँचा, कलाई से कुहनी तक का भाग, प्रगंड अर्थात् कुहनी से कन्धे तक का भाग, आदि) का यथोचित संयोग, मांसलत्वादि की दृष्टि से ऐक्ययुक्त कफोणि (केन सुखेन फणति स्फुरतीति वा = जो सुखपूर्वक स्फुरण करे) अर्थात् भुजमध्यग्रन्थि, कुहनी आदि का स्थान ही सौन्दर्य कहा जाता है ।'[३] कालिदास ने कुमारसम्भव में पार्वती के सौन्दर्य का चित्रण कुछ इसी प्रकार का किया है—'सकल विश्व के सर्जन में प्रयत्नशील ब्रह्मदेव ने, एक ही स्थान पर समस्त सौन्दर्य को देखने की इच्छा से, खोज-खोज कर, (चन्द्र, कमल, तिल, कुसुमादि) प्रसिद्ध सुन्दर वस्तुओं के यथोचित सन्निवेश से उस (पार्वती) की रचना की थी ।'[४] सारांशतः काम, शृंगार और सौन्दर्य की उक्त परिभाषाओं को जब हम एकत्र करके देखते हैं तो इन तीनों में एक विचित्र अन्योन्याश्रय सम्बन्ध परिलक्षित होता है । कामारम्भ या उसके उद्रेक में सहायक होने के नाते शृंगार काम की योनि कहा गया है । काम शृंगारयोनि है क्योंकि शृंगार से ही उसकी उत्पत्ति हुई है—शृंगारे योनिरुत्पत्तिर्यस्य कामदेवः। इति हलायुधहेमचन्द्रौ । शृंगार इस अलौकिक, दिव्यस्वरूप में

---

१. धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोस्मि भरतर्षभ (गीता ७. ११)

२. त्वद्विश्वासुभग सौभगान्यग्ने वियन्ति वनिनो न वयाः।
श्रुष्टी रयिर्वाजो वृत्रतूर्ये दिवो वृष्टिरीड्योरीतिरपाम् ॥
(ऋ० ६. १३. १)

३. अङ्गप्रत्यङ्गकानां यः सन्निवेशो यथोचितम् ।
सुश्लिष्टसंधिबंधः स्यात्तत्सौन्दर्यमितीर्यते ॥
(उद्दीपनकरण २९ उ० नी०)

४. सर्वोपमा द्रव्यसमुच्चयेन यथा प्रदेशंविनिवेशितेन ।
सा निर्मिता विश्वसृजा प्रयत्नादेकस्थ-सौन्दर्य दिदृक्षयेव ॥
(कु० सं० १. ४९)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

काम का उत्पादक है और काम 'ब्रह्मणो हृदयाज्जातः'— ब्रह्म के हृदय से उद्भूत है। उसके मन का प्रथम रेत (वीर्य) है जो सृष्टि के सृजन का कारण है, सत् (दृश्यसृष्टि) का असत् (मूलपरब्रह्म) से पहला सम्बन्ध है। नासदीय सूक्त के ऋषि की इस वाणी की चर्चा हो चुकी है। 'एकमेवाद्वितीयम्' एक और अद्वितीय ब्रह्म भी अपने एकाकीपन, एकत्व का परित्याग कर नानात्व, बहुत्व में परिणत होने की कल्पना करने लगा। 'एकोऽहम् बहुस्याम्' एक हूँ बहुत हो जाऊँ, ब्रह्म की इसी विश्व-विश्रुत हार्दिक कामना से काम का जन्म हुआ। यह विश्व-वैविध्य ब्रह्मरूप काम का ही प्रसार है, उसी की लीला है—'काम मंगल से मण्डित श्रेय सर्ग इच्छा का है परिणाम' सृष्टि की आदि नारी कामायनी श्रद्धा का आदि पुरुष मनु को यह दिव्य सन्देश है। काम शृंगार-योनि है ब्रह्म-हृदय जात है अर्थात् ब्रह्मसंभूत, ब्रह्मयोनि है, स्वयं ब्रह्म है। कृष्ण ने, स्वयं कहा है—'कामोऽस्मि भरतर्षभ।' हम कह चुके हैं कि वह काम-शृङ्गार-स्वरूप ब्रह्म सौन्दर्य का स्रोत भी है। 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' भी ब्रह्म ही है। अतएव ब्रह्म ही शृङ्गार है, काम है और सौन्दर्य है। सुन्दर का अर्थ है—कामदेव और काम ब्रह्मस्वरूप है। भगवान् राम, कृष्ण आदि सौन्दर्य-स्वरूप हैं। पद्मपुराण, (उमा-महेश्वर संवाद के प्रसंग) में भगवान् शङ्कर ने भगवान् राम को श्यामाङ्गः सुन्दरः शूरः पीतवासाधनुर्धरः एवं राजीवलोचन आदि कहा है। आद्य श्रीशंकराचार्य ने विष्णु का ध्यान करते हुए उन्हें 'सुन्दर बदनारबिन्दगोविन्द', कहा है। तंत्र-सार में भगवान् कृष्ण (गोविन्द) के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए लिखा है—"प्रफुल्ल, विकसित, नीलकमल के समान कान्ति वाले, चन्द्रमुख, सुन्दर श्री वत्स-चिह्न (श्वेतरोमावर्तविशेषः, शुक्लवर्णदक्षिणावर्त लोमावली) से युक्त, कौस्तुभ-मणि-प्रिय, मयूरीपिच्छयुक्त शिरोभूषण एवं पीताम्बर धारण करने वाले, सुन्दर, गोपियों के नेत्रकमलों द्वारा पूजित शरीर वाले, गायों और गोपों के समूह से घिरे हुए, सुन्दर वेणुवादन में प्रवृत्त, दिव्य अङ्गभूषणों से भूषित शरीर वाले गोविन्द को भजता हूँ।"[१] महाभारत में भी भगवान् को 'कामहा कामकृत कान्तः कामः कामप्रदः प्रभुः' कह कर उसके सौन्दर्य की ओर संकेत किया गया है। 'रसो वै सः' तथा 'रसोऽहमप्सु कौन्तेय' आदि पदों से भगवान् का शृङ्गार-स्वरूप होना भी सिद्ध है। वामकेश्वर तंत्र में देवी-भैरव संवाद के

---

१. फुल्लेन्दीवर-कान्तिमिन्दुबदनंबर्हावतंसप्रियं
श्रीवत्साङ्कमुदारकौस्तुभधरं पीताम्बरं सुन्दरम्।
गोपीनां नयनोत्पलार्चिततनुं गोगोपसंघावृतं
गोविन्दं कलवेणुवादनपरं दिव्याङ्गभूषंभजे॥ (तन्त्रसारः)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अवसर पर भैरव ने शृङ्गारादिक रसों की चर्चा करते हुए—'शृङ्गारस्तुयथा-देवी परमार्थक सूचक:'—बताया है। परम का अर्थ हैं आद्य, ओंकार। परमार्थ भगवद्प्राप्ति है, स्वयं भगवान् है। अपने अलौकिक रूप में शृङ्गार की भगवत्ता सिद्ध होती है। भगवान् की ही भाँति कामोत्पत्ति द्वारा वह सृष्टि में व्याप्त है। शब्दकल्पद्रुम पंचम भाग में शृङ्गार का अर्थ 'नाट्यरस:' सुरत: (सुष्ठुरतंरमणं यत्र) दिया है और नाट्यरस का लक्षण बताते हुए वहीं लिखा है—"पुरुषों की स्त्रियों के प्रति और स्त्रियों की पुरुषों के प्रति संयोग, सम्भोग की जो अभिलाषा है वही, रति-क्रीड़ा के कारण शृङ्गार कहा जाता है।"[२] स्त्री-पुरुषों की, उक्त, रति क्रीड़ादि युक्त-स्पृहा की चरम परिणति मैथुन है। शृङ्गार का अर्थ मैथुन भी है और मैथुन रूप शृङ्गार-भंग (बाधा) का दण्ड कालसूत्र (कालस्ययस्य बन्धनहेतुकाया: सूत्रमिव, नरकविशेष:) नामक यम-यातना है जिसमें सूत्र या बन्धन द्वारा मानव के सूक्ष्म शरीर को वैसा ही सूत्रोच्छेद दण्ड दिया जाता हैं जैसे कुलाल या कुम्हार सूत्र द्वारा चक्रस्थित पात्र का छेदन कर उसे पृथक् कर देता है। अतः लौकिक वा अलौकिक किसी भी दृष्टि से देखें शृगार विश्व का सहज स्वभाव है एवं चराचर जीवमात्र का यह प्रथम, प्रकृत, अविच्छेद्य और अनिवार्य संस्कार है। प्रकृति और पुरुष की यह आदि कामना विश्व की उत्पत्ति का बीज है। रसरूप में शृङ्गार के प्रथम और दृढ़तम प्रवर्तक महाराज भोज कहे गये हैं। भोज के पूर्ववर्ती आचार्यों ने भी शृङ्गाररस की अपनी-अपनी परिभाषा दी है किन्तु इस रस की प्रत्येक दृष्टि से सम्पूर्ण विवेचना भोज की होने के कारण हम उसी का वर्णन सर्वप्रथम करेंगे।

---

२. पुंसः स्त्रियां स्त्रियाः पुंसि संयोगं प्रति या स्पृहा।
स शृङ्गार इति ख्यातो रति-क्रीड़ादि-कारणम्॥
(श० क० ५-१३४)
शब्दकल्पद्रुम

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

दूसरा अध्याय

भोजकृत शृङ्गाररस का विवेचन

'सरस्वतीकण्ठाभरण' में भोज ने शृंगाररस के 'रस', अभिमान, अहंकार ये पर्याय-शब्द बताते हुए कहा है—"उसके अन्वय, संग से काव्य-रम्यता प्राप्त करता है। शरीरधारियों के अन्तःकरण में विलक्षण शुभकर्मजन्य भाग्य से यह रस उत्पन्न होता है, एवं आत्मा के सम्यग्गुणों (दया, दाक्षिण्यादि सदाचार) की उत्पत्ति का हेतु होता है। यदि कवि रसवान् होता है तो जगत आनन्दमय हो जाता है। वहीं कवि यदि अरसिक हुआ तो समस्त संसार निरानन्द हो जाता है।"[1]

'शृंगारप्रकाश' में भी प्रायः इसी कथन की पुनरुक्ति-सी की गई है। यहाँ भी भोज ने शृगार को "आत्मस्थित अहकार का गुण-विशेष एवं आत्म-योनि कामदेव का प्राण कहा हैं। उनके अनुसार शृंगार सत्वगुणसम्पन्न आत्माओं के निर्मल धर्मविशेष से एवं जन्म-जन्मान्तर के अनुभवों से निर्मित वासनाओं से उत्पन्न होता है।"[2] इसी स्थल पर उन्होंने स्पष्ट और पूरे आत्मविश्वास के साथ घोषणा कर दी है "तंत्र पुराणादिक पवित्र ग्रन्थों की परम्परा में प्राप्त शृंगार, वीर, करुण, अद्भुत, रौद्र, हास्य, बीभत्स, वत्सल, भयानक और शान्त नामक दस रसों में, विद्वान् एवं हम भी, आस्वाद्य एवं चर्वणीय होने के कारण, शृंगार को ही रस मानते हैं।"[3] "मन को अनुकूल मोद, हर्ष, आनन्दादि

---

१. रसोऽभिमानोऽहकारः शृङ्गार इति गीयते।
यो अर्थस्तस्यान्वयात् काव्यं कमनीयत्वमश्नुते ॥
विशिष्टादृष्टजन्मायं जन्मिनामन्तरात्मसु।
आत्मसम्यग् गुणोद्भूतेरेको हेतुः प्रकाश्यते ॥
शृङ्गारी चेत् कविः काव्ये जातं रसमयं जगत्।
स एव चेदशृङ्गारी नीरसं सर्वमेव तत् ॥
(स० कं० ५-१-२-३)

२. आत्मस्थितं गुणविशेषमहंकृतस्य शृङ्गारमाहुरिह जीवितमात्मयोनेः।
सत्वात्मनाममलधर्मविशेषजन्मा जन्मान्तरानुभवनिर्मितवासनोत्थः ॥
(शृं० प्र० १. २-४)

३. शृङ्गारवीरकरुणादभुतरौद्रहास्य बीभत्सवत्सलभयानकशान्तनाम्नः।
आम्नासिषुर्दशरसान्सुधियो वयं तु शृङ्गारमेव रसनाद्रसमामनामः ॥
(शृं० प्र० १. ६)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

भावों का जो बोध वा अनुभव होता है उसका हेतु अभिमान (शृंगार) ही है। अपनी (चर्वणा) शक्ति की रसनीयता नामक गुण के ही कारण यह शृङ्गाररस कहा गया है। रत्यादि भावों की विशाल संख्या में शृङ्गारातिरिक्त रस को रस कहना व्यर्थ है। रत्यादिक उनचास (४९) भाव शृङ्गारतत्त्व (शृङ्गाररस) को पूर्णतः परिवृत्त कर, उसके सम्पर्क में उसके परिवार का बन कर अग्नि के तेजोराशि के समान प्रवृद्ध होते है"[१] इस प्रकार भोज ने निर्णय किया है कि रत्यादिक ४९ भाव शृङ्गार से उद्भूत हैं, वीरादि अन्य रस वट-यक्षवत् प्रवाद मात्र हैं[२] तथा एक शृंगार ही चतुर्वर्ग (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) का कारणभूत रस है।[३] उक्त चतुर्वर्ग की दृष्टि से शृङ्गार के चार भेद हैं—धर्म शृङ्गार, अर्थ शृङ्गार, काम शृङ्गार तथा मोह-शृङ्गार। इनमें धर्मार्थ-शृङ्गार का हेतुभूत होने के कारण काम-शृङ्गार ही प्रधान है।

अनुराग स्थापन :—'शृंगारप्रकाश' के बाइसवें, तेइसवें और चौबीसवें प्रकाशों मे महाराज भोज ने, क्रमशः, अनुरागस्थापन, विप्रलम्भ-संभोग-प्रकाशन एवं विप्रलम्भ के कुछ प्रकारों का वर्णन सोदाहरण किया है। द्वाविंशप्रकाश में अनुराग के सहस्रों भेदोपभेदों का उल्लेख मिलता है। यह अनुराग काम है जो सामान्य और विशेष दोनों रूपों में सुखमय होता है। अनुराग की सात्विकता, बाह्यधर्म (पुत्र-कलत्रादि सम्बन्ध) से निरपेक्षता एवं सहज अन्तःप्रेरकतादि लक्षणों को स्पष्ट करने के लिए भोजराज ने भवभूति के उत्तर रामचरित से दो निम्नलिखित उदाहरण दिये हैं :—[४] "निष्कारण पक्षपात, अहेतुकी प्रीति का कोई प्रतिकार (निवर्तन) नहीं है। क्योंकि इसका प्रेममय सूत्र प्राणिमात्र के हृदयको सी देता है। (ख) कोई अभ्यन्तर, अनिर्वचनीय कारण समस्त पदार्थों को परस्पर संलग्न करता है।

---

१ "अप्रातिकूलिकतया मनसो मुदादेर्यस्संविदोऽनुभवहेतुरिहाभिमानः।
ज्ञेयो रसः स रसनीयतयात्मशक्ते रत्यादिभूमनि पुनर्वितथा रसोक्तिः॥
रत्यादयोऽर्धशतमेकविवर्जिता हि भावाः पृथग्विविधभावभुवो भवन्ति। शृङ्गार तत्त्वमभितः परिवारयन्तः सप्तार्चिषं द्युतिचया इव वर्धयन्ति [शृ० प्र० १.८.९०]

२. वीराद्भुतादिषु च येहरसप्रसिद्धिः सिद्धा कुतोऽपिवटयक्षवदाविभाति [वही १.६]

३. अतः स्थितमेतत् रत्यादयःशृङ्गारप्रभवाः एकोनपंचाशदभेदाः, वीरादयो: मिथ्यारसप्रवादाः, शृगार एवैकश्चतुर्वर्गैककारणंरस इति (वही गद्यभाग)

४. अहेतुः पक्षपातो यस्तस्य नास्ति प्रतिक्रिया।
स हि स्नेहात्मकस्तन्तुरन्तर्भूतानि सीव्यति। (उ० रा० ५. १७.)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रीति (स्नेह, अनुराग) की उत्पत्ति में बाह्य उपाधियाँ (पुत्र-कलत्रादि सासारिक सम्बन्ध) अपेक्षित (आवश्यक) नहीं, क्योंकि (इस सहज अनुराग के ही कारण) सूर्योदय होने पर श्वेत कमल खिलता है और चन्द्रोदय होने पर चन्द्रकान्तमणि पिघलता है"[१] 'श्रृगारप्रकाश' में चौंसठ प्रकार के अनुराग बताये गये हैं :—अभिलाष, आकांक्षा, अपेक्षा, उत्कण्ठा, ईप्सा, लिप्सा, इच्छा, वांछा, तृष्णा, लालसा, स्पृहा, लौल्य, गर्द्धा, श्रद्धा, रुचि, दोहद, आशा, आशीः, आशंसा, सक्ति, मोह, आकूत, कुतूहल, विस्मय, राग, वेग, अध्यवसाय, व्यवसाय, कामना, वासना, स्मरण, संकल्प, रति, प्रीति, दाक्षिण्य, अनुग्रह, वात्सल्य, अनुक्रोश, विश्वास, विस्रम्भ, भाव, राग, वशीकार, प्रणय, प्राप्ति, पर्याप्ति, समाप्ति, अभिमानाप्ति, स्नेह, प्रेम, आह्लाद, निवृत्ति। इनके उदाहरण क्रमशः निम्नलिखित हैं।

अभिलाष—इसके उदाहरण में शकुन्तला का सौन्दर्य-वर्णन उद्धृत है—"यह वह फूल है जिसे अबतक किसी ने नहीं सूंघा है, यह वह कोमल किसलय है जिसे किसी के नखों ने नहीं तोड़ा है, यह वह रत्न है जिसे अभी वेधा भी नहीं गया है, यह वह नव-मधु है जिसके रस को किसी ने नहीं चखा है। इसका यह अकलुष रूप, अनिंद्य सौन्दर्य, जैसे पुण्यों का अखन्ड फल है। पता नहीं ब्रह्मा इस फल का उपभोक्ता किसे बनायेगा।"[२] दशरूपककार धनञ्जय ने यही उदाहरण स्त्रियों के, शोभा नामक अयत्नज, सत्त्वज अलंकार का दिया है।

आकांक्षा—'दोनों प्रेमी' परस्पर-प्रेरित प्रणय-वार्ता द्वारा उत्पन्न अनुराग में, कौतूहल के बढ़ जाने पर, मिलन-मनोरथ पूरा न कर सकने के कारण, दुःख से रह रहे हैं।[3]

---

१. व्यतिषजाति पदार्थानन्तरः कोऽपि हेतु-
न खलु वहिरुपाधीन्प्रीतयः संश्रयन्ते।
विकसति हि पतङ्गस्योदयं पुण्डरीकं
द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चन्द्रकान्तः (उ० रा० ६.१२)

२ अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररुहै-
रनाविद्धं रत्नं मधु नवमनास्वादितरसम्।
अखण्डं पुण्यानां फलमिव चतद्रूपमनघं-
न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति विधिः॥
(अभि० शा० २. ४८.१०)

३. एक्कक्कम संदेसाणुराअवढ्ढंत कोटहललाइं।
दुःखं असमत्तमणोरहाइ अच्छन्ति मिहुणाइ॥ (गा० श० ४.४२)
(अन्योन्यसंदेशानुरागवर्धमानि कौतूहलानि।
दुःखमसमाप्तमनोरथानि तिष्ठन्ति मिथुनानि॥)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अपेक्षा—'इसे ग्रहण करो एवं देखो' ऐसा कहकर जाया ने पुत्र के प्रथमोद्गत-युगदन्त द्वारा चिह्नित बेर फल को हँसते हुए पति को समर्पित किया'[1]

उत्कण्ठा—'मेरे जिन-जिन अङ्ग-स्थानों को वह निर्निमेष (एकटक, अपलक) नेत्रों से देखता है उन-उन अङ्गों को मैं छिपाती (भी) हूँ एवंउस (नायक) को दिखाना (भी चाहती हूँ)।'[2]

तृष्णा—'हे मामी! स्वप्न में पिए हुए जल द्वारा (जैसे) प्यास नहीं नष्ट होती (वैसे ही) अतृप्त नयन से उसे देखने की मेरी प्यास दूर नहीं हुई हैं।[3]

लालसा—'नायक नववधू के विशाल ऊरु (जांघें) तथा नितम्ब (जघन) मंजूषा (संपुट) के गठन को देखता है जो स्वर्ग नगर के बन्द किये हुए नये किवाड़ के समान है।[4]

स्पृहा—'बहुत पुण्य कर्मों रूपी वृक्ष के, एकमात्र फलस्वरूप किस (भाग्यवान्) के हाथ तुम्हारे इन स्तन के विस्तार (प्रसार) पर विश्राम करेंगे, जो कामदेव के आश्रय, घड़ों के समान आरोहावरोह वाले हैं।।'[5]

---

१. गेह्लह पलोअह इमं पहसिअ-वअणा पइस्स अप्पेइ।
जाओ-सुअ पढमुब्भिण्ण-दन्त-जुअलंकिअं बोरम्।। (वही २.१००)
(गृह्णीत प्रलोकयतेदं प्रहसितेवदना पत्युरर्पयति।
जाया सुत प्रथमोद्भिन्नदन्तयुगलाङ्कितं बदरम्।।)

२. जं जं सो णिज्झाअइ अंगोआसं महं अणिमिसच्छो।
पच्छाएमि अ तं तं इच्छमि अ तेण दीसंतं।। (वही)
यं यं स निध्यायति अङ्गावकाशं ममानिमिषाक्षः।
प्रच्छादयामि च तं तं इच्छामि च तेन दृश्यमानम्।।

३. अविअह्लपेच्छणिज्जेण तक्खणं मामितेण दिट्ठेण।
सिविणअपीएणत्पाणिएण तण्हव्विअ ण फिट्ठा।।
अवितृष्ण प्रेक्षणीयेन तत्क्षणं मातुलानि तेन दृष्टेन (वही १.९३)
स्वप्नपीतेनेव पानीयेन तृष्णैव न नष्टा।।

४. घडिऊरुसंपुडं णववहूए जहणं वरं पुलोएइ।
संदट्ठणवकवाडं दारंपिव सग्गणअरस्स।।
(घटितोरुसम्पुटं नववध्वा जघनं वरः प्रलोकयति।
संदष्टनवकपाटं द्वारमिव स्वर्गनगरस्य।।

५. कस्स करो बहुपुण्णफलेक्कतरुणो तुहं विसंमिहइ।
थणपरिणाहे संमहणिहाण कलसेव्व पारोहो।।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

दोहद—'सखियों द्वारा पूछे जाने पर कि तुम्हें क्या-क्या दिखाई पड़ता है' उस नव-दोहदवती (प्रबल इच्छा वाली) मुग्धा की दृष्टि केवल प्रिय की ओर गई'।[१]

आशा—'हे निर्दय ! गृहपरिपाटी के अनुसार, वह अभिनव सौन्दर्ययुक्ता, सुसज्जिता दीना (दयनीय) सुन्दरी तुम्हारे दर्शन की आशा से फेनक (बतासफेनी नामक मिठाइयाँ) लेकर आई है।'[२]

अभिनिवेश—(दृढ़ अनुराग) = 'लोकदु:खी, विषण्ण हो तो हो, इसकी निन्दा हो तो हो। हे रजस्वले ! आओ पार्श्व (बगल) में बैठो, मुझे नींद नहीं आती है।'[३]

अनुबन्ध—'मुझे (प्रिय) गले से लगा लेता है, बलपूर्वक नेत्रों का चुम्बन कर लेता है, एवं मेरे वस्त्रों का हरण कर लेता है। प्रथम सम्भोग के समय रात्रि का उत्तरपक्ष इसी प्रकार व्यतीत होता है।'[४]

आग्रह—आज घने अन्धकार में भी मुझे उस सुभग के पास अभिसार के

कस्य करो बहुपुण्यफलैकतरोस्तव विस्रमिष्यति ।
स्तनपरिणाहे मन्मथनिधान कलश इव प्ररोहः ॥

१. किं किं दे पडिहासइ स हीहि इह पुच्छिआए मुद्धाए ।
पडमुललअ-दोहलिणिए णवरं दइअं गआ दिट्ठी ॥
(किं किं ते प्रतिभासते सखीभिरिति पृष्टाया मुग्धायाः ।
प्रथमोद्गत दोहदिन्याः केवलं दयितं गता दृष्टिः ॥)

२. णीआइ अज्ज णिक्किव पिणद्ध णवरंगए वाराईए ।
घरपरिपाडीअ पहेणआइ तुह दंसणासाए ॥
(नीतानि अद्य निष्कृप पिनद्धनवरङ्गकया वराक्या ।
गृहपरिपाट्या प्रफेनकानि तव दर्शनाशया ॥)

३. लोओ जूरइ जूरइ वअणिज्जं होइ होउ तं णाम ।
एहि णिमज्जसुपासे पुप्फुवइ णं एइ मे णिद्दा ॥
(लोकः खिद्यति खिद्यतु वचनीयं भवति भवतु तन्नाम ।
एहि निषीद पार्श्वे पुष्पवति नैतिमे निद्रा ॥)

४. गह्णइ कठम्मि बलाचुम्बइ णअणाइ हरइ में सिचयं ।
पढमिसुरअम्मि रअणी परस्स एमेअ बोलेइ ॥
(गृह्णाति कण्ठे बलाच्चुम्बति नयने हरति मे सिचयम् ।
प्रथमसुरते रजनी परस्य एवमेवाप्रक्रामति ॥)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

लिये जाना पड़ेगा, यह सोचकर आर्या (श्रेष्ठ स्त्री) आँख मूद कर घर में ही पादचारी (पैदल चलने) का अभ्यास कर रही है।'[१]

विमर्श—(कदाचित) किंचित आवरणयुक्त, स्वल्प विकसित शरीर-सौन्दर्य-युक्त उस ईषत् यौवना की कटि (तपोधन) दमनक (दौना) वृक्ष अथवा रेणुका (सुपर्णी, मरिचाकृतिसुगन्धिद्रव्यविशेषः) के कोमल पत्ते की भाँति है।'[२]

मनीषा—'यह सुन्दरी तापसकन्या निःसन्देह क्षत्रिय के द्वारा स्वीकरण के योग्य है। क्योंकि मेरा भद्र, श्रेष्ठ मन इस (की प्राप्ति) का अभिलाषी हैं। संदिग्ध स्थलों एवं विषयों में अन्तःकरण का प्रवाह ही प्रमाण है।[३] दशरूपककार ने इसी पद्य को अयोगशृङ्गार की अभिलाष नामक अवस्था के उदाहरण-स्वरूप उधृत किया है।

अभिप्राय—'हे लुब्ध बालक ! रसपान की कामना के वेग एवं ऋतुमती के मुख-चुम्बन और हास्ययुक्त कंठश्लेष-सुख से तुम छले जा रहे हो।'[४]

अभिष्वङ्गः—(अनुरक्ति, प्रेम)'—मूलबन्ध ग्रंथि में दृढ़ता से ग्रथित मेरी भुजाओं को (प्रिय ने) बड़ी कठिनाई से छुड़ाया था। मैंने भी अपने उघरे, अव्यवस्थित स्तनों को उसके वक्षस्थल पर जमा दिया था।''[५]

---

१. अज्ज मए गंतव्वं घणंधआरे वि तस्स सुहअस्स।
अज्जा णिमीलअच्छी पअपरिवाडिं घरे कुणइ॥ (गा० स० ३.४९)
(अद्य मया गन्तव्यं धनान्धकारेऽपि तस्य सुभगस्य।
आर्या निमीलिताक्षी पदपरिपाटीं गृहे करोति॥)

२. कास्विदवकुण्ठनवती नातिपरिस्फुटशरीरलावण्या।
मध्येतपोधनानां किसलयमिव भाति पाण्डुपत्राणाम्॥

३. असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा यदार्यमस्यामभिलाषि मे मनः।
सतां हि संदेहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः॥ (अ० शा०)

४. वालअरे वञ्चिज्जसि लोलिर महुआणसद्ध पसराओ। पुप्फवई मुह चुम्बणं सहास कण्ठग्गह सुहाओ॥
[बालक रे ! वञ्चयसे लोलित मधुपान श्रद्धा प्रसरात्।
पुष्पवती मुख-चुम्बन स-हास कण्ठग्रह सुखात्॥]

५. दिढमूढ वद्धगण्ठि व मोइआ कहवि तेण में बाहू।
अम्हेहिंवि तस्स उरे खत्तव्व समुक्खआ थण आ॥
(गा० श० ३.७६)
(दृढ मूलबन्धग्रन्थीइव मोचितौ कथमपि तेन में बाहू।
अस्माभिरपि तस्योरसि निखाता इव समुत्खातौ स्तनौ॥)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

मोहः—'वे नायिकायें धन्या हैं जो निःश्वास, उत्कम्पन एवं पुलक से युक्त (प्रिय के साथ) नृत्य करना जानती है। किन्तु मेरी जैसी रमणी तो प्रिय को देखते ही आत्म-विस्मृत हो जाती है।'[१] हेमचन्द्र ने प्राकृत व्याकरण ४.१८० में दृश् धातु के पन्द्रह पर्यायादेश माने हैं। उसमें 'देखना' अर्थ में 'पुलोइएहि' 'पुलएइ' शब्द भी दिये हैं। अतः 'पुलोइएहि' का अर्थ 'देखना' या 'दृष्टि' करने पर 'निश्वास, उत्कम्पनयुक्त दृष्टि के साथ…' होगा।

आकूतः—अंगों से क्रीड़ा करता हुआ (उस नायिका का) प्रियपति तब तक (नायिका का) अङ्ग-स्पर्श, दर्शन एवं रमण करता है (जब तक) उस (नायिका का) कामोल्लास वा काम की (तिसा) तृष्णा शीतल, शान्त तुष्ट नहीं हो जाती। हेमचन्द्र ने उक्त व्याकरण में 'निअच्छइ' को भी 'दृश्' धात्वर्थक 'देखना' शब्द का पर्याय माना है।[२]

कुतूहल—(वेश) भूषा अपूर्ण होते हुए भी तुम उस कुतूहली, सोत्कण्ठ के घर जाओ (क्योंकि) इस (औत्सुक्य) त्वरा, हड़बड़ी के बीत जाने पर, हे पुत्री! तुम उसके चित्त पर नहीं चढ़ पाओगी (उसे आकर्षित नहीं कर पाओगी)'[३]

विस्मय—यह उपद्रव क्रम कैसा! बिना जल के कमल (नायिका का मुख), कमल पर दो नीलकमल (दो नेत्र), ये सब के सब स्वर्णलतिका (नायिका का गौर शरीर) पर विराजमान, एवं यह स्वर्णलतिका भी (सामान्य नहीं) कोमला और सुन्दरी।'[४]

---

१. णिसासुक्कंप पुलोइएहि जाणन्तिणच्चिउं धण्णा।
अंमारिसाण दिट्ठेपिअंमि अप्पा विपम्हसइ॥ (गा० स० ४. ६१)
[निश्वासोत्कंपित प्रलोकितैर्जानन्तिनर्तितुं धन्याः।
अस्मादृसां दृष्टे प्रिये आत्मापि विस्मर्यते॥]

२. ता छिवइ ता णिअच्छइ ता कुणइरअंमि तावचुंबेइ।
अंगेहि कीरइ पई कामोत्तवसीअलो तिस्सा॥
[तावत्स्पृषति तावन्नियच्छति तावत्करोति रते तावच्चुम्बति।
अगैः क्रीड़ति पतिः कामोत्सवशीतलस्तस्याः॥]

३. असमत्तमंडणं चिअ वच्च घरं से सकोउहल्लस्स।
वोलविअहलहलअस्स पुत्ति चित्तेचित्तेणलग्गिहिसि॥ [गा० स० १.२१]
[असमाप्तमण्डनैव व्रज गृहं तस्य सकौतूहलस्य।
व्यतिक्रान्तऔत्सुक्यस्य (अपक्रमितानुरागस्य) पुत्रि चित्ते न लगिष्यसि॥]

४. कमलमनम्भसि कमलेकुवलय मेतानि कनकलतिकायाम्।
सा च सुकुमार सुभगेत्युत्पात-परम्परा केयम्॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

राग—'गृहिणी के निविड़ (स्थूल) स्तनों द्वारा प्रेरित (उत्पन्न) सुखद क्रीड़ा में प्रवृत्त भावी (होने वाले) पथिक (प्रवासी) के लिए अपशकुन (सूचक) अंगारक-(मंगल ग्रह) वार (मंगलवार) एवं विष्टि (भद्रा = पक्षविशेष की द्वितीया, सप्तमी और द्वादशी तिथियाँ') के दिन भी (यात्रा विरोधी, होने के कारण) सुखद हो रहे हैं ।'[१]

वेग—जानती हूँ कि लोग बड़े निपुण हैं एवं गुरुजनों के बीच मैं वैठी (विद्यमान) हूँ । किन्तु प्रिय सखि ! क्या करूँ, रोकने (मना करने, नियंत्रित करने) पर भी मेरी दृष्टि हठात् 'प्रिय की ओर घूम जाती है ।'[२]

अध्यवसाय—"समानुराग (समान प्रेम) रखने (करने) वाले व्यक्ति सहज प्राप्य नहीं हैं, प्रार्थित (प्रार्थना किये जाने पर भी) विधि (दैव, भाग्य) के अदम्य (अनमनीय) होने पर, मेरी यह दशा (परिपाक) उचित ही है (प्रिय के प्रति खिन्न, विषण्ण होना स्वाभाविक है), तथापि उसके मुख से (मेरी) निन्दा सुनना, तथा उस समय उसके मुख का नष्टप्राय प्रातःकालीन चन्द्रमा के समान क्षीणप्रभ (कान्ति) होना मेरे हृदय को जलाता है (मेरी निन्दा एवं मेरे मिलनकाल में उसका विच्छाय-बदन, निष्प्रभ हो जाना उसके हृदय में मेरे प्रति समान प्रेम के न होने के तथ्य को प्रमाणित करता है ।"[३]

व्यवसाय—'उसके प्रेम, सौन्दर्य सम्बन्धी गुणों और मेरे अस्त्रियोचित, अस्त्रीसुलभ साहस (के आदर्शों, निदर्शनों) को गोदावरी का प्रवाह, जलसमूह,

---

१. घरिणि घणत्थण-पेल्लणसुहेल्लि पडिअस्स होंतपहिअस्स ।
अवसउणंगारअवारविट्ठिदिहआ सुहावेंति ॥ [गा० स० ३. ६१]
[गृहिणी घनस्तन प्रेरणसुखकेलिपतितस्य भविष्यत्पथिकस्य ।
अपशकुनांगारकवार-विष्टिदिवसाः सुखयन्ति ॥]

२. जाणम्मि जणो णिउणो गुरुअणम-ज्झम्मि संठिआ अ अहं ।
ता किं करोमि पिअसहि घरिआवि बला वलइ दिट्ठी ॥
[जानामि जनो निपुणो गुरुजनमध्ये संस्थिता चाहम् ।
तत्किं करोमि प्रियसखि धृतापि बलात् वलते दृष्टिः ॥]

३. समानप्रेमाणं जनमसुलभं प्रार्थितवतो
विधौ वामारम्भे मम समुचितैषा परिणतिः ।
तथाप्येवं निन्दा श्रवण समयेऽस्याःप्रविगलत्
प्रभं प्रातश्चन्द्र द्युति-वदनमन्तर्दहति माम् ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

जलप्लावन एवं वर्षाकालीन रात्रियाँ और अर्धरात्रियाँ ही जानती हैं।'[1]

वासना—'सपत्नी के प्रणय को पूर्ण (संतुष्ट) करके आये हुए भी अत्यन्त प्रियदर्शन (देखने में अतिसुन्दर) (कृष्ण) के प्रति क्रुद्ध होने के स्थान पर रुक्मिणी आकृष्ट हुईं'।[2]

स्मरण—व्याजनिद्रा में मुख फेर कर सोई हुई (उस नायिका ने) मान नष्ट होने पर करवट बदल कर, कलशवत् कुचों से धक्का देकर, जो केलि (रतिक्रीड़ा) का सुख दिया था उसे मैं (आज भी) स्मरण कर रहा हूँ।[3]

सङ्कल्प—कारागार में बन्द रहने, सूचीभेद्य (घना) अन्धकार के होने तथा मेरे द्वारा (मेरे) नेत्रों के बन्द किये होने पर भी मेरे प्रिय का मुख-मण्डल (मेरे समक्ष) व्यक्त (दृष्टिगोचर) है।'[4]

भाव—देखने पर यदि पुलकित होती हो, प्रिय के समीप आने पर यदि तुम्हारा हृदय धड़कने लगता है एवं प्रिय के साथ बात करने पर यदि पसीने से भीग जाती हो तो (प्रिय द्वारा) शरीर-स्पर्श किये जाने पर क्यों लज्जित होती हो।'[5]

---

१. तस्स अ सोहग्गगुणं अमहिलसरिसं अ साहसं मज्झ।
जाणइ गोलाऊरो वासरत्तद्धरत्तो अ॥
[तस्य च सौभाग्यगुणं अमहिला-सदृशं च साहसं मम।
जानाति गोदापूरो वर्षारात्रर्धं रात्रश्च॥]

२. आणिअ पुलउब्भेओ सवत्ति पणअ पडिपूरणंमिगरुए।
पिअःदंसणे पवट्टइ मंतुट्ठाणे वि रुप्पिणीए पहरिसो॥
आनीतपुलकोद्भेदस्सपत्नी-प्रणय-प्रतिपूर्णेऽपि गुरुणि।
प्रियदर्शने प्रवर्तते मन्युस्थानेऽपि रुक्मिण्या प्रहर्षः॥]

३. म्हरिम्मो से सअण परंमुहीए विअलंतमाणपसराए।
कइअव सुत्तुव्वत्तण थण-कलस प्पेल्लण सुहेल्लि॥
(गा० स० ४. ६८)
[स्मरामस्तस्याः शयनपराङ्मुख्या विगलन्मानप्रसरायाः।
कैतवसुप्ताद्वर्तन-स्तनकलश-प्रेरण-सुख-केलिम्॥]

४. पिहिते कारागारे तमसि च सूचीमुखाग्रनिर्भेद्ये।
मयि च निमीलितनयने तथापि कान्ताननं व्यक्तम्॥

५. दिठ्ठे जं पुलइज्जसि थरहरसि पिअम्मि जं समासण्णे।
तह सम्भासण सेउल्लिल फंसड़े किं वि लज्जिहिसि॥
दृष्टे यत् पुलकिष्यसि थरथरसि प्रिये यत्समापन्ने।
तथा सम्भाषण-स्वेदार्द्रे स्पर्शने किमपि लज्जिष्यसे॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

रतिः—'वह मुहूर्त (वह समय) मेरे लिए आश्चर्यवत् (विस्मयकारी) सम्पत्तिवत् (धन के समान), स्वर्ग के राज्य के समान एवं अमृतपान की भाँति था जब मुझे उसके सह-निवास तथा दर्शन का सुख प्राप्त था।'[1]

प्रीतिः—'प्रिया की वाणी (वार्तालाप) के प्रलापवत् अनालोचित (अस्पष्ट) अक्षरों (के आशय) को (प्रिय) बहुत काल तक पूछता रहा है (क्योंकि) नववधू के प्रथम सम्भाषण वर (प्रिय) के हृदय में नहीं समा पाते हैं।'[2]

दाक्षिण्यः—'नववधू के प्रेम में अत्यन्त क्षीणकाय होने पर भी व्याध प्रथम गृहिणी के प्रेम की रक्षा करने के लिए चित्रित एवं कठिनाई से खींचे जाने योग्य धनुष को अरण्य में ढो रहा है।'[3]

अनुग्रहः—'ग्रीष्मऋतु के अपराह्न में रमण करने वाले खिन्नपति के वक्षः-स्थलपर आर्द्र (भीगे हुए शीतल) गलित पुष्पों, स्नानकालीन सुगन्धित द्रव्यों से युक्त अपने केशों का भार स्थापित कर रही है।'[4]

अनुक्रोशः—'हे जलधर ! समस्त सामर्थ्य से मुझ लौहवत् कठोर हृदय (वाले व्यक्ति) के ऊपर गर्जन करो। लम्बी-लम्बी अलकों वाली उस वराकी (बेचारी) कामिनी को मत मारना'।[5]

---

१. अच्छेरं व णिहिं विअ सग्गे रज्जं व अमअपाणं व।
आसि मह तं मुहुत्तं विणिअंसणं दसणं तिस्सा॥
[आश्चर्यमिव, निधिमिव, स्वर्गे राज्यमिव, अमृतपानमिव।
आसीन्मम तन्मुहूर्तं विनिवसन-दर्शनं तस्याः॥]

२. अविहाविअ-अक्खर-वआ चिरेण अणुबन्धपुच्छिअपलत्ता।
णववहु पडमललावा वरस्स हिअए णऽमाएन्ति॥
[अविभाविताक्षर-वचसः चिरेण अनुबन्ध-पृष्ट-प्रलपिता।
नववधू प्रथमोल्लापा वरस्य हृदये न मान्ति॥]

३. णववहु पेम तणुइओ पणअं पढमघरिणीए रक्खन्तो।
आलिहिअ दुप्परि अल्लम्पि णेइरण्णं धणुं वाहो॥ (गा० स० २.२२)
[नववधूप्रेमतनूकृतोप्रणयं प्रथमगृहिण्या रक्षन्।
आलिखित-दुराकर्षमपि नयत्यरण्यं धनुर्व्याधः॥

४. खिण्णस्स उरे पइणो ठवेइ गिम्हा वरण्ह रमिअस्स।
ओलं गलन्त-पुप्फं णहाण सुअन्धं-चिहुर भारं॥ (वही ३.९९)
[खिन्नस्योरसि पत्युः स्थापयति ग्रीष्मापराह्णरमितस्य।
आर्द्रं गलत्पुष्पं स्नानसुगन्धं चिकुरभारम्॥]

५. गज्जमहच्चिअ उअरिं सव्वत्थामेण लोह हिअअस्स।
जलहर लंबाल इअं मा रे मारेहिसि बराई॥ (वही ६.६६)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

विस्रम्भः—सप्रेम नेत्रों से देखना, परस्पर इष्ट मनोहर वार्ता एवं प्रातः कालीन प्रणय-क्रीड़ा, उन दोनों की घनिष्ठता, आत्मीयता, प्रणय का कथन कर रही (प्रमाण दे रही) है।"[१]

वशीकारः—सूर्य का आलोक 'शेष' रहते ही हंसती हुई गृहिणी गृहस्वामी को ग्रहण (पकड़) कर अनिच्छुक उस (गृहस्वामी) के दोनों चरणों को धो डाल रही है।'[२]

प्रणयः—'(प्रियपर) प्रहार करने में उद्विग्न (खिन्न) मेरा एक हाथ प्रिय द्वारा मुख के वीजन (वायु) द्वारा वीजित (पंखा झल कर ठंढा किया गया) होने पर दूसरे हाथ से मैंने, हंसते हुए, उस (प्रिय) को पकड़ कर कंठ से लगा लिया।'[३]

अभिमानाप्तिः—'सब कुछ जल जाने पर भी (मेरे) हृदय को सुख ही प्राप्त हुआ; क्योंकि ग्राम-दाह के समय उसने मेरे हाथ से अपनेहाथ में घड़ा ग्रहण किया था।"[४]

[गर्जमम्मैवोपरि सर्वस्थाम्ना लोहहृदयस्य।
जलधर लम्बालकं मारे मारयिष्यसि वराकीम्॥]

१. समअण णअणालोअण सच्चविअण्णोण्ण मणहरा आवो।
पच्चूसरअ विलासो वीसंभं कहइ मिहुणाणं॥
[समदन नयनालोकन सत्यापितान्योन्यमनोहरालापः।
प्रत्यूषरत विलासो विस्रम्भं कथयति मिथुनानाम्॥]

२. सालोएच्चिअ सूरे घरिणी घरसामिअस्स घेत्तूण।
णेच्छंतस्स वि पाए धुवइ हसंती हसंतस्स॥ (गा० स० २.३०)
[सालोक एव सूर्ये गृहिणी गृहस्वामिनो गृहीत्वा।
अनिच्छतोऽपि पादौ धावति हसन्ती हसतः॥]

३. एक्कं पहरुविण्णं हत्थं मुहमारुएण वीअंतो
सो वि हसंतीएं मएं गहिए विएण कंठंम्मि॥ (गा० स० १.८६)
[एकं प्रहारोद्विग्नं हस्तं मुखमारुतेन वीजयन्।
सोऽपि हसन्त्या मया गृहीतो द्वितीयेन कण्ठे॥]

४. सब्वस्सम्मि वि दड्ढे तहवि हु हिअअस्स णिव्वुदिच्चेअ।
जं तेण गाम डाहे हत्था हत्थि कुडो गहिओ॥
[सर्वस्वेऽपि दग्धे तथापि खलु हृदयस्य निर्वृतिरेव।
यत्तेन ग्रामदाहे हस्ता हस्तिकया कुटोगृहीतः॥]

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

आल्हादः—'प्रिय के मनोहर मुख का दर्शन बड़ा मंहगा (मूल्यवान) है। उसके ग्राम-क्षेत्र की सीमा भी दृष्टिगत हो जाने पर परम सुख मिलता है।'[1]

निवृत्तिः—हे सुभग! अनुकूलतावश हम लोगों के समीप उपस्थित हो कर भी (हम लोगों को तृप्त करके भी) हमारे हृदय को इतना सुखी करते हो। जिनके निकट अकपट ही चले जाते हो। (जिनके ऊपर निष्कपट भाव से अनुरक्त हो) उनके सुख का क्या कहना'।[2]

अनुराग के प्रभेदः—अनुराग के पूर्वोक्त ६४ प्रकारों में प्रत्येक के आठ-आठ प्रभेद हैं।—नित्यानुराग, नैमित्तिकानुराग, सामान्यानुराग, विशेषानुराग, प्रकाशानुराग, प्रच्छन्नानुराग, अकृत्रिमानुराग और कृत्रिमानुराग।

कालादिकारणनिरपेक्षराग नित्यानुराग है, इसका विपरीत अर्थात् कालकारणसापेक्ष नैमित्तिक है. सामान्यानुराग जाति-विषय सामान्य होता है; विशेषानुराग जाति, क्रिया, गुणादि के कारण व्यक्ति विशेष से सम्बन्ध रखता है, जब नायक-नायिकादि के अङ्ग, वेषभूषादि सामान्यतः सर्वसामान्य से दृष्टिगोचर होते हैं तो वह प्रकाशानुराग का उदाहरण है। जहाँ अङ्ग सज्जादिकों को सामान्य लोगों की दृष्टि से छिपाने का प्रयत्न होता है वहाँ प्रच्छन्नानुराग होता है; पहले से अविद्यमान कार्य के लिए प्रयत्नशीलता कृत्रिमानुराग है; एवं जहाँ अनुराग-प्रदर्शन में स्वाभाविकता होती है वहाँ अकृत्रिमानुराग होता है।

उक्त नित्यानुरागादि भेदों के भी, पुनरपि २४-२४ भेद प्रत्येक में होते हैं। इनमें से प्रथम आठ प्रमुख, नित्य, नैमित्तिक आदि के एक-एक उदाहरण द्रष्टव्य हैं।

नित्यानुरागः—'रमणोपरान्त दो चार पग जा कर (प्रिय) आलिंगन के लिए जब लौटा तो मेरी स्थिति प्रोषितपतिका (जिसका पति विदेश गया

---

१. अच्च उ ताव मणहर पिआए मुह दंसणं अइ महग्घं।
तग्गाम छेत्त सीमा वि झत्ति दिट्ठा सुहावे इ॥
[अस्तु तावन्मनोहरं प्रियाया मुखदर्शनमतिमहार्घम्।
तद्ग्राम क्षेत्र सीमापि झटिति दृष्टा सुखयति॥]

२. दक्खिण्णेण वि एंतो सुहअ सुहाएसि अम्हहिअआइं।
णिक्कइ अवाउरत्तो (अवेण जाणं) सि जाण का णिव्बुई ताणं॥
[गा० स० १-८५]
[दाक्षिण्ये नाप्यागच्छन् (नाप्यायन्) सुभग सुखयस्यस्माकं हृदयानि।
निष्कैतवेन यासां गतो (रक्तो) ऽसि का निर्वृतिस्तासाम्॥]

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हो) की तथा उस (प्रिय) की (स्थिति) प्रवासी की थी'[१] यह स्त्री पुरुष का परस्पर-उत्तम अनुराग है, कालकारण निरपेक्ष है।

नैमित्तिकानुराग:--"हे करभोरु ! (हाथी के सूड़ के समान जंघों वाली) इस घनान्धकारपूर्ण रात्रि में कहाँ जा रही हो ?" (मैं वहाँ जा रही हूँ) जहाँ मेरे मन को प्रिय लगने वाला प्राणनाथ रहता है। "हे बालिके ! बताओ क्या तुम अकेली भयभीत नहीं हो ?" (नहीं) मेरा सहायक पंखयुक्त बाणों वाला कामदेव है"।[२] यह नैशीथ अनुराग है अत: रात्रिकाल सापेक्ष है।

सामान्यानुराग—'चन्दन का पंक (घिसा चन्दन) भी कामी (काम के ताप से तप्त) युगल का ताप उस प्रकार नहीं शीतल (शमित, शान्त) कर पाता जिस प्रकार (कठिनाई से सहने योग्य) ग्रीष्म में (भी) परस्परालिङ्गन-जन्य सुखद काम-क्रीड़ा।[३] यहाँ कामी जनों के सामान्य गुण का वर्णन है।

विशेषानुराग:—'एकान्त प्रतिरिक्त निर्जन स्थान में प्रिय के अनुनय-विनय से दूर किये गये मान को समाप्त करना केवल वही (नायिका ही) जानती है'।[४] यह गुणकृत विशेषानुराग (व्यक्ति विशिष्ट का अनुराग) का उदाहरण है।

प्रकाशानुराग:--'उस (प्रिय) के विना (विरह में) (अतीत कालीन) सुखानुभूतियों का स्मरण करती हुई मुझे नव (जो अभी-अभी जलयुक्त हो कर

---

१. रमिऊण पअं विगओ जाहे उवऊहिउं पडिणिउत्तो।
अहअं पउत्थपइए व तक्खड़ं सो पवासिव्व ॥ [गा० स० १-९८]
[रन्त्वा पदमपि गतो यदोपगूहितु प्रतिनिवृत्तिः।
अहं प्रोषितपतिकेव तत्क्षणं स प्रवासीव ॥]

२. क्व प्रस्थितासि करभोरु घने निशीथे प्राणेश्वरो वसति यत्र मन:प्रियो मे।
एकाकिनी वद कथं न विभेषि वाले नन्वस्ति पुंखितशरो मदनस्सहायः ॥

३. तावमवणेइ ण तहा चंदणपंकोवि कामिमिहुणस्स।
जहदूसहेवि गिम्हे अण्णोण्णालिंगणसुहेल्ली ॥ [गा० स० ३-८८]
[तापमपनयति न तथा चन्दन-पंकोऽपि कामिमिथुनस्य।
यथा दुस्सहोऽपि ग्रीष्मे अन्योन्यालिङ्गनसुखकेलि: ॥]

४. जाणइ जाणावेउं अणुणअ विद्दविअ माणपरिसेसं।
अइरिक्कम्मि (पाइरिक्कम्मि) वि विणआवलंबणं सच्चिअ कुणन्ती ॥
[वही १.८८]

[जानाति ज्ञापयितुमनुनयविद्रावितमानपरशेषम्।
विजनेऽपि (प्रतिरिक्तेऽपि) विनयावलम्बनं सैव कुर्वती ॥]

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

प्रकट हुए हैं) मेघों की ध्वनि वध के समय की गई घोषणा के समान सुनाई पड़ रही है।'[१] यह विरहोत्कण्ठिता नायिका के प्रकट अनुराग का उदाहरण है।

प्रच्छन्नानुरागः—'जिस प्रवर्धित (वा प्रच्छन्न) स्नेह एवं सद्भाव-विभ्रम (सौन्दर्य) से नायिका ने मुझे (तुम्हें) देखा है उसका संवरण (निग्रह) करने, उसको छिपाने में व्याप्त (संलग्न) वह अन्द लोगों को भी उसी प्रकार देख रही है।'[२] भोज के शृंगार-प्रकाश एवं गाथा सप्तशती में 'पाअडिअ' शब्द का प्रयोग किया गया है जिसका अर्थ 'प्रकटित' किया गया है। प्रसंगानुसार यहाँ 'प्रकटित' अर्थ संगत नहीं है क्योंकि भोज ने यह पद्य 'धीरा' (नायिका) विषयक 'प्रच्छन्नानुराग' के उदाहरण में उद्धृत किया है। यदि प्रच्छन्नानुरागिनी नायिका का स्नेह 'प्रकटित' हुआ तो नायिका प्रच्छन्नानुरागिनी न होकर 'प्रकाशानुरागिनी' होगी। 'पाइअ सद्दमहण्णव' में 'पाअडिअ' शब्द मिलता भी नहीं। आच्छादित या प्रावृत अर्थ में 'पावय' वा 'पाउड', एवं प्रवर्धित अर्थ में 'पवड्ढिय' शब्द मिलता है जो 'पवड्ढण' से बना है। भाव और आशयानुसार यहाँ 'पाउड' वा 'पवड्ढिय' का उपयोग उचित होता है।

कृत्रिमानुरागः—'हे पड़ोसिन ! कुछ क्षणों तक मेरे इस घर पर भी दृष्टि रखना। इस लड़के के पिता प्रायः कुएँ का कुस्वादु जल नहीं पीते। अतः मैं अकेली ही इस तमालवृक्षों से आच्छादित झरने पर जा रही हूँ। कहीं पुराने गांठ-दार नल (संरकंडें) मेरे शरीर को खरोंच न लें।'[३] दशरूपककार धनंजय ने यह पद्य नायकान्तर सम्बन्धिनी अन्योढा नायिका के, साहित्यदर्पणकार आचार्य

---

१. अज्जमए तेण विणा अणुहूअ सुहाइं संभरन्तीए।
अहिणव मेहाणं रवो णिसामिओ वज्झपडहोव्व ॥ [वही १.२९]
[अद्यमया तेन विना अनुभूतसुखानि संस्मरन्त्या।
अभिनवमेघानां रवो निशामितो वध्य पटह इव ॥]

२. पाअडिअ णेह सब्भाव णिब्भरं (विब्भमं) तीए जह अहं दिट्ठो।
संवरण वावडाए अण्णोवि जणो तहच्चेअ (व्वेअ) ॥ [गा० स०२.९९]
[प्रकटितस्नेहे सद्भावविभ्रमं तया यथाऽहं (त्वं) दृष्टः।
संवरण व्यापृतया अन्योऽपि जनस्तथैव ॥]

३. दृष्टि हे प्रतिवेशिनि क्षणमिहाप्यस्मद्गृहे दास्यसि
प्रायेणास्य शिशोः पिता न विरसाः कौपीरपः पास्यति।
एकाकिन्यपि यामि सत्वरमितः स्रोतस्तमालाकुलं-
नीरन्ध्रास्तनुमालिखन्तु जरठच्छेदा नलग्रन्थयः॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu. Collection

हो) की तथा उस (प्रिय) की (स्थिति) प्रवासी की थी'[1] यह स्त्री पुरुष का परस्पर-उत्तम अनुराग है, कालकारण निरपेक्ष है।

नैमित्तिकानुराग:--"हे करभोरु ! (हाथी के सूड़ के समान जंघों वाली) इस घनान्धकारपूर्ण रात्रि में कहाँ जा रही हो ?" (मैं वहाँ जा रही हूँ) जहाँ मेरे मन को प्रिय लगने वाला प्राणनाथ रहता है। "हे बालिके ! बताओ क्या तुम अकेली भयभीत नहीं हो ?" (नहीं) मेरा सहायक पंखयुक्त बाणों वाला कामदेव है"।[2] यह नैशीथ अनुराग है अतः रात्रिकाल सापेक्ष है।

सामान्यानुराग—'चन्दन का पंक (घिसा चन्दन) भी कामी (काम के ताप से तप्त) युगल का ताप उस प्रकार नहीं शीतल (शमित, शान्त) कर पाता जिस प्रकार (कठिनाई से सहने योग्य) ग्रीष्म में (भी) परस्परालिङ्गन-जन्य सुखद काम-क्रीड़ा।[3] यहाँ कामी जनों के सामान्य गुण का वर्णन है।

विशेषानुराग:—'एकान्त प्रतिरिक्त निर्जन स्थान में प्रिय के अनुनय-विनय से दूर किये गये मान को समाप्त करना केवल वही (नायिका ही) जानती है'।[4] यह गुणकृत विशेषानुराग (व्यक्ति विशिष्ट का अनुराग) का उदाहरण है।

प्रकाशानुराग:--'उस (प्रिय) के विना (विरह में) (अतीत कालीन) सुखानुभूतियों का स्मरण करती हुई मुझे नव (जो अभी-अभी जलयुक्त हो कर

---

१. रमिऊण पअं विगओ जाहे उवऊहिउं पडिणिउत्तो।
अहअं पउत्थपइए व तक्खडं सो पवासिव्व ॥ [गा० स० १-९८]
[रन्त्वा पदमपि गतो यदोपगूहितु प्रतिनिवृत्तिः।
अहं प्रोषितपतिकेव तत्क्षणं स प्रवासीव ॥]

२. क्व प्रस्थितासि करभोरु घने निशीथे प्राणेश्वरो वसति यत्र मनःप्रियो मे।
एकाकिनी वद कथं न विभेषि वाले नन्वस्ति पुंखितशरो मदनस्सहायः ॥

३. तावमवणेइ ण तहा चंदणपंकोवि कामिमिहुणस्स।
जहदूसहेवि गिम्हे अण्णोण्णालिंगणसुहेल्ली ॥ [गा० स० २-८८]
[तापमपनयति न तथा चन्दन-पंकोऽपि कामिमिथुनस्य।
यथा दुस्सहोऽपि ग्रीष्मे अन्योन्यालिङ्गनसुखकेलिः ॥]

४. जाणइ जाणावेउं अणुणअ विद्दविअ माणपरिसेसं।
अइरिक्कम्मि (पाइरिक्कम्मि) वि विणआवलंबणं सच्चिअ कुणन्ती ॥
[वही १.८८]

[जानाति ज्ञापयितुमनुनयविद्रावितमानपरशेषम्।
विजनेऽपि (प्रतिरिक्तेऽपि) विनयावलम्बनं सैव कुर्वती ॥]

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

प्रकट हुए हैं) मेघों की ध्वनि वध के समय की गई घोषणा के समान सुनाई पड़ रही है।'[१] यह विरहोत्कण्ठिता नायिका के प्रकट अनुराग का उदाहरण है।

प्रच्छन्नानुरागः—'जिस प्रवर्धित (वा प्रच्छन्न) स्नेह एवं सद्भाव-विभ्रम (सौन्दर्य) से नायिका ने मुझे (तुम्हें) देखा है उसका संवरण (निग्रह) करने, उसको छिपाने में व्याप्त (संलग्न) वह अन्य लोगों को भी उसी प्रकार देख रही है।'[२] भोज के शृंगार-प्रकाश एवं गाथा सप्तशती में 'पाअडिअ' शब्द का प्रयोग किया गया है जिसका अर्थ 'प्रकटित' किया गया है। प्रसंगानुसार यहाँ 'प्रकटित' अर्थ संगत नहीं है क्योंकि भोज ने यह पद्य 'धीरा' (नायिका) विषयक 'प्रच्छन्नानुराग' के उदाहरण में उद्धृत किया है। यदि प्रच्छन्नानुरागिनी नायिका का स्नेह 'प्रकटित' हुआ तो नायिका प्रच्छन्नानुरागिनी न होकर 'प्रकाशानुरागिनी' होगी। 'पाइअ सद्दमहण्णव' में 'पाअडिअ' शब्द मिलता भी नहीं। आच्छादित या प्रावृत अर्थ में 'पावय' वा 'पाउड', एवं प्रवर्धित अर्थ में 'पवड्ढिय' शब्द मिलता है जो 'पवड्ढण' से बना है। भाव और आशयानुसार यहाँ 'पाउड' वा 'पवड्ढिय' का उपयोग उचित होता है।

कृत्रिमानुरागः—'हे पड़ोसिन ! कुछ क्षणों तक मेरे इस घर पर भी दृष्टि रखना। इस लड़के के पिता प्रायः कुएँ का कुस्वादु जल नहीं पीते। अतः मैं अकेली ही इस तमालवृक्षों से आच्छादित झरने पर जा रही हूँ। कहीं पुराने गांठ-दार नल (सरकंडे) मेरे शरीर को खरोंच न लें।'[३] दशरूपककार धनंजय ने यह पद्य नायकान्तर सम्बन्धिनी अन्योढा नायिका के, साहित्यदर्पणकार आचार्य

---

१. अज्जमए तेण विणा अणुहूअ सुहाइं संभरन्तीए।
अहिणव मेहाणं रवो णिसामिओ वज्झपडहोव्व॥ [वही १.२९]
[अद्यमया तेन विना अनुभूतसुखानि संस्मरन्त्या।
अभिनवमेघानां रवो निशामितो वध्य पटह इव॥]

२. पाअडिअ णेह सब्भाव णिब्भरं (विब्भमं) तीए जह अहं दिट्ठो।
संवरण वावडाए अण्णोवि जणो तहच्चेअ (व्वेअ)॥ [गा० स०२.९९]
[प्रकटितस्नेहे सद्भावविभ्रमं तया यथाऽहं (त्वं) दृष्टः।
संवरण व्यापृतया अन्योऽपि जनस्तथैव॥]

३. दृष्टि हे प्रतिवेशिनि क्षणमिहाप्यस्मद्गृहे दास्यसि
प्रायेणास्य शिशोः पिता न विरसाः कौपीरपःपास्यति।
एकाकिन्यपि यामि सत्वरमितः स्रोतस्तमालाकुलं-
नीरन्ध्रास्तनुमालिखन्तु जरठच्छेदा नलग्रन्थयः॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu. Collection

विश्वनाथ ने अर्थशक्त्युद्भवध्वनि के, एवं भोज ने इसे प्रकाशानुकारी कृत्रिमानुराग के उदाहरण में उद्धृत किया है।

अकृत्रिमानुरागः—'हे मामी! हरिद्रायुक्त जल से स्नान करते समय बहते हुए उस कटुक (कड़वा) जल को पी कर उस युवक ने जैसे मेरा हृदय ही पी लिया।'[1]

शृंगार-प्रकाश में शृंगार रसः—शृंगार-प्रकाश का तेइसवाँ प्रकाश विप्रलम्भ-संभोग नामक शृंगारके द्विविध भेदों एवं विविध उपभेदों का विस्तीर्ण वर्णन प्रस्तुत करता है। तदनुसार शृंगार के दो भेद होते हैं—संभोग शृंगार, विप्रलम्भ शृंगार। अभिलषणीय आलिंगनादि की अवाप्ति (प्राप्ति) संभोग एवं उनकी अनवाप्ति विप्रलम्भ शृंगार हैं। 'सरस्वती कंठाभरण' के अनुसार 'जब रति नामक भाव उत्कट हो किन्तु प्रिय की प्राप्ति न हो तो वह विप्रलम्भ शृंगार कहा जाता है।'[2] भोजराज कहते हैं—'संभोग विप्रलम्भ के विना उत्कर्ष नहीं प्राप्त करता क्योंकि वस्त्र के कषाय (कसैला, गेरुआ) रंग में रंजित होने पर ही समुज्ज्वल (भूयान्) वर्ण की वृद्धि होती है।'[3] उन्होंने दोनों के सूक्ष्म भेदक गुण भी बताये हैं। उनके अनुसार संभोग तथा विप्रलम्भ के अन्तर्गत नायिकादि की बहिरन्तर दशायें और चेष्टायें भी परिवर्तित हो जाती हैं। 'विप्रलम्भ में, चित्त की विकृति के कारण दम्पति के हृदय में विविध प्रकार के संकल्प उत्पन्न होते हैं। एवं सम्भोग में आलिङ्गनादि चेष्टायें होती हैं।'[4] संभोग शृंगार में प्रियजन की प्राप्ति के कारण अनुराग प्रवृद्ध रहता है।'[5] 'शृंगार-प्रकाश' में सम्भोग एवं विप्रलम्भ दोनों के चार-चार भेद भोज ने गिनाये हैं।

---

१. मामिहिअअं व पीअं तेण जुआणेण मज्जमाणाए।
ण्हाणहलिद्दाकडुअं अणुसोत्तजलं पिअन्तेण॥ [गा० स० ३-५९]
[मामि हृदयमिव पीतं तेन यूना मज्जन्त्याः।
स्नानहरिद्रां कटुकमनुस्रोतो जलं पिवता॥

२. भावो यदा रतिर्नामप्रकर्षमधिगच्छति।
नाधिगच्छति चाभीष्टं विप्रलम्भस्तदोच्यते॥ [शृं० प्र० ५-४५]

३. न विना विप्रलम्भेन सम्भोगः पुष्टिमश्नुते।
कषायिते हि वस्त्रादौ भूयान् रागोऽनुषज्यते॥ [शृं० प्र० ५-५२]

४. स्त्रीपुंसयोर्विप्रलम्भे वैचित्त्याकल्पनादयः।
चेष्टा विशेषाः सम्भोगे चुम्बनालिङ्गनादयः॥ [वही ५ ५३]

५. रतिरेवेष्ट सम्प्राप्तौ पुष्टः सम्भोग उच्यते।
सोऽपि पूर्वानुरागादेरानन्तर्याच्चतुर्विधः॥ [स० कं० ५-५१]

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

संभोग के [१]प्रथमानुरागानन्तर [२]मानानन्तर, [३]प्रवासानन्तर एवं [४]करुणानन्तर तथा विप्रलम्भ के [१]प्रथमानुराग, [२]मान, [३]प्रवास, एवं [४]करुण। 'सरस्वती-कंठाभरण' के अनुसार 'विप्रलम्भ उत्तम (प्रकाण्ड) नायक-नायिकादि में पूर्वानुराग, मान, प्रवास एवं करुण इन चार विषियों में (चतुःकाण्ड) प्रकाशित होता है। बिना किसी पूर्व संकेत के ही स्त्री-पुरुष में जो अन्योन्यानुराग उत्पन्न होता है वह (संकल्प) वासना विशेष से रमणीय होने के कारण पूर्वराग कहा जाता है। प्रेम की गति सर्प-गति के समान कुटिला होती है, (इस कारण) 'नहीं, नहीं' इस कथन के द्वारा नैराश्य, असहमति वा खण्डन व्यक्त करने के कारण दम्पति के दीर्घकालीन विच्छेद को प्रवास कहते हैं। प्रिय के मृत हो जाने पर दुःखिनी प्रिया को जो दुःखानुभूति होती है उसे करुण विप्रलम्भ कहते हैं।'[१] यहाँ मृत्यु का आशय मरने के समान होकर पुनः प्राप्य होने से है।

विप्रलम्भ शृंगार के भेद एवं तद्गत विप्रलम्भ (वञ्चन) की स्थितिः—'विप्रलम्भ' और 'सम्भोग' शब्दों के व्युत्पत्यार्थ को दृष्टि में रख कर भोजराज ने इनके पुनः चार-चार भेद किये हैं। 'विप्रलम्भ की व्युत्पत्ति करते हुए उन्होंने कहा है—'लभ' धातु 'प्राप्ति' अर्थक होते हुए भी 'प्र' उपसर्ग के योग से 'वंचन' (प्रतारण, ठगी) अर्थक हो जाता है क्योंकि 'प्र' की प्रकृति (प्रक्रियते कार्यादिकमनयेति) स्वभाव-विपरीतार्थ वाचक (भी) होता है (प्रस्य प्रकृतिविपरीतार्थवाचकत्वात्) जैसे, 'प्रतिष्ठते' (प्रतितिष्ठतीति), 'प्रवसति (विदेश में रहता है), 'प्रस्मरतीति' (भूलता, विस्मृति करता है)। प्राप्ति का विपरीत अर्थ है 'वञ्चन' (प्रतारण), 'गृध' (लिप्सा), प्रलम्भन (धोखा देना, छलना)। गृधि का वञ्चि तथा प्रलम्भन अर्थक लक्षण वा ज्ञान होने से 'प्र' पूर्वक 'लभि', 'लम्भ' धातु का अर्थ 'वंचन' ज्ञेय है (जानने योग्य है)।

---

१. पूर्वानुरागो मानश्च प्रवासः करुणश्च स॥
पुरुषः स्त्रीप्रकाण्डेषु चतुः काण्डः प्रकाशते॥
प्रागसंकेतयोर्यूनोरभिलाषः प्रवर्त्तते।
सङ्कल्परमणीयोऽनुरागः स प्राच्य उच्यते॥
अहेरिवगतिः प्रेम्णः स्वभावकुटिलेति सः।
अहेतोर्नेतिनेत्युक्तेर्हेतोर्वा मान उच्यते॥
देशान्तरादिभिर्यूनोर्व्यवधानं चिराय यत्।
नवेऽनुरागे प्रौढ़े वा प्रवासः सोऽभिधीयते॥
लोकान्तरगते यूनि वल्लभे-वल्लभा यदा।
भृशं दुःखायते दीना करुणः स तदोच्यते॥ [वही ५।४९-५०]

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

वंचन चार प्रकार का होता है—अदान वा प्रतिश्रुत्यादान (अङ्गीकार करके न देना), विसंवादन (विरुद्धाचरण), कालहरण (कालक्षेप), और प्रत्यादान (पुनर्ग्रहण)। 'पूर्वानुराग में कटाक्षादि द्वारा अभीष्ट आलिङ्गनादि का प्रतिश्रव (अङ्गीकरण) करके भी ह्री (लज्जा), भय (साध्वस, क्षोभ) आदि के कारण यदि उसका अदान (अकरण) हो तो वह प्रतिश्रुत्यादान है। मान के समय नायिका यदि अभीष्टालिङ्गनादि का निवारण (अनाचरण) करे अथवा व्यलीक स्मरण (अप्रिय, प्रसंगविरोधी कार्यस्मरण) आदि से उन (आलिङ्गनादि) का अयथावत् (अनौचित्ययुक्त) प्रदान (भी) करे तो उसे विसंवादन कहते हैं। इन चार प्रकार के विप्रलम्भों में प्रवास नामक विप्रलम्भ में काल-हरण (काल-क्षेप) स्पष्ट ही प्रतीत होता है। प्रवास में (लम्बी अवधि के उपरान्त) लौटने पर, प्रतिनिवृत्त होने पर कामिनी अपने कान्त (काम्यते इति=मनोरमः शोभनः) का आलिङ्गनादि करती है। करुणाख्य (करुण नामक) विप्रलम्भ में अभीष्टालिङ्गनादि का प्रत्यादान (पुनर्ग्रहण) कौन नहीं मानता ? अपितु सब मानते हैं। क्योंकि (करुण विप्रलम्भ-काल में) दैव अपने ही द्वारा दिये गये अभीष्ट आलिङ्गनादि का हरण कर लेता है (जो उस करुणदशा के निवृत्त हो जाने पर नायकादि को पुनः प्राप्त होते हैं)'[1]

वञ्चनार्थक प्र पूर्वक लम्भ धातु में 'वि' उपसर्ग का समास मान कर भोज ने उक्त पूर्वराग, मान, प्रवास एवं करुण में विप्रलम्भ का क्रमशः, विविध, विरुद्ध, व्याविद्ध एवं विनिषिद्ध नाम से भी प्रयोग, रूपान्तरण, परिणति माना है।[2]

१.　प्रतिश्रवो हि पूर्वानुरागे वक्रेक्षितादिभिः।
अभीष्टालिङ्गनादीनामदानं ह्रीभयादिभिः॥
माने निवारणं तेषां विसंवादनमुच्यते ।
अयथावत् प्रदानं वा व्यलीकस्मरणादिभिः॥
प्रवासे कालहरणं व्यक्तमेषां प्रतीयते ।
प्रोष्यागतेष्विहैतानि कान्ताः कान्तेषु युञ्जते॥
प्रत्यादानं पुनस्तेषां करुणेको न मन्यते।
स्वयं दत्तानि हि विधिस्तानि तत्रापकर्षति॥

२.　प्रलम्भं त्वत्र यदि वा वञ्चनामात्रवाचिनि।
विना समासे चतुराश्चतुरोऽर्थान् प्रयुञ्जते॥
विविधश्च विरुद्धश्च व्याविद्धश्च क्रमेण सः।
विनिषिद्धश्च पूर्वानुरागादिषु विधीयते॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उक्त सिद्धान्त की भोज ने व्याख्या भी की है। तदनुसार लज्जा भय आदि के कारण, पूर्वानुराग में, विप्रलम्भ (वञ्चन) 'विविध' (बहुत) प्रकार का होता है। मान की अवस्था में मानिनी नायिका का हृदय ईर्ष्यायित (ईर्ष्या से व्याप्त) रहता है। अतः विप्रलम्भावस्था, वंचना की स्थिति नायक के विरुद्ध परिणत हो जाती है। प्रवास-काल में काल या अवधि की दीर्घता से उत्कण्ठा अत्यन्त बढ़ जाती है। इस उत्कण्ठा-वृद्धि के कारण विप्रलम्भ व्याविद्ध (विषम, व्याहत), और भी विकृत हो कर विरुद्धतर हो जाता है। करुण-विप्रलम्भावस्था वंचना (विप्रलम्भ) की चरम सीमा है। इस दशा को प्राप्त होते होते विप्रलम्भ अत्यन्त शोक-जनकत्व के कारण अनुराग के पूर्ण-निषेध (विप्रतिषेध), निपट-विरोध में परिणत हो जाता है।[१] इस प्रकार उक्त पूर्वरागादि में वंचन (प्राप्ति विपरीतश्चार्थो वञ्चनमेव) अर्थात् प्राप्ति का विपरीत अर्थ (विप्रलम्भ) अपने मूल, अविकृत प्रत्ययरहित रूप में क्रमशः प्रतिश्रुत्यादान, विसंवादन कालहरण, एवं प्रत्यादान तथा 'वि' उपसर्ग पूर्वक, विशेषद्योतक, विशिष्टार्थ-ज्ञापक अर्थ में विविध, विरुद्ध, व्याविद्ध एवं विप्रतिषिद्ध नामक चार-चार प्रकार के हैं। प्रकृत्यर्थ 'अदान' है तो 'वि' उपसर्गार्थ 'वि उपसर्ग से उक्त अर्थ' 'विविध' है। 'अदान' में अभीष्टालिङ्गनादि की, अङ्गीकरण (दान की स्वाकृति) के पश्चात्, लज्जा साध्वसादि के कारण, 'अदान' में परिणति होती है। नायिका कटाक्षादि संकेतों से आलिङ्गनादि देना स्वीकार करके भी भय लज्जादि से मुकर जाती है, एवं 'वि' उपसर्गार्थ 'विविध' में भी लज्जाभयादि से विविध बाधायें उपस्थित हो जाती हैं। इसी प्रकार प्रकृत्यर्थ 'विसंवादन' में नायिका या तो आलिङ्गनादि का ईर्ष्यादि के कारण निवारण कर देती है अथवा आलिङ्गनादि के अवसर पर ही किसी व्यलीक (अप्रिय कामज छल-युक्त) प्रसंग का स्मरण कर, प्रसंग-विरोधी, अपराधयुक्त बात की चर्चा छेड़ कर अनुचित प्रकार से, बिना मन का आलिङ्गन देती हुई भी उसे विरस कर देती है। उधर उपसर्गार्थ 'विरुद्ध' में मान के कारण आलिङ्गनादि में हठात् विरोध उपस्थित कर देती है। प्रकृत्यर्थ में प्रवास से लौटने पर 'कालहरण' (दीर्घसमय का बीतना, कालक्षेप) के कारण वे आलिङ्गनादि से वियुक्त विसलग्न विरक्त से हो जाते हैं। उधर 'वि' उपसर्गार्थ 'व्याविद्ध' विप्रलम्भ में नायिकादि

---

१. पूर्वानुरागे विविधं वञ्चनं व्रीडितादिभिः।
मानै विरुद्धं तत्प्राहुः पुनरीर्ष्यायितादिभिः॥
व्याविद्धं दीर्घकालत्वात् प्रवासे तत्प्रतीयते।
विनिषिद्धं तु करुणे करुणत्वेन गीयते॥
(स० कं० ५. ६५. ६६)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

का राग दीर्घकालत्व के कारण व्याहत होकर उग्र विरोध में परिणत हो जाता है। विप्रलम्भ वा वंचन की सीमा 'करुण'- विप्रलम्भावस्था में प्रायः टूट जाती है। प्रकृत्यर्थ में तो इस अन्तिम सीमा में दैव द्वारा आलिङ्गनादि का 'प्रत्यादान', पुनर्ग्रहण (लौटा लेना) होता है। इस स्थिति में नायिकादि आलिङ्गन चुम्बन से वञ्चित रहते हैं। क्योंकि दैव ने स्वयं ही जो अवसर (आलिङ्गनादि का) दिया था उसका प्रत्यादान अर्थात् अपहरण कर लिया। आशय यह कि करुण विप्रलम्भ की दशा में प्रिय की मृत्यु और तत्फल चिरवियोग की कल्पना मात्र से नायिका को मोह, कुण्ठा वा मूर्च्छा प्राप्त हो जाती है और अभीष्टालिङ्गनादि का सुयोग दुर्दैव द्वारा छीन लिया जाता है। उपसर्गार्थक करुणाख्य वंचन (विप्रलम्भ) वाली दशा में, प्रत्यादान, घोर शोक-जनक परिस्थिति के कारण विशेष रूप से निषिद्ध हो जाता है।

पूर्वानुरागान्तर्गत प्रकृत्यर्थक प्रतिश्रत्यादानः—'मालती के सामीप्य के कारण मानों अमृतस्नान से जो मेरा हृदय विस्मय से शान्त, निश्चल हो गया था, तथा अन्य भावों का अस्त हो गया था, वही मेरा हृदय अब अङ्गार-स्पर्श करने के समान व्यथित हो रहा है।'[१] यही पद्य दशरूपककार ने बीज नामक अर्थ प्रकृति के 'विधान' नामक अङ्ग के उदाहरण में उद्धृत किया है। विधान में नायकादि के हृदय में सुख तथा दुःख दोनों साथ उत्पन्न होते हैं—(विधानं सुख-दुःखकृत)। इस प्रसङ्ग के ठीक पहले कमल के समान मुख, वाली मालती द्वारा वक्रग्रीवायुक्त ('वलितकन्धरम्' = बल खाती हुई, गर्दन झुकाये हुए) अमृत एवं विष से लिप्त ('दग्धोऽमृतेन च विषेण') लम्बी एवं सुन्दर बरौनियों वाली (पक्ष्मलाक्ष्यां) आँखों से कटाक्षपात् करने का वर्णन आया है जो अभी उपसर्गार्थक 'विविध' नामक पूर्वराग के उदाहरण स्वरूप उद्धृत किया जा रहा है। अतः कटाक्षादि द्वारा अभीष्टालिङ्गनादि के दान की आशा देकर भी उसका अदान किया गया है।

पूर्वराग में उपसर्गार्थक 'विविध' विप्रलम्भः— झुके (घूमे) हुए कोमल डंठल वाले कमल के समान वक्र-मुख एवं ग्रीवा वहन करने (ढोने) वाली, उस सुन्दर, लम्बी बरौनियों से युक्त नेत्रों वाली (मालती) ने मेरे हृदय में अमृत एवं विष में लिप्त कटाक्ष चुभा दिये।'[२] यहाँ कमलवत् 'मुख-

---

१. यद्विस्मयस्तिमितमस्तमितान्यभावमानन्दमन्दममृतप्लवनादिवाभूत ।
तत्सन्निधौ तदधुना हृदयं मदीयमङ्गारचुम्बितमिव व्यथमानमास्ते ॥

२: यान्त्यामुहुर्वलितकन्धरमाननं तदावृत्तवृन्तशतपत्रनिभं वहन्त्या ।
दिग्धोऽमृतेन च विषेण च पक्ष्मलाक्ष्या गाढं निखात इव मे हृदये कटाक्षः॥
(मा० मा० प्रथम अङ्क)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सौन्दर्य, (शोभा = अयत्नज सात्विक अलंकार, "रूप यौवन लालित्य भोगाद्यैरङ्ग-भूषणं शोभा प्रोक्ताः···"), वलितकन्धर (वक्रग्रीवा) एवं अमृत-विषलिप्त-कटाक्ष (हाव नामक अङ्गज सात्विक अलंकार, "भ्रूनेत्रादिविकारैस्तु संभोगेच्छा प्रकाशकः··········अल्पसंलक्ष्य विकारो हाव उच्यते") आदि संभोगाभिलाष-सूचक मनोविकारों के होते हुए भी लज्जा भयादि विप्रलम्भ (वंचन) के विविध कारणों से बाधा उपस्थित हुई है।

मानकृत प्रकृत्यर्थक प्रतिश्रुत्यादान :—'कपोलों पर सजाये गये पत्र (चन्दन कस्तूरी आदि गंधद्रव्यो से चर्चित चित्र) पाणितलनिपीड़न (हथेली आदि से मलना, दबाना) से मिट गये हैं, निःश्वासों के द्वारा अमृत के समान मधुर अधर-रस का आस्वादन किया गया है, कण्ठ से लगे अश्रु-बिन्दु कंठावरोध करके स्तनप्रान्त को पुनः-पुनः कम्पित कर रहे हैं। इस प्रकार से कोप ही तुम्हारा हितू (प्रिय) हो गया है न कि मैं जो अनङ्गीकृत होकर भी तुम्हारा अनुवर्तनकारी (अनुसरण करने वाला) हूँ'[१] यहाँ निःश्वास, अश्रु आदि वैरस्य उत्पन्न करके अभीष्टालिङ्गनादि का निवारण करते हैं। स्वीया-मध्या नायिका के प्रति शठनायक की उलाहना है।

मान में उपसर्गार्थक विरोध :—'हे तरले (चपले) प्रेम के परिपाक (परिणाम) पर विचार किये विना ही, एवं सखियों का अवधीरण (तिरस्कार, अनादर) करके तुमने प्रिय के प्रति इस अनवसर (अकाण्ड) में किस कारण से कोप किया है ? तुमने अपने हाथों अपने ऊपर अङ्गार अवकीर्ण (आक्षिप्त) कर लिया है, बिखेर लिया है जो प्रलयकालीन (कल्पान्तकारी) अग्नि की शिखा के समान प्रदीप्त है। अब तो इस व्यर्थ रोदन से कोई लाभ नहीं।'[२] अपराधी (शठ) नायक से भेद पाकर सखी स्वीयामध्या नायिका को उपालम्भ दे रही है। नायिका कलहान्तरिता अतएव मानिनी है। प्रिय के अनुराग के प्रति विरोध स्पष्ट मानकृत विप्रलम्भ है।

१. कपोले पत्राली करतलनिरोधेनमृदिता
निपीतो निश्वासैरयममृतहृद्यो अधररसः।
मुहुः कण्ठेलग्नस्तरलयति वाष्पः स्तनतटं
प्रियो मन्युर्जातस्तव निरनुरोधेन तु वयम्॥ (अ० श० ८५)

२. अनालोच्यप्रेम्णः परिणतिमनादृत्य (पृच्छ्य)
सुहृदस्त्वयाकाण्डे मानः किमिति तरले सम्प्रतिकृतः।
समाकृष्टा ह्येते प्रलयदहनोद्भासुरशिखाः
स्वहस्तेनाङ्गारास्तदलमधुनारण्यरुदितैः (वही ८४)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रवास में उपसर्गार्थक व्याविद्ध अनुराग (आलिङ्गनादि) रूप काल-हरण:—'चिर जीवन की आकांक्षा न रखने वाली (मुझे) क्षणिक प्रभाव रखने वाले रसायनों के द्वारा (रसायनिक औषधियाँ खिलाकर) खेद मत पहुँचाओ। विरह को अङ्गीकार करो (विरह की अनिवार्य, अपरिहार्य स्थिति को स्वीकार करो) जिससे युगों के समान ये लम्बे दिन उत्पन्न होते हैं'[१] भोज ने प्रवासकृत व्याविद्ध अनुराग का यही उदाहरण दिया है जिसमें काल की दूरी दिखाई गई है। कालिदास के 'मेघदूत' में प्रोषित-पतिका की देशगत दूरी से उत्पन्न दशा का वर्णन है—'हे मेघ! मुझ सहचर के दूरस्थ होने के कारण स्वल्पभाषिणी, (चकवे से वियुक्त) चकई की भाँति एकाकिनी, उस (यक्षिणी प्रिया) को तुम मेरा दूसरा जीवन (प्राण) ही समझना। (मेरे बिरह में बीतने वाले) इन भारी, लम्बे दिनों में, मेरे मिलन की उत्कट अभिलाषा रखने वाली उस बाला (विरहिणी) को तुषाराहता (पाले से मारी गई) वन में उत्पन्न कमलिनी समझना'।[२]

करुणविप्रलम्भ में प्रत्यादान (पुनर्ग्रहण) :—'पति (कामदेव) की मृत्यु के रूप में आये हुए घोर संकट वा आघात के कारण रति को मोह तथा मूर्च्छा प्राप्त हो जाने (निरुद्ध हो जाने) से, दैव ने रति का उपकार ही किया क्योंकि पति के (आपन्न) महानाश का ज्ञान ही उसे नहीं रह गया'।[3] दशरूपककार ने 'कुमारसम्भव' के उक्त पद्य को 'मोह' नामक व्यभिचारी भाव के उदाहरण में उद्धृत किया है। यहाँ भगवान् शंकर के कोप से रति में समस्त सम्भोग सुखों का प्रत्यादान (पुनः लौटा लेना) सुव्यक्त है।

---

१. चिरजीवित्तण किंखिरि मा तम्म रसाअणेहि अथिरेहिं।
विरहं पवज्ज जाअन्ति जेण जुम दीहरा दिअहा॥
[चिरजीवित्वकांक्षिणि मा ताम्यरसायनैरस्थिरैः।
विरहं प्रतिपद्यस्व जायन्ते येन युगदीर्घतरा दिवसाः]

२. तां जानीयां परिमित कथांजीवितं मे द्वितीयं
दूरीभूते मयि सहचरे चक्रवाकीमिवैकाम्।
गाढ़ोत्कण्ठां गुरुषु दिवसेष्वेषु गच्छत्सु बालां
जातां मन्ये शिशिरमथितां पद्मिनीं वान्यरूपाम्॥ [मेघ०

३. तीव्राभिषङ्गप्रभवेन वृत्तिं मोहेन संस्तम्भयतेन्द्रियाणाम्।
अज्ञातभर्तृव्यसना मुहूर्तं कृतोपकारेव रतिर्बभूव॥
(कु० सं० तृतीयसर्गं)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

करुण विप्रलम्भ में विप्रतिषिद्ध अभीष्टालिङ्गनादि:—'उत्तररामचरित' में स्वर्ण-मृग की कपट-विधि से सीताहरण एवं राम की करुण वियोगानुभूति का चित्र में वर्णन है—'तदनन्तर पापी (रावण, मारीच आदि) राक्षसों ने, सुवर्णमृग के कपटानुष्ठान से ऐसा शोकोत्पादक सापराध वृत्त (परिस्थिति, घटना) उपस्थित किया कि उसका प्रतीकार हो जाने पर भी (रावणादि का वध हो जाने पर भी) उसकी दुःखद स्मृति आज भी ताप पहुँचा रही है। इस दण्डकारण्य में चक्षुरादि विकलेन्द्रियों के स्व-स्व व्यापारासमर्थ हो जाने पर राम के मूर्च्छा प्रभृति शोकोद्दीपक व्यापारों से पाषाण भी रोने लगता है एवं वज्र का हृदय भी फट जाता है।" यहाँ संयोग सुख का परम प्रतिषेध है।

विप्रलम्भ शृंगार की परिस्थितियाँ इतनी जटिल होती हैं कि उक्त चार अवस्थाओं (पूर्वराग, मान, प्रवास एवं करुणात्मक) में प्राप्त प्रकृत्यर्थक और उपसर्गार्थक चार-चार प्रकार के वंचन—प्रतिश्रुत्यादान, विसंवादन, कालहरण, प्रत्यादान तथा विविध, विरुद्ध, व्याविद्ध, विप्रतिषिद्ध—अपनी इयत्ता का अतिक्रमण कर दूसरे के क्षेत्रों में भी प्रवेश करते दिखाई देते हैं। भोज ने लिखा है कि व्यवस्थासम्प्लव (सीमा वा विधान का नाश) के कारण उक्त प्रतिश्रुत्यादानादि प्रकृत्यर्थक तथा विविध, विरुद्धादि उपसर्गार्थक वंचन-प्रकार अविशिष्ट होकर अपनी-अपनी विशिष्टताओं का त्याग कर सामान्य रूप से अन्य भेदों, प्रकारों के साथ संलग्न हो जाया करते हैं।[2]

मान में मिलितकालहरण:—सामान्यतः कालहरण (व्याविद्ध या अव्याविद्ध) प्रवास में ही होता है। पूर्वानुराग एवं तदन्तर सम्भोग में दृष्ट, श्रुत अथवा अनुमित अपराधजन्य 'मानस रोष को 'मान' कहते है एवं पूर्वानुराग वा

---

१. अथेदं रक्षोभिः कनकहरिणछद्मविधिना
तथावृत्तं पापैर्व्यथयति यथा क्षालितमपि।
जनस्थाने शून्ये विकलकरणैरार्यचरितै-
रपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्॥

(उ० रा० १.२८)

२. ननु च प्रतिश्रुत्यादाना (दय)श्चत्वारोऽपि प्रकृत्यर्थाः, विविध मित्यादयश्चत्वारोऽपि चोपसर्गार्थाः प्रथमानुरागादिषु चतुर्ष्वपि व्यवस्थासम्प्लवाभ्यामुपलभ्यन्ते। तत्कथम्? उच्यते—प्रतिश्रुत्यादानमित्यादयो यथायथमुपसर्गाविशिष्टाः प्रथमानुरागादिषु व्यावतिष्ठन्त इति।

(शृं० प्र० २२.२३.२४ प्र० २४.६ गद्यभाग)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सम्भोगकाल में दुर्भाग्य के दुष्परिणाम से संभूत स्त्री-पुरुष का दूरदेशवास 'प्रवास' कहा जाता है।[१] कालहरण अपने प्रकृत्यर्थ (सहज, मूल अर्थ) एवं उपसर्ग (विशेषवाची) अर्थ में प्रवास से सम्बद्ध है। प्रवास में देशगत एव कालगत दो प्रकार के विप्रकर्ष (दूरी, फासला) पाये जाते हैं। देश-विप्रकर्ष के कारण आलिङ्गनादि की अवाप्ति (अप्राप्ति) 'कालहरण' है तथा, काल-विप्रकर्ष (दूरी) एवं उत्कंठादि के कारण उक्त अवाप्ति का अत्याय (सीमोल्लंघन) 'व्याविद्ध' है जो काल की दीर्घता के कारण उद्भूत होता है। 'कालहरण' में देश की दूरी, स्थान का प्रसार व्यवधायक होता है, तथा व्याविद्ध में काल अर्थात् समय की दीर्घता आलिङ्गनादि की प्राप्ति में बाधक होती है।

मानोपलब्ध (मान में मिलित) अव्याविद्ध कालहरण का उदाहरण:—'अपराधी प्रिय के दूर रहने पर (उस मानिनी नायिका की आँखें) प्रेमातिशय में उत्कण्ठित होकर उसकी ओर देखती है, जब प्रिय (समीप) आ जाता है तो (अपराध की असहनीयता से) से विवर्तित हो जाती, दूसरी ओर घूम जाती हैं, फिर जाती हैं, प्रिय के संलाप करते समय (क्रोधातिशय से) विस्तारित (फैलाई हुई), आलिगन के अवसर पर (क्रोध से) अरुण, वस्त्र ग्रहण करने पर (रोषातिरेक से) भुग्न-भ्रू (कुटिल भौंहों वाली), चरणपतन-संयोग (चरणों पर झुककर प्रणाम करते समय रोष-शमन) से अश्रु-संकुल हो जाती हैं। इस प्रकार नायिका के नेत्र छल-चातुरी में प्रवीण हो गये हैं'।[२] यहाँ नायक शठ-धृष्ट, नायिका स्वीया मध्या है। यत्किंचित् देश की दूरी कभी-कभी उपस्थित हो जाती है (केवल तभी तक जब तक वह दूर रहता है)। 'दूरादुत्सुक' शब्द से देश-विप्रकर्ष की झलक है। समय की दीर्घता, मिलन में अवधि की विस्तृति स्वयंकृत है तथापि कालक्षेप है।

मानगत व्याविद्धकालहरण:—'रात्रि प्रायः क्षीण (गत) हो चली है यह प्रदीप भी धीरे-धीरे (क्षीणप्रभचन्द्रमा की भाँति) विनत (मन्द ज्योति हो रहा है (मानो निद्रा के वशीभूत होकर झिलमिला रहा है), अथवा, नायिका के पक्ष में, 'तुम निद्रा के वशंवद होकर मानो चक्कर खा रही (झूम रही) हो

---

१. प्रथमानुरागे तदन्तरादिसम्भोगे वा दृष्ट श्रुतानुमितापराधजन्मा मिथो मिथुनमानसेषु रोषो मानः। सति पूर्वानुरागे सम्भोगेऽपि वा दैवदुर्विपाकादिजन्मा स्त्रीपुंसयोर्विदूरदेशवासः प्रवासः।

२. दूरादुत्सुकमागतं विवलितं संभाषिणी स्फारितं
संश्लिष्यत्यरुणं गृहीतवसने संकुञ्चितभ्रूलतम्।
मानिन्याश्चरणानतिव्यतिकरे वाष्पाम्बुपूर्णंक्षणा-
च्चक्षुर्जातमहो प्रपञ्चचतुरं जातागसि प्रेयसि॥ (अ० श० ४४)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

मैं तुम्हारे चरणों पर गिरकर प्रणाम कर चुका तथापि तुम क्रुद्ध हो एवं मान का त्याग नहीं कर रही हो। हे उग्रस्वभावे (कठोर) कुचों के सामीप्य के कारण तुम्हारा हृदय भी कठोर (हो गया) है।'[१] यहाँ नायिका के आनिशान्त मान के कारण काल विप्रकर्ष है अतः व्याविद्ध है।

मानगत अप्रतिषिद्ध प्रत्यादान :—'जिस प्रेम में भ्रूभंगिमा (न कि निर्भर्त्सनादि) ही कोप (कर्म) माना जाता था, जहाँ मौन (वाक्संयम) ही विग्रह, विद्वेष (वा निग्रह = प्रहार) माना जाता था (न कि पार्थक्य), जहाँ, जिस प्रेम में इतरेतर हसित (परस्पर मृदु हसित) ही अनुनय (सान्त्वन) का कर्म माना जाता था न कि सखियों की प्रार्थनादिक, जहाँ 'दृष्टिपात (अवलोकन मात्र) ही प्रसन्नता मानी जाती थी न कि अश्रुपातादि, आज इस प्रेम की कैसी हानि (वैशस = विनाश) हुई है कि पाद प्रणाम कर रहे हो (चरणों पर लोट रहे हो) तथापि मुझ दुष्टा की कोपशान्ति (मन्यु-मोक्ष) नहीं हो रही है।' यहाँ मानकृत विप्रलम्भ श्रृंगार है। नायक धृष्ट और नायिका स्वीया-मध्या धीरा और खण्डिता है (प्रियं सोत्प्रासवक्रोक्त्या मध्या धीरा दहेद्रुषा)। अभीष्टालिङ्गनादि का प्रत्यादान (पुनर्ग्रहण) करुण-विप्रलम्भ-गत प्रत्यादान की भांति दैवकृत नहीं अपितु नायक-नायिका-कृत है अतः प्रतिषिद्ध नहीं है, अपितु कोपशान्त के अनन्तर पुनः सम्भव है।

मानगत विप्रतिषिद्ध प्रत्यादान :—'भाल-फलक-प्रान्त (ललाट-पट्ट) में अलक्तक का लांछन (चिह्न) लगा है, गले में अङ्गद (बाजूबन्द) का अङ्कन है, मुख पर अंजन-मालिन्य (कज्जल की कालिमा) है और नेत्रों पर पान की लाली है। प्रातःकाल प्रिय के (शरीर पर स्थित) इन संभोग-चिह्न-रूप आभूषणों को देख कर मृगनयनी नायिका के श्वासोच्छ्वास हाथ में स्थित लीला-कमल- गर्भ में ही समा कर समाप्त हो गये।'[२] धृष्टनायक (—कृतागा अपि

---

१. कृश (गत) प्राया रात्रिः कृशतनु शशिरिव (शनयँन)
विनमत्प्रदीपोऽयं निद्रावशमुपगतो घूर्णत इव।
प्रणामान्तो मानस्त्यजसि न तथापि क्रुधमहो
कुचप्रत्यासत्त्या हृदयमपि ते चण्डिकठिनम्॥

२. लाक्षालक्ष्मललाटपट्टमभितः केयूरमुद्रागले
वक्त्रे कज्जलकालिमा नयनयोस्ताम्बूलरागोऽपरः।
दृष्ट्वा कोपविधायि मण्डनमिदं प्रातश्चिरं प्रेयसो
लीलातामरसोदरे मृगदृशः श्वासाः समाप्तिं गताः॥ श० प्र०

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

निःशंकस्तर्जितोऽपि न लज्जितः । दृष्टदोषोऽपि मिथ्यावाक्कथितोधृष्टनायकः ।।)

यह अन्य स्त्री-सम्भोग करके लौटा है। उसके, पैरों पर गिरने से, माथे पर नायिका के चरणों पर लगे अलक्तक के चिह्न हैं. नायिका के नेत्रचुम्बन से मुख में काजल लगा है। नायिका ने नायक के नेत्र चूमे हैं अतः वहाँ नायिका के मुख के पान के चिह्न पड़े हैं। लीला-कमल को सूंघने के बहाने नायिका ने उसी में अपने रोषजन्य श्वास-निश्वासों को छोड़ दिया (इस प्रकार रोष का गोपन कर धैर्य का परिचय दिया)। नायिका स्वीया, धीरा और प्रगल्भा (—प्रगल्भा यदि धीरा स्याच्छन्नकोपाकृतिस्तदा। उदास्ते सुरते तत्र दशयन्त्यादरान्बहिः ।।) है। कोप को छिपा लेती है, बाहरी आदर दिखाती किन्तु सुरत से उदासीन (विरक्त) रहती है। यहाँ संभोगाभिलाष का पूर्ण अभाव है, आलिङ्गनादि का पूर्ण निषेध है।

प्रवासगत विरुद्ध विसंवादनः—अपने प्रकृत अर्थ में 'विसंवाद' मानावस्था में घटित, मान से सम्बद्ध 'विप्रलम्भ' अर्थात् 'वंचन' है। 'लभ' धातु प्राप्ति अर्थ में प्रयुक्त है (लभ, प्राप्तौ—इति कविकल्पद्रुमः)। भोज ने शृंगार-प्रकाश' (चतुर्विंश प्रकाश) में विप्रलम्भ के लभ धातु की व्युत्पत्ति करते हुए लिखा है—'तत्रायं लभिः प्राप्तावपि पठ्यमानः प्रोपसर्गयोगाद्वञ्चने वर्तते। प्रस्यप्रकृतिविपरीतार्थ वाचकत्वात्। तथा प्रतिष्ठते प्रवसति प्रस्मरतीति। प्राप्तिविपरीतश्चार्थो वञ्चनमेव', अर्थात् 'विलम्भ' शब्द में 'लभि' धातु प्राप्ति के अर्थ में पढ़ी जाती हुई 'प्र' उपसर्ग के योग से 'वञ्चन' अर्थक है। 'प्र' की प्रकृति विपरीतार्थक होने के कारण जैसे प्रतिष्ठते, प्रवसति, प्रस्मरति में 'प्राप्ति' का विपरीत अर्थ वंचन है।' इस प्रकार विसंवाद का अर्थ 'वंचन' अर्थात् 'प्राप्ति' का विपरीत अर्थ, अर्थात् अप्राप्ति, अवाप्ति हुआ। मनोऽभिलषित आलिंगनादि की अवाप्ति 'विसंवाद' है जो वंचनार्थक प्रकृत (मूल) शब्द है। विशिष्टार्थ वाचक 'वि' उपसर्ग लगा कर 'विसंवाद' का विशिष्टार्थ बनाया गया विरुद्ध'। 'विरुद्ध' शब्द विशिष्टार्थक है। इसका विशिष्ट अर्थ है 'व्यलीकादिजन्मभिरीर्ष्यायितादिभिरुपजायमानो विरुद्ध एव'। अर्थात् अभीष्टालिङ्गनादि की अप्राप्ति जब व्यलीक (विशेषतः, अप्रिय दुःखद, कष्टकर, विपरीत) हो जाती है तो उसको 'विरुद्ध' कहते हैं—अर्थात् विरुद्ध अप्राप्ति। ईर्ष्यायित, ईर्ष्या से प्रभावित होने के कारण उक्त अप्राप्ति और भी (विशिष्टार्थ में) कष्टकर हो जाती है। यही विशिष्ट अर्थ उपसर्गार्थ है। मान के क्षेत्र का 'विसंवादन' अपने विशिष्टार्थक 'विरुद्ध' अर्थ में प्रवासकाल में भी पाया जाता है। उदाहरण देखिये—'प्रियतम दूर देश में है, (विरही जनों को मारने वाला) वर्षाकाल आ गया। कुसुमित बेत के वृक्ष दिखाई पड़ने लगे। किन्तु मैं मरी नहीं, यह

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

क्या बात' है ![1] यहाँ प्रियतम की दूरदेशस्थता, देशविप्रकर्ष (देश की दूरी) अर्थात् प्रकृत्यर्थक कालहरण का सूचक है, एवं, वर्षाकाल (जलदागम) का आगमन, वंजुल (बेंत) द्रुमों की प्रफुल्लतादि, कालविप्रकर्ष (समय की दीर्घता) अर्थात् विशिष्टार्थक (उपसर्गार्थक) 'व्याविद्ध' अभीष्टालिंगनादि के व्यंजक हैं। 'प्रवासकाल' में देशविप्रकर्ष के कारण अभीष्टालिंगनादि की अवाप्ति प्रकृत्यर्थक 'कालहरण' एवं कालविप्रकर्ष के कारण, उत्कण्ठा, स्मृति, उद्वेग, तन्मयतादि कामदशाओं के प्रवृद्ध हो जाने से संभोगाभिलाष की अप्राप्ति उपसर्गार्थक 'व्याविद्ध' के अन्तर्गत आती है। यही उदाहरण दण्डी के 'काव्यादर्श' में आक्षेपालंकार के भेद 'कार्याक्षेप' का दिया गया है।

प्रवासगत अव्याविद्ध कालहरण—व्याविद्ध कालहरण अर्थात् कालगत दूरी एवं तीव्र उत्कण्ठा के कारण उत्पन्न अभीष्टालिङ्गनादि की अत्यन्त अप्राप्ति का उदाहरण हम पीछे देख चुके हैं। अब एक उदाहरण अव्याविद्ध कालहरण का (अर्थात् ऐसा कालहरण जो वर्तमान काल-विप्रकर्षगत न हो कर भावी प्रवासकृत विप्रलम्भ से सम्बद्ध है) देखिये—'हे प्रिय ! तुम एक प्रहर व्यतीत होने पर घर आओगे या मध्याह्न में, या उसके भी उपरान्त अपराह्न में, अथवा पूरा दिन बीत जाने पर आओगे ?—इस प्रकार उस बाला ने साश्रु, सस्वरभङ्ग, गद्गद वाक्यों से, दीर्घकालगम्य (दिनशतप्राप्य, बहुत लम्बी अवधि के उपरान्त पहुँचने के योग्य) देश को जाने को इच्छुक प्रिय के प्रस्थान को रोक दिया।'[2]

करुण विप्रलम्भ में विरुद्ध विसंवादन—'प्यारी सीता के विरह की उद्विग्नता मेरे हृदय को आक्रान्त कर रही है किन्तु तब भी यह दो खण्डों में विदीर्ण नहीं होता। मोह, शरीर को विकल बना रहा है किन्तु चेतना अब भी बनी हुई है। हृदय का ताप शरीर को जला रहा है किन्तु उसे भस्म नहीं कर पा रहा है। दुर्दैव मर्मान्तिक प्रहार कर रहा है किन्तु जीवन (प्राण) का नाश

---

१. दूरे प्रियतमः सोऽयमागतो जलदागमः।
दृष्टाश्च फुल्ला निचुला न मृता चास्मि किन्विदम् ॥

२. प्रहरविरतौ मध्ये वाह्नस्ततोऽपि परेऽथवा
किमुत सकले यातेऽप्यह्नि प्रिय त्वमिहैष्यसि।
इति दिनशतप्राप्यं देशं प्रियस्य यियासतो
हरति गमनं बाला वाक्यैः सबाष्पगलज्जलैः ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

नहीं कर रहा है'।[1] साहित्यदर्पणकार ने यह पद्य भ्रमवश मालती-माधव का बता कर गर्भसन्धि के अङ्गभूत खेद के उदाहरण में उद्‌धृत किया है किन्तु है यह 'उत्तररामचरित' में। यह व्यलीक (कष्टप्रद) परिस्थितियों से उत्पन्न अभीष्टालिङ्गनादि की अप्राप्ति का वर्णन है। सीता को वनवास देकर राम उनके सतत विरह की आशंका से खिन्न हैं।

करुण विप्रलम्भ में व्याविद्धकालयापन—'सीता से वियुक्त जीवन का यह बारहवाँ वर्ष चल रहा है। उनका नाम भी नष्ट सा हो गया है। तो भी क्या, राम नहीं जीता है? (अर्थात् जी रहा है[2])। यह व्यलीक (दुःखप्रद) वियोग से संभूतकाल विप्रकर्ष का उदाहरण है, जो सामान्यतः प्रवास विप्रलम्भ में घटित होता है करुण में नहीं।

प्रथमानुराग में विविध विसंवादन—'विसंवादन' (अभीष्टालिङ्गनादि की अप्राप्ति) मान की दशा में, एवं 'विविध' (परतन्त्रता, लज्जा, भयादि के अनुराग का अनेकशः अनिर्वाह) प्रथमानुराग में घटित होती है। किन्तु यहाँ विसंवादन का संयोग प्रथमानुराग में दिखाया है जैसे—'बारंबार उँगलियों से छिपाये हुए अधरोष्ठ, एवं नकारात्मक व्याकुलता से सुन्दर (व्याकुल होकर) 'न' का उच्चारण करने के कारण सुन्दर प्रतीत होते हुए कन्धे (अंस) की ओर विवर्तित (घूमा हुआ) उस सुन्दर वरौनियों से युक्त नेत्रों वाली सुन्दरी का मुख मैंने किसी प्रकार ऊपर उठाया किन्तु चुम्बन तो न कर पाया।'[3] साहित्यदर्पणकार ने यह उदाहरण असंलक्ष्यक्रमव्यंग्यध्वनि के प्रसंग में दिया है। यहाँ दुष्यन्त का अनुताप व्यंजित है। शकुन्तला द्वारा उँगलियों से अधरोष्ठ का छिपाना, व्याकुल हो कर 'न' का उच्चारण करना आदि विविध व्यापार अभीष्टालिङ्गनादि के दान के अनिर्वाह एवं निवारण के द्योतक हैं। भय, लज्जा और अनिच्छा इसके कारण हैं।

---

१. दलति हृदयं गाढ़ोद्वेगाद् द्विधा तु न भिद्यते
वहति विकलः कायो मोहं न मुञ्चति चेतनाम्।
ज्वलयति तनूमन्तर्दाहः करोति न भस्मसात्-
प्रहरति विधिर्मर्मच्छेदी न कृन्तति जीवितम्॥
(उ० रा० ३.३१)

२. देव्या शून्यस्य जगतो द्वादशः परिवत्सरः।
प्रणष्टमिव नामापि न च रामो न जीवति॥ (उ० रा० ३.३३)

३. मुहुरंगुलिसंवृताधरोष्ठं प्रतिषेधाक्षरविक्लवाभिरामम्।
मुखमंसविवर्ति पक्ष्मलाक्ष्याः कथमप्युन्नमितं न चुम्बितं तु॥
(अभिज्ञानशाकुन्तलम् ३.२२)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

मान में व्याविद्ध प्रतिश्रुत्यादान—प्रतिश्रुत्यादान (अङ्गीकार करके भी आलिङ्गनादि के दान से मुकर जाना) पूर्वानुराग में, एवं व्याविद्ध कालहरण (कालविप्रकर्ष के कारण उत्कंठा के बढ़ जाने से आलिङ्गनादि की व्यवधि अर्थात् बाधा की तीव्रानुभूति) प्रवास से सम्बद्ध हैं, किन्तु यहाँ ये मान में अनुषक्त (संलग्न) दिखाये गये हैं, जैसे—'चतुरता से किसी रमणी ने अपने प्रिय के प्रति व्याज से कोप प्रकट किया, सफलीभूत किया (कृतार्थीकृत्)। (प्रिय के अपराध करके लौटने पर) प्रिया अभ्युत्थान के लिये उठकर (प्रत्युद्गमात्) एक आसन पर बैठने, स्थित रहने के अवसर को बचा लिया, एकत्र संस्थिति का भी परित्याग कर दिया। पान ले आने के छल से, उसने प्रिय द्वारा सहर्ष आलिङ्गन में भी विघ्न पहुँचा दिया। प्रिय के समीप उसकी सेवा में दासादिक को भेजकर प्रिया ने आलाप संलाप भी नहीं किया।' प्रौढ़ा, विदग्धा, खण्डिता नायिका ने मान के कारण आलिंगन, चुम्बनादि का निवारण किया है। प्रिय की उत्कण्ठा प्रवृद्ध हो जाने से कालक्षेप दुःखद हो गया है।

प्रवास में विविध-प्रत्यादान (आलिंगनादि के अवसर, सुयोग का दैव द्वारा) पुनर्ग्रहण—'हे जानकि ! तुम्हारे नेत्रों के समान कान्तिवाला नीलकमल पानी में डूब गया; तुम्हारे मुख की शोभा के समान शोभा वाला चन्द्रमा मेघों द्वारा छिपा लिया गया; तुम्हारी गति के सदृश गति वाले राजहंस मानसरोवर में चले गये।'[1] नेत्रादि के सदृश पदार्थों के लोपादि प्रत्यादान के विविध साधनभूत हैं।

प्रवास में व्याविद्ध विसंवादन—विसंवादन (आलिंगनादि की अप्राप्ति) मान से सम्बद्ध है; और व्याविद्ध कालहरण, (कालविप्रकर्षगत अनुरागहानि) प्रवास से। यहाँ काल की दीर्घता के कारण ही तीव्रोत्कण्ठायुक्त आलिङ्गनादि की अप्राप्ति घटित हुई है। जैसे—'दृष्टिसंचारावधि (जहाँ तक दृष्टि जा सकती है) आगन्तुक प्रिय का पथ निहार कर, खिन्न होकर; दिवसावसान में अन्धकार फैल जाने पर, मार्ग का गमनागमन बन्द हो जाने पर, प्रोषितपतिका नायिका गृह की ओर एक पग डालकर, 'कहीं अब आ न गये हों' ऐसा सोचकर शीघ्रतापूर्वक ग्रीवा घुमाकर पुनः देखती है।'[2] नायिका स्वीया-मध्या-प्रोषितभर्तृका है।

---

१. यत्वन्नेत्रसमानकान्ति सलिले मग्नं तदिन्दीवरं
मेघैरन्तरितः प्रिये तव मुखच्छायानुकारी शशी।
येऽपि त्वद्गमनानुसारिगतयस्ते राजहंसा गता-
स्त्वत्सादृश्यविनोदमात्रमपि मे दैवेन न क्षम्यते॥

२. आदृष्टि प्रसरात्प्रियस्य पदवीमुद्वीक्ष्य निर्विण्णया
विश्रान्तेषु पथिष्वहःपरिणतौ ध्वान्ते समुत्सर्पति।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कालगत विलम्ब समौत्सुक्यकारी होकर संयोगाभिलाष की अप्राप्ति की तीव्रानुभूति कराता है।

इसी प्रकार प्रथमानुराग, मान, प्रवास और करुणविप्रलम्भ के प्रकृत्यर्थ और उपसर्गार्थों के व्यवस्थातिक्रमण के अन्य उदाहरण भी देखे जा सकते हैं। अब भोजकृत सम्भोग-शृंगार-प्रकाशन पर भी विचार कर लेना आवश्यक है।

सम्भोग-शृंगार एवं उसके भेदोपभेद—शृंगार-प्रकाश के तेइसवें प्रकाश में दी गई सम्भोग-शृंगार की परिभाषा निम्नलिखित है—'अभिलषणीयालिङ्गनादीनामवाप्तौ सम्भोगः' अर्थात् अभीष्ट आलिंगनचुम्बनादि की प्राप्ति सम्भोग है। सम्भोग चार प्रकार का होता है—प्रथमानुरागानन्तर, मानानन्तर, प्रवासानन्तर और करुणानन्तर। 'नायक-नायिका द्वारा प्रथम संगमादि में अभिलषणीयालिङ्गनादि का लाभ प्रथमानुरागान्तर सम्भोग है। प्रवासानन्तर सम्भोग में अभिवृद्ध एवं प्रवृद्ध उत्कण्ठा से युक्त नायक-नायिका का पुनःसमागम में अभिलाषादि की पूर्ति होती है। करुणानन्तर सम्भोग में अदृश्य (भाग्य) की अनुकूलता से नायकादि के पुनरुद्धार से उत्पन्न मनःप्रमोद का अतिशय दृष्टिगत होता है।[1] मानानन्तर सम्भोग की परिभाषा नहीं दी गई है।

'सरस्वती कण्ठाभरण' में दी गई परिभाषा से समन्वित उक्त परिभाषा सम्भोग शृंगार का चित्र स्पष्ट कर देती है। 'सरस्वती कण्ठाभरण' की परिभाषा इस प्रकार है—'भुज'धातु पालन, कुटिलता, अभ्यवहार (भोजन ग्रहण) और अनुभूति के अर्थ में प्रयुक्त होती है। पालन (के अर्थ में) जैसे—राजा पृथ्वी का भोग करता है। कौटिल्य के अर्थ में जैसे—भुग्न=कुटिल। अभ्यवहारार्थ में जैसे—अन्न खाता है। अनुभूति के अर्थ में, जैसे—सुख का भोग करता है। 'सं' उपसर्ग से युक्त होकर उक्त भुज धातु से संभोग शब्द बनता है।[2] 'पूर्वरागानन्तर सम्भोग' में

दत्त्वैकं सशुचागृहं प्रतिपदं पंथास्त्रियास्मिन्क्षणे
मा भूदागत इत्यमन्दवलितग्रीवं पुनर्वीक्षितम् ॥
(अ० श० ९१)

१. सति चैतस्मिन् तयोरेव प्रथमसङ्गमादौ अभिलषणीयालिङ्गनादिलाभः प्रथमानुरागानन्तरः सम्भोगः। तदभिवृद्धौ प्रवृद्धोत्कण्ठयोरेव भूयस्समागमे अभिलाषादिनिष्पत्तिः प्रवासानन्तरसम्भोगः। तयोरेवादृष्टविशेषादिसम्पदा तदुन्मज्जनजन्मा मनःप्रमोदातिशयः विशेषवान् करुणानन्तरः सम्भोगः।

२. भुजिः पालनकौटिल्याभ्यवहारानुभूतिषु।
भुनक्ति भुग्नो भुङ्क्तेऽन्नं भुङ्क्ते सुखमितीष्यते ॥
(स० कं० ५-७७)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

'सम्भोग' शब्द 'पालन' अर्थ का प्रकाशक होता है। क्योंकि इस सम्भोग में उत्पन्न रति सानुकूल होकर पालन करती है। वही सम्भोग मानानन्तर प्राप्त होने पर कौटिल्यार्थ का अवलम्बन करता है। क्योंकि प्रेम तो स्वभाव से ही कुटिल (वक्रगामी) होता है, तो, यदि मान का सङ्ग हो जाय तो क्या कहना है। प्रवासानन्तर-सम्भोग में अभ्यवहारार्थता (भोजनार्थता) प्रकट होती है। क्योंकि प्रवासानन्तर दशा में नायक-नायिका उपोषित (अनशन किये हुए) रहते हैं अतः यहाँ सम्भोग का अन्न के समान भोग किया जाता है। करुणानन्तर-सम्भोग अनुभावार्थक होता है क्योंकि करुण-विप्रलम्भ में भावी-संगम में विश्वास रखने वाले नायक-नायिका सुख का ही अनुभव करते हैं, दुःख का नहीं।[1]

यदि 'भोग' शब्द सम्प्रयोग (संव्यवहार, मेल, संयोग, सम्पर्क, सम्भोग) अर्थ का वाचक हो तो उसका समास (संक्षेप) पूर्वराग, मानप्रवास एवं करुणानन्तर सम्भोगों में समान रूप से होता है, अर्थात् वे चारों क्रमशः पूर्वरागानन्तर सम्भोग मानानन्तर-सम्भोग, प्रवासानन्तर सम्भोग एवं करुणानन्तर सम्भोग कहे जाते हैं। 'सम्भोग' शब्द उन चारों में समान रूप से समस्त (समासीकृत) रहता है किन्तु उन चारों का अर्थ भिन्न-भिन्न होता है। पूर्वरागानन्तर-सम्भोग में 'सम्भोग' संक्षिप्त (संक्षेप में कहा गया) कहा जाता है; मानानन्तर सम्भोग में संकीर्ण (अपुष्ट), प्रवासानन्तर सम्भोग में सम्पूर्ण (सम्यगुक्त) एवं करुणानन्तर सम्भोग में 'सम्भोग' सम्यग्-ऋद्धिमान् (सविस्तर, सम्पूर्णतः वृद्धि, बढ़ती से युक्त) अर्थ में प्रयुक्त होता है। क्योंकि पूर्वरागानन्तर नव-सङ्गम में युवक-युवती का रत्यर्थ (रति-सम्बन्धी) व्यवहार संक्षेप में किया जाता है, अतः वह सम्भोग संक्षिप्त होता है।[2]

१. स पालनार्थः पूर्वानुरागानन्तर उच्यते ।
उत्पन्ना हि रतिस्तस्मिन्नानुकूल्येन पाल्यते ॥ (७९ स० कं०)
स मानानन्तरं प्राप्तः कौटिल्यार्थं विगाहते ।
स्वतोऽपि कुटिलं प्रेम किमु मानान्वये सति ॥ ८० ॥
प्रवासानन्तरे, तस्याभ्यवहारार्थतेष्यते ।
तत्र ह्युपोषितैरन्नमिव निर्विश्यते रतिः ॥ ८१ ॥
करुणानन्तरगतोऽनुभावार्थः स कथ्यते ।
विश्रम्भवद्भिरस्मिन् हि सुखमेवानुभूयते ॥ ८२ ॥

२. यदि वा भोग इत्यस्य संप्रयोगार्थवाचिनः ।
समा समासे चतुरश्चतुरोऽर्थान् प्रचक्षते ॥ ८३ ॥
स संक्षिप्तोऽथ संकीर्णः संपूर्णः सम्यगृद्धिमान् ।
अनन्तरोऽपदिष्टेषु सम्भोगेषूपपद्यते ॥ ८४ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

मान के अनन्तर होने वाले सम्भोग में युवा-युवतियों में एक दूसरे के प्रति किये गये कार्यों, व्यवहारों के कारण उनमें रोष का बोध बना रहता है, अतः रति भाव का संकर (अपरिपोष) भी विद्यमान रहता है, अतः सम्भोग संकीर्ण होता है। प्रवासानन्तर सम्भोग में उक्त उत्कंठित संभोगेच्छुकों का मनोरथ पूर्ण हो जाता है अतएव उपभोग की प्रवृत्ति (अनुष्ठान, क्रिया), सम्भोग का सम्पादन भूयिष्ठ (प्रचुर होता है)। प्रवासानन्तर, प्रिय के, प्रत्यागमन (प्रतिनिवृत्ति) के कारण रति सम्पूर्णतः पुष्ट देखी जाती है। मृतप्राय प्रिय के पुनरुज्जीवन से रति का पोषण निरसन्दिग्ध होता है। अतः सम्भोग सम्यग् (समग्र) ऋद्धिमान् (सम्पन्न) होता है।[1]

संभोग शृंगार के भेद—'शृंगार-प्रकाश' के अनुसार सम्भोग शृङ्गार के अनेक प्रकार होते हैं। इनमें से बारह प्रकारों का उल्लेख भोज ने किया है जो ये हैं—स्वाङ्गनाविषय, पराङ्गनाविषय, सामान्याविषय, उत्तमाविषय, मध्यमाविषय, कनिष्ठाविषय, मुग्धाविषय, मध्याविषय, प्रगल्भाविषय, सर्वविषय, सर्वकालविषय, सर्वर्तुचर्याविषय। कुछ उदाहरण देखिये—

स्वांगनाविषयक संभोग—सुरत के समय हर्ष से पुलकित कपोलों वाली निरन्तर (सआ=सदा) आज्ञा देने वाली नायिका प्रभात (गोस) होने पर अवनतमुखी हो गयी है, यह विश्वास नहीं कर पा रहा हूँ।[2]

परांगनाविषयक संभोग—'जिस (रमण-काल) में मुख (की फूँक) से दीपक बुझा दिया जाय श्वास अवरुद्ध हो जाय, आलाप-संलाप सशंकित भाव

नवे हि सङ्गमे प्रायो युवानः साध्वसादिभिः।
संक्षिप्तानेव रत्यर्थमुपचारान् प्रयुञ्जते ॥ ८५ स० कं०

१. मानस्यानन्तरे तेषां व्यलीकस्मरणादिभिः।
रोषशेषानुसन्धानात् सङ्करः केन वार्यते ॥ ८६ ॥स० कं० ५
सम्पूर्णः पूर्णकामानां कामिनां प्रोष्यसङ्गमे।
उत्कण्ठितानां भूयिष्ठमुपभोगः प्रवर्त्तते ॥ ८७ ॥
प्रत्यागतेऽपि यत्रैषा रतिपुष्टिः प्रिये जने।
सा किमावर्ण्यते यूनां तत्रैव मृतजीविते ॥ ८८ ॥

२. आणासआइ देंतीं तह सुरए हरिसविअसिअ कवोला।
गोसे वि ओणअमुहीअससेत्ति पिआंण सद्धिहिमो ॥
(गा० स० १.२३)

[आज्ञाशतानि ददती तथा सुरते हर्षविकसितकपोला।
प्रभातेऽप्यवनतमुखीमसौ इति प्रियां न श्रद्दधमः ॥]

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

से चले, सैकड़ों शपथ दिलाकर अधर-दंशनवर्जित किया जाय, वह चौर्यरमण सुख ही उत्पन्न करता है।'[१]

सामान्याविषयक सम्भोग—'गन्धर्वों के साथ वन में प्रवेश करने पर जिनकी प्रभा से पर्वत और लतादिक प्रकाशित हो गये, उन कमल के समान विस्तृत नेत्रों वाली सुन्दरियों ने बिजली (क्षणद्युति) के सदृश रूप धारण किया।'[२]

उत्तमाविषयक संभोग—'सुरत (संभोग) के समय लज्जा से सताई गई उत्तम कुलाङ्गनाओं के हर्ष-युक्त काकुवचन (ध्वनिविकार) कण्ठ में ही भ्रमित होते रहते हैं (स्पष्ट शब्द नहीं निकल पाते), केवल अधर स्पन्दित होते रहते हैं।'[३]

मध्यमाविषयक सम्भोग—'सुरत की समाप्ति पर, (सुरत से) विरत, घर्माम्बु (पसीना) से विलन्न (गीली) कमलमुखी, आधी आँख से कटाक्ष करने वा देखने वाली भाग्यशालिनी सुन्दरियों को प्रियजन देखते हैं।'[४]

कनिष्ठाविषयक सम्भोग—यथेष्ट सुरत करने एवं स्रस्त (खसित)

---

१. मुहविज्झविअपईवं ऊससिअणिरुद्ध (णिरुद्धसासं) ससंकि ओल्लावं।
सवहस अरक्खिओट्ठं चोरिअ रमिअं सुहावेइ ॥ (गा० स० ४.३३)
[मुखनिर्वापितप्रदीपं उच्छ्वसितनिरुद्धसशंकितोल्लापम्।
शपथशतरक्षितोष्ठं चौर्यरमितं सुखयति ॥]

२. यथायथ ताः सहिता नभश्चरैः
प्रभाभिरुद्भासितशैलवीरुधः।
वनं विशन्त्यो वनजायतेक्षणाः
क्षणद्युतीनां दधुरेकरूपताम् ॥

३. हरिसुल्लावा कुलपालिआणलज्जाकडच्छिए सुरए।
कंठब्भंतरभमिआ अहरेच्चिअ हुरुहुराअंति ॥
[हर्षोल्लापाः कुलपालिकानां लज्जाकदर्थिते सुप्ते।
कण्ठाभ्यन्तरभ्रमिता अधर एव हुरुहुरायन्ते ॥]

४. सुरआवसाणविलिओण आओसेउल्लवअण कमलाओ।
अद्धच्छिपेच्छिरीओ पिआओ धण्णा पुलोअंत्ति ॥
[सुरतावसानविलीनाः स्वेदार्द्रवदनकमलाः।
अर्धाक्षिप्रेक्षणशीलाः प्रियाः धन्याः पश्यन्ति ॥]

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

नीवी-चोलकादि बन्धनों को पुनर्व्यवस्थित करने के उपरान्त भी, शोभन हँसी से प्रिया ने प्रिय को कामातुर बना दिया।'[1]

मुग्धाविषयक सम्भोग—'प्रौढ़ महिलायें जितनी ही सुशिक्षित होती हैं उतना ही रति में सुख देती हैं। नववधूटियाँ जितनी ही अशिक्षित होती हैं उतना ही रति का दान करती हैं।'[2]

इसी प्रकार मध्या, प्रगल्भा नायिकाओं के सम्बन्ध में भी उदाहरण दिये गये हैं।

ऋतु-चर्यासम्बन्धी सम्भोग के अधोलिखित उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

ग्रीष्मविषयक सम्भोग—'प्रिय के ग्रीष्म एवं कामजन्य दाह दोनों को वधू ने स्नानजल से भींगे एवं चन्दनलेप के कारण शीतल आलिंगन से, झट दूर कर दिया।'[3]

शरच्चर्याविषयक सम्भोग—'पुण्यवान् युवकगण चाँदी के समान निर्मल एवं गौर, खिले हुए नेत्रों वाली काम-कला-कुशल युवतियों के मुख, चाँदी के समान उज्ज्वल रात्रि में चूमते हैं।'[4]

शिशिरचर्याविषयक सम्भोग—'जिसके वक्ष पर (शरीर में) ऊष्मा

---

१. पज्जत्तंमि विसुरए विअलिअ वंधं अ संजमंतीए।
विब्भमहसिएहिं कओ पुणो विमअणाउरो दइओ॥
[पर्याप्तेऽपि सुरते विगलितबन्धं च संयमन्त्याः।
विभ्रमहसितैः कृता पुनरपि मदनातुरो दयितः॥]

२. पोढमहिलाण जं जं सुसिक्खिअं तं रए सुहावेइ।
जं जं असिक्खिअं णववहूण तं तं रइं देइं॥
[प्रौढ़महिलानां यद्यत् सुशिक्षितं तद्रते सुखयति।
यद्यदशिक्षितं नववधूनां तत्तद्रतिं ददाति॥]

३. दइअस्स गिम्मवम्महसंदावं दो त्ति झत्ति अवणेइ।
मज्जणजलद्धचंदण सिसिरा आलिंगणेण बहू॥
[दयितस्य ग्रीष्ममन्मथसंतापं द्रागपि झटित्यपनयति।
मज्जनजलार्द्रचंदनशिशिरा आलिङ्गनेन वधूः॥]

४. कलहोओज्जलगोरं कलहोअसिआसु सरअराईसु।
चुंबंति विअसिअच्छं विअद्धजुवईमुहं धण्णा॥
[कलधौतोज्ज्वलगोरकलधौतसितासु शरद्रात्रिषु।
चुम्बन्ति विकसिताक्षं विदग्धयुवतीमुखं धन्याः॥]

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उत्पन्न करने वाले स्तनों से युक्त स्त्री विद्यमान है उस (युवक) को प्रावरण (ओढ़ना), अग्नि अथवा मध्यभागस्थ कक्ष की क्या आवश्यकता है' ।[१]

विप्रलम्भ शृंगार के नायिका-विषयक भेदोपभेद—संभोग के ही अनुरूप विप्रलम्भ के भी विभाग किये गये हैं । विप्रलम्भ भी स्वाङ्गना (विषय), पराङ्गना, सामान्या, उत्तमा, मध्यमा, मुग्धा, मध्या, प्रगल्भाविषयक सर्वविषय, सर्वकालविषय, सर्वर्तुचर्याविषय आदि उक्त बारह या अधिक प्रकार का होता है ।

मुग्धाविषयक विप्रलम्भ—'प्रिय कब गये ? अभी बेटी ! आज से कितने दिन होते हैं ? (अथवा कार्य में कितने दिन होते हैं,) एक—इतना मात्र कह कर बाला मोह को प्राप्त हो गई ।'[२] यहाँ नायक कार्यवश उसी दिन बाहर गया है किन्तु नायिका इतनी मुग्ध है कि एक दिन का भी वियोग उसे सह्य नहीं है ।

मध्यमाविषयक विप्रलम्भ—हे नृशंस ! तुम्हारे बहुत से दोषों के कारण वह बेचारी नायिका दिन प्रतिदिन उसी प्रकार क्षीणकाय हो गई है जैसे प्रदोष (अंधेरी रात्रि) में चन्द्रमा (क्षीण हो जाता है) ।[३]

प्रगल्भाविषयक विप्रलम्भ—'नेत्रों को मूँद कर, शय्या पर प्रिय को चिन्तामग्न कर विरह से शिथिल हुई कंकणयुक्त बाहों से अपना ही आलिंगन कर रही है ।'[४]

---

१. किं तस्स पावरेणं किमग्गिणा किं वगब्भघरएण ।
जस्स उरम्मि णिसम्मइ उम्हाअंतत्थणी जाआ ॥
[किं तस्य प्रावारेण किमग्निना किं वा गर्भगृहेण ।
यस्योरसि निषीद्यते ऊष्मायमाणस्तनी जाया ॥]

२. कइआ गओ पिओ अज्ज पुत्ति अज्जेण कइ दिणा होंति ।
एक्को एद्दहमेत्त भणिउ मोहं गआ बाला ॥
[कदा गतः प्रियः, अद्य पुत्रि आ(का)र्येण कति दिनानि भवन्ति ।
एकः, एतावन्मात्रं भणित्वा मोहं गता बाला ॥]

३. तणु आइआ वराई दिअहे दिअहे मिअंकलेहव्व ।
बहुलपओसेण वतुए णिसंस अंधारिअमुहेण ॥
[तनु कायिता वराकी दिवसे दिवसे मृगाङ्कलेखेव ।
बहुलप्रदोषेण त्वया नृशंस अन्धकारितमुखेन ॥]

४. सअणे चिंतामइअं काऊण पिअं णिमीलिअच्छीए ।
अप्पाणो उवऊढो पसिढिलवलआइ बाहेहिं ॥ (गा० स० २.३)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

विप्रलम्भ शृङ्गार के ऋतु-विषयक भेद—

वसन्तचर्याविषयक विप्रलम्भ—कुशल ? मेरा कुशल कहाँ ? मेरे घर के द्वार पर जो छोटा आम का पेड़ है उसके मस्तक से (मंजरी, बौर के रूप में) कोई अनर्थ उत्पन्न हो रहा है।[१] वसन्त में आम्रमंजरी को देखकर विरहानुभूति तीव्रतर हो जाने की सम्भावना है।

ग्रीष्मचर्याविषयक—'पथिक-वधू, विरहाग्नि से तप्त हो कर भी, निरन्तर गिरते हुए अश्रुजल से भींगे उत्तरीय द्वारा किसी प्रकार ग्रीष्म (का निवारण कर) व्यतीत कर रही है।'[२]

वर्षर्तुचर्याविषयक—'आज मैं उस (प्रिय) के बिना (अतीत) सुखों की अनुभूतियों का स्मरण करती हुई अभिनव मेघों की ध्वनि को वध की घोषणा करने वाले नगाड़े की ध्वनि की तरह सुन रही हूँ।'[३]

शरच्चर्याविषयक—'हे सखियो ! तुम मुझसे ऐसा क्यों कह रही हो कि तीसरा पहर बीत गया तुम सो जाओ। शेफालिका की सुगन्ध मुझे सोने नहीं दे रही है। तुम सब सो जाओ'।[४]

[शयने चिन्तामयं कृत्वा प्रियं निमीलिताक्ष्या ।
आत्मा उपगूढः प्रशिथिलवलयाभ्यां बाहुभ्याम् ।।]

१. खेमं कंतो खेमं जो सो कुज्जंबओ घरद्दारे ।
तस्स किल मज्झआओ कोवि अणत्थो समुप्पण्णो ।। (गा० स० ५.९

[क्षेमं कुतः क्षेमं योऽसौ कुब्जाम्रको गृहद्वारे ।
तस्य किल मस्तकात्कोप्यनर्थस्समुत्पन्नः ।।]

२. गिम्मं गमेइ कह कह वि विरहसिहिताषि पहिअवहू ।
अविरलपडंतणिम्भरवाहजलोल्लावरिल्लेण ।।

[ग्रीष्मं गमयति कथं कथमपि विरहशिखितापि पथिकवधूः ।
अविरलपतन्निर्भरबाष्पजलार्द्रोत्तरीयेण ।।]

३. अज्ज मए तेण विणा अणुहूअसुहाए संभरंतीए ।
अहिणवमेहाणं रवो णिसामिओ वज्झपडहोव्व ।। (गा० स० १.३३)

[अद्य मया तेन विना अनुभूतसुखानि संस्मरन्त्या ।
अभिनवमेघानां रवो निशामितो वध्यपटह इव ।।]

४. सुप्पउ तइओपि गओ जामोत्ति सहीओ कीस मं भणह ।
सेहालिआण गंधो ण देइ सोत्तुं सुअह तुम्हे ।।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(गा० स० ५.११

हेमन्तचर्याविषयक—'हिमरज से धूसरित, विनष्ट कान्ति वाले, स्त्री के मुख की स्मृति करने के कारण पसीने से युक्त होने वाले पथिक की हेमन्त ऋतु में भी शीत (ठण्ढक) नष्ट हो गई है।'[१] स्त्री के मुख की स्मृति से नायक को सात्विक स्वेद उत्पन्न हो जाता है।

हम यह चर्चा कर चुके हैं कि भोजराज ने शृंगार-प्रकाश में विप्रलम्भसम्भोग शृंगार के क्रमशः प्रथमानुराग-प्रथमानुरागानन्तर, मान-मानानन्तर, प्रवास-प्रवासानन्तर, एवं करुण-करुणानन्तर—ये चार-चार भेद गिनाये हैं। इनमें वैचित्र्य और रागवर्धनत्व एवं बलवत्ता की दृष्टि से परस्पर भेद है। वैचित्र्य और रागवर्धनत्व दोनों दृष्टियों से विप्रलम्भ सम्भोग से बलवत्तर होता है। रागवर्धन में प्रथमानुरागानन्तर सम्भोग से मानानन्तर, मानान्तर से प्रवासानन्तर और प्रवासानन्तर से करुणानन्तर उत्कृष्टतर है। इसी प्रकार विप्रलम्भ के अन्तर्गत पूर्वः पूर्व अर्थात् करुण से प्रवास, प्रवास से मान एवं मान से प्रथमानुराग विचित्रतर होता है और रागवर्धनत्व में परः पर अर्थात् प्रथमानुराग से मान, मान से प्रवास एवं प्रवास से करुण श्रेष्ठतर है। नित्य-नैमित्तिकादि अनुराग के उपभेदों में भी वैचित्र्य एवं रागवर्धनत्व का क्रम दिया गया है। तदनुसार रागवर्धनत्व में नित्यराग से नैमित्तिक, सामान्य से विशेष, प्रकाश से प्रच्छन्न, एवं कृत्रिम से अकृत्रिम तथा वैचित्र्य में अकृत्रिम से कृत्रिम, प्रच्छन्न से प्रकाश, विशेष से सामान्य, एवं नित्य से नैमित्तिक बलवत्तर होते हैं। इनके उदाहरण भी उक्त ग्रन्थ में द्रष्टव्य हैं।

नायिकाओं की रमणीयताओं के भेद :—

इसी स्थान पर भोज ने विप्रलम्भ सम्भोग शृंगारान्तर्गत मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा एवं उत्तमा, मध्या, कनिष्ठा नायिकाओं के रामणीयकों (रमणीयताओं) का उत्तमत्व एवं मुग्धत्व के अनुरूप चित्रण उपस्थित किया है। उदाहरण देखिये—

सम्भोग में मुग्धा का उत्तमत्व—"दुर्ललित (दुलार के कारण उद्धतीकृत) बालत्व के कारण नव-वधू ने आज जो किया है वह सुनो; 'घर में अकेली

[स्वप तृतीयोऽपि गतो याम इति सख्यः कस्मान्मां भणथ।
शेफालिकानां गंधो न ददाति स्वप्तुं स्वपित यूयम्॥]

१. हेमन्ते हिमरअ धूसरस्स ओअसरणस्स पहिअस्स।
सुमिरिअ जाआमुहसिच्चिरस्स सीअ चिअ पणट्ठं॥
[हेमन्ते हिमरजोधूसरस्य ओजश्शरणस्य पथिकस्य।
स्मृतजायामुखस्वेदशीलस्य शीतमेव प्रनष्टम्॥]

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

डरती हूँ' उसके ऐसा कहने से सुन्दर पति (का आगमन) बाधित हो गया।"[१]

विप्रलम्भ में मुग्धा का उत्तमत्व—"वर के परस्त्रीसम्भोगानन्तर तज्जन्य गोत्रस्खलन (भुक्त नायिका का नामोच्चारण) के कारण नायिका के आत्मा (देहिअ) का धैर्य (दिहि) भ्रमित (डुंडुल्लइ) हो जाता है। वासकसज्जा (वासक) के शयनागार में (वा बहुत सुगन्धित शयनागार में) वधू के नेत्र अश्रु से भींग गये।"[२]

मध्यानायिकाविषयक सम्भोगकालीन उत्तमत्व—देखिये पृ० ५५ में मध्यमा विषयक संभोग का उदाहरण।

विप्रलम्भकालीन उत्तमत्व मध्याविषयक—देखें 'विशेषानुराग' का उदाहरण।

यह कहा जा चुका है कि मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा एवं उत्तमा, मध्या, कनिष्ठा नायिकाओं के रामणीयकों का हेतु क्रमशः, उत्तमत्व तथा मुग्धत्व होता है। उत्तमत्व मुग्धा, मध्या. प्रगल्भा की, एवं मुग्धत्व उत्तमा, मध्या और कनिष्ठा की रमणीयता का कारण होता है। ध्यान देने की बात है कि भोज ने (सरस्वती-कंठाभरण ५-११०-१२० तक में) ३२ प्रकार की नायिकायें गिनाई हैं। गुण के अनुसार नायिकायें उत्तमा, मध्यमा तथा कनिष्ठा कही जाती हैं तथा वय (आयु) के कौशल अथवा निपुणता के अनुसार उनके भेद हैं—मुग्धा, मध्या और प्रगल्भा। आशय यह प्रतीत होता है कि उक्त मुग्धादि वयोऽनुसारिणी नायिकाओं में नायक के दर्शनादि से स्वयं मुग्ध हो जाना नहीं वरन् नायक को अन्य हाव-भावादि, सौन्दर्यादि गुणों से रिझाना उत्तमत्व का परिचायक है। किन्तु गुणानुसारिणी उत्तमा (ज्येष्ठा), मध्यमा, कनिष्ठा (अधमा) नायिकाओं में मुग्ध होने, मोह को प्राप्त होने का गुण ही उनके श्रेष्ठत्व का परिचायक है। प्रस्तुत उदाहरणों में उत्तमा, मध्या एवं कनिष्ठा नायिकाओं के मुग्धत्व गुण का ही परिचय मिलता है जैसे—

---

१. बालत्तणदुल्ललिआए अज्ज सुण जं कअं णववहूए।
भाआमि घरे एआइणित्ति णिद्धो पई रुद्धो॥
[बालत्वदुर्लंलितया अद्य श्रृणु यत्कृतं नववध्वा।
बिभेमि गृहे एकाकिनीति स्निग्धः पतिः रुद्धः॥]

२. केली गोत्तक्खलणे परस्स दुंदुलइ दिहि देहिअ।
बहवासअ वासहरे वहूणा वाहोल्लिआ दिट्ठी॥
[केलीगोत्रस्खलने वरस्य ।
बहुवासक वासगृहे वध्वा वाष्पार्द्रिता दृष्टिः॥]

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सम्भोग में उत्तमा नायिका का मुग्धत्व---देखें दोहद का उदाहरण।

विप्रलम्भ में उत्तमा का मुग्धत्व—देखें पूर्वकथित मुग्धाविषयक विप्रलम्भ का उदाहरण।

सम्भोग में मध्यमा का मुग्धत्व—"मुग्धत्व के साथ (मुग्धत्व गुणयुक्त, मुग्ध हो कर) वधू, प्रतिपदा (पक्ष की पहली तिथि—णंद, णंदा=नन्दा) में, अन्तःपुर से, सखियों के साथ मार्ग में अनुसरण में प्रवृत्त (दत्तचित्त = प्रवृत्त) प्रियतम के द्वारा रोक ली गई।"[1]

विप्रलम्भ में मध्यमा का मुग्धत्व---'हे सखि! (मेरी इस शंका का) समाधान करो कि प्रिय (दयित) के प्रवासी होने पर (विदेश-गमन करने पर) क्यों सब महिलाओं के हाथों के कंकण बढ़ जाते (ढीले हो जाते) हैं।"[2]

सम्भोग में कनिष्ठा का मुग्धत्व—सखियों के यह कहने पर कि 'स्तनों में कुसुम का फूल लगा है' नववधू नख-चिह्नों को विकसित और प्रकट करती हुई हँस रही है।"[3] हँसने से नखचिह्न और भी स्पष्ट हो गये किन्तु उस मुग्धा नायिका को इसका ध्यान नहीं। कुसुम के फूल (केसर-पुष्प) नख-चिह्नों को छिपाने के लिए चिपकाया था। हँसने से भेद प्रकट हो गया, अथवा हँसने से स्तनों में स्पन्द होने के कारण फूल गिर गये और नखपद स्पष्ट हो गये।

नायक-नायिका भेद

नायक-नायिकादि के भेदोपभेद भी भोज ने 'सरस्वती कण्ठाभरण' ५.१०१–१२३ में दिये हैं।

---

१. मुद्धत्तणेण बहुआणतेवकरवार आहिः सहि सद्धे।
अणुमग्गपत्तेतापि अअमेण हसिऊण पडिरुद्धा॥
[मुग्धत्वेन बधू ....सखी सार्धे।
अनुमार्गे .... प्रियतमेव हसित्वा प्रतिरुद्ध॥]

२. सहि साहसु संभावेण पुच्छिमो किं असेसमहिलाणाम्।
वड्ढंति करठिअ च्चिअ बलआ दइए पउत्थंमि॥
[सखि साधय सद्भावेन पृच्छामः किमशेषमहिलानाम्।
वर्धन्ते करस्थिता एव वलया दयिते प्रवसिते॥]

३. सहि आहि भण्णमाणा थणए लग्गं कुसुमपुप्फंति।
मुद्धबहुआ हसिज्जइ पप्फोअन्ती णह पआइं॥
[सखीभिर्भण्यमाना स्तनयोर्लग्नं कुसुमपुष्पमिति।
मुग्धवधू हास्यते प्रस्फोटयन्ती नखपदानि॥]

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

नायक भेद—नायक के प्रथम चार भेद हैं—नायक, प्रतिपूर्व (प्रतिनायक), उपपूर्व (उपनायक) और अनुनायक । इनमें नायक त्यागी, कृती एवं कुलीन होता है । यह सर्वगुणवान् नेता कथाव्यापी अर्थात् आद्योपान्त कथा का श्रेष्ठ नेता होता है, जैसे राम । प्रतिनायक अन्यायवान्, उद्धत तथा नायक द्वारा उच्छेद्य (विनाश्य) होता है। नायक से कुछ गुणहीन एवं पूज्य उपनायक होता है जैसे सुग्रीव । नायक के समान गुणों वाला किंतु किंचित् न्यून उसका कनिष्ठ (कनीयान्) अनुनायक होता है जैसे लक्ष्मण । गुणों के आधार पर नायक के पुनश्च तीन भेद—उत्तम, मध्यम और अधम माने गये हैं । वह नायक सात्त्विक, राजस और तामस होता है । परिग्रह (भार्याग्रहण) के आधार पर नायक साधारण (बहु-भार्य) एवं अनन्यजानि (एकपत्नीक) होता है । धैर्य-वृत्तितः (धीरता के व्यवहार से) उद्धत (दुर्द्धर्ष) ललित (सौम्य), शान्त (शान्तिमार्गस्थित) और उदात्त कहा गया है । प्रवृत्तिभेद से नायक के तीन प्रकार हैं—शठ, धृष्ट और अनुकूल ।

नायिका भेद—नायकों की भाँति नायिकाओं के भी प्रथम—नायिका, प्रतिपूर्वा (प्रतिनायिका), उपपूर्वा (उपनायिका) एवं अनुनायिका—चार भेद हैं । नायिका कथाव्यापिनी एवं सर्वगुणयुक्ता होती है; उससे कुछ गुणहीना किन्तु पूज्या उपनायिका तथा नायिका के समान किंचित् न्यून कनीयसी (कनिष्ठा) है जिसे अनुनायिका कहते हैं । विद्वेषिणी और सपत्नी प्रतिनायिका कही गई है । गुणानुसार नायिका के तीन भेद हैं—उत्तमा, मध्यमा और अधमा । वयः-कौशलानुसार नायिका मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा होती है । धैर्यानुसार उसके भेद हैं धीरा और अधीरा । परिग्रह भेद से उसके भेद हैं स्वा (स्वीया) और अन्यदीया (परकीया) । उपयमन (स्वीकरण) भेद से वह ऊढा (कृतोद्वाहा) और अनूढा (अकृतोद्वाहा) होती है । क्रम के अनुसार वह ज्येष्ठा और कनीयसी (कनिष्ठा) कही जाती है । व्यवहार भेद से (वृत्तितः) नायिका सामान्या, पुनर्भू और स्वैरिणी—तीन प्रकार की होती है । जीविका भेद से वह रूपा-जीवा (सौन्दर्य-जीविका), विलासिनी (विलासरता) और गणिका (वेश्या) कही जाती है । अवस्था भेद से नायिका के खण्डिता, कलहान्तरिता, विप्रलब्धा, वासक-सज्जा, स्वाधीनपतिका, अभिसारिका, प्रोषितभर्तृका, विरहोत्कंठिता—ये आठ भेद होते हैं ।

अपरा (नार्या) से सम्भोग करके नखक्षतादि से विभूषित जिस नायिका का प्रिय प्रातःकाल लौटता है वह खण्डिता है । चाटुकार (प्रियकारी) नायक

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

को मान के कारण उपेक्षित कर पुनः पश्चात्ताप करती है वह कलहान्तरिता है। संकेतस्थल पर, दूतीप्रेषणानन्तर भी, जो प्रिय से नहीं मिल पाती है वह विप्रलब्धा है। जो सज्जा (शय्या) सज्जित कर, अलंकृत होकर प्रिय की प्रतीक्षा करे वह वासकसज्जा; जिसका पति अत्यन्त अनुराग कामलोलुपता के कारण उसका साथ न छोड़े वह स्वाधीनपतिका; जो कामपीड़िता हो कर प्रिय के पास जाती है वह अभिसारिका; जिसका पति देशान्तर में निवास करता हो वह प्रोषितभर्तृका; जिसका प्रवासी पति निर्धारित अवधि पर न आवे वह विरहोत्कण्ठिता नायिका कही जाती है। इस प्रकार नायिकाओं के ३२ भेद भोज ने किये हैं। पीठमर्द, विदूषक, विटादि के भेद 'साहित्यदर्पण' के अनुसार हैं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

तीसरा अध्याय

महामुनि भरत के नाट्यशास्त्र में श्रृङ्गाररस

समयानुक्रम एवं पौर्वापर्य की दृष्टि से महामुनि भरत नाट्यशास्त्र, अलंकार-शास्त्र एवं रस-शास्त्र के प्राचीनतम प्रणेता माने जाते हैं। इनके नाट्यशास्त्र के छठे अध्याय में शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत एवं शान्त—इन नौ रसों का विवेचन किया गया है। वस्तुतः भरत ने प्रथम आठ रसों को ही मान्यता दी है। इनमें भी शृंगार, रौद्र, वीर एवं बीभत्स ही प्रकृत (मूल) रस तथा हास्य, करुण, अद्भुत एवं भयानक, क्रमशः, तत्तज्जन्य हैं। प्रथम चार उत्पादक एवं अन्य उत्पाद्य रस हैं। शान्तरस का उल्लेख नाट्य-शास्त्र के सब संस्करणों में नहीं है, अतः इस (शान्तरस) की कल्पना भरत के परवर्तियों की हो सकती है। भरत के मत से भी शृंगाररस अन्य रसों की तुलना में प्रधान है।

उनके अनुसार शृंगार 'रतिस्थायिभाव-प्रभव उज्ज्वल-वेषात्मक' है। 'उच्चैर्ज्वलति प्रकाशते इति उज्ज्वलं'—उज्ज्वल शब्द की यह व्युत्पत्ति शृंगार-रस की विशदता की द्योतिका है। उज्ज्वलता, दीप्ति इस रस का वेश (वेष) है। 'विश प्रवेशे', एवं, 'वेशः विशन्ति नयनमनांस्यत्रेति'; 'वेषः वेवेष्टि व्याप्नोति अङ्गं वेषः'—इन व्युत्पत्तियों से भाव निकलता है कि शृंगार-रस की उज्ज्वलता, अन्यरसों की तुलना में, द्रष्टा एवं पाठक के नेत्रों तथा हृदयों में प्रविष्ट होकर उनको पूर्णतः प्रभावित करती है। उज्ज्वलता शृंगाररस में व्याप्त रहती है। आगे भरत ने कहा है "जो कुछ लोक में शुचि (पवित्र, शुद्ध, देदीप्यमान), मेध्य (पवित्रः प्रयतः पूत इति भरतः), उज्ज्वल एवं दर्शनीय है उसकी उपमा शृंगार से दीजिए।" अभिनवगुप्त ने भी 'अभिनव-भारती' में "—कामस्य फलत्वादशेषहृदयसंवादित्वाच्च तत्प्रधानं शृंगारं—" कहकर शृंगार की प्रधानता प्रमाणित की है। भरत के अनुसार शृंगार-रस का नाम-करण एवं लक्षणादि आचारोत्पन्न (व्यवहार, रूढ़ वा सिद्ध) तथा आप्तोप-सिद्ध हैं। इस प्रकार आचार-सिद्ध, व्यवहार, रूढ़, हृद्य (प्रिय, आनन्ददायक, स्वादिष्ट) तथा उज्ज्वलवेषात्मक होने के कारण यह शृंगाररस (कहा जाता) है। उत्तमयुवप्रकृति के स्त्रीपुरुष शृंगार-रस के हेतु हैं।[1] परस्पराभिलाष

१. तत्र श्रृङ्गारो नाम रतिस्थायिभावप्रभवः। उज्ज्वलवेषात्मकः। यत्कि-ञ्चिल्लोके शुचिमेध्यमुज्ज्वलं दर्शनीयं वा तच्छृङ्गारेणोपमीयते।......एवमेष

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

संभोगलक्षणयुक्त, अन्योन्यसंविद् (परस्परसहभावानुभूतियुक्त), रसास्वाद-योग्य, शृंगार सी उत्तम प्रकृति वाले युवक-युवती ही शृंगाररस के हेतु कहे जाते हैं। संवित् (चेतना, अनुभव) ही शृंगाररस का प्राण है—'अवियुक्त-संवित्प्राणस्तु शृंगार:'। युवान स्त्री-पुरुषों की उत्तमता का प्रमाण उनकी संविति ही है—'तत्रोत्तम युवशब्देन तत्संविदुच्यते।'—युवा पुरुष और युवती रमणी यदि अन्योन्य संविद् (पारस्परिक रतिभाव का अनुभव करने वाले) हैं तो उनका 'एक वियोग', (स्थिर अपरिवर्तित वियोग) नहीं होता—'यत्रान्योन्यसंविदा एक वियोगो न भवति'। इस शृंगाररस की दो अवस्थायें होती हैं—सम्भोग और विप्रलम्भ। सम्भोग-शृंगार के स्त्री-पुरुष परस्पर विभाव होते हैं। सम्भोग-शृंगार के अन्य (उद्दीपन विभाव) ऋतु (वसन्तादि), माल्य (कुसुमादि), अनुलेपन (कामोद्दीपक समालम्भन, अङ्गरागादि लगाना), अलंकार (कट-कादि), इष्टजन (विदूषकादि), विषय (गीतादि), वरभवन (हर्म्यादि), आदि के उपभोग, क्रीड़ा (जलावगाहन), लीला (लोगों की अनुकृति, उद्यान-गमन आदि) होते हैं।[1] नयन-चातुरी (यत्तु भ्रुवोर्मूलसमुत्क्षेपश्चतुरमिति—ना० शा० ८-४७), ललित (मन्थर) कटाक्ष संचार, मधुर (नयनाभिराम) अङ्गहार (अङ्ग-संचालन). एवं इन कटाक्षादि के कर्त्तव्य-काल में श्रवणसुख-कर वाक्यादि अनुभाव हैं।[2] आलस्य, उग्रता और जुगुप्सा के अतिरिक्त शेष व्यभिचारीभाव शृंगार के व्यभिचारीभाव हैं। इनमें दुःख प्राय निर्वेद, ग्लानि शंका, असुया, श्रम. चिन्ता, औत्सुक्य, निद्रा, स्वप्न, विबोध, व्याधि, उन्माद, अपस्मार, जाड्य, मरणादि विप्रलम्भशृङ्गार के व्यभिचारीभाव हैं। दुःख-प्राय निर्वेदादि एवं आलस्य के व्यतिरिक्त धृति आदि सम्भोगशृङ्गार में उप-न्यस्त होते हैं।[3]

आचारसिद्धो हृद्योज्ज्वलवेषात्मकत्वाच्छृङ्गारो रसः। स च स्त्रीपुरुषहेतुक उत्तम-युवप्रकृतिः।

(नाट्य० ६-४५ कारिका)

१. तस्य द्वे अधिष्ठाने सम्भोगो विप्रलम्भश्च। तत्र सम्भोगस्तावद् ऋतुमाल्यानुलेपनालङ्कारेष्टजनविषयवरभवनोपभोगोपवनगमनानुभवनश्रवणदर्शनक्रीड़ा-लीलादिभिर्विभावैरुत्पद्यते।

२. तस्य नयनचातुर्यभ्रूक्षेपकटाक्षसञ्चारललितमधुराङ्गहारवाक्यादिभिर-नुभावैरभिनयः प्रयोक्तव्यः।

३. व्यभिचारणश्चास्यालस्यौग्र्यजुगुप्सावर्ज्याः। विप्रलम्भकृतस्तु निर्वेदग्ला-निशंकासूयाश्रमचिन्तौत्सुक्यनिद्रास्वप्नविबोधव्याध्युन्मादापस्मारजाड्यमरणादिभि-रनुभावैरभिनेतव्यः।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

करुणरस एवं करुण विप्रलम्भ में अन्तर—

श्रृंगाररस की विवेचना के ही प्रसंग में भरत ने शास्त्रीय-पद्धति पर करुण-रस और करुण विप्रलम्भ सम्बन्धी शंका उठाकर तत्भेदक सिद्धान्त स्थिर किया है। पूर्वपक्ष में शंका उठाते हुए वे कहते हैं "यदि यह श्रृंगार रति-प्रभव है, तो इसके अन्तर्गत करुणाश्रयी भावों का समावेश कैसे हुआ ? उत्तरपक्ष में समाधान उपस्थित किया है कि श्रृंगार सम्भोग और विप्रलम्भ-कृत है। वैशिक-शास्त्रकारों (वेश्यावर्ग-सम्भोगसम्बन्धी कामसूत्रकारों) ने अभिलाष, मरणादि दश कामदशाओं का उल्लेख किया है जो करुणरस के अन्तर्गत नहीं मिलतीं। करुणरस की प्रकृति अधम होती है क्योंकि इसमें रति नामक स्थायीभाव का अभाव है। शापक्लेश, विनिपतित इष्टजन के विभव का नाश, उनका वध, बन्धन आदि करुणरस की अवस्थायें रति-निरपेक्ष होती हैं। बन्धुजन की अपेक्षा शृङ्गाररस का सबसे प्रधान लक्षण है जो करुणरस में अप्राप्य है। इसके विपरीत औत्सुक्य, चिन्ता आदि रतिसापेक्षभाव हैं जो विप्रलम्भकृत हैं। करुण, विप्रलम्भ और सम्भोग-श्रृंगार के स्थायिभाव एक ही हैं किन्तु करुणरस के स्थायीभावादि भिन्न हैं।

नायिकादि के अलंकार—श्रृंगाररस उसके स्थायीभाव, विभावादि का उक्त विवरण देने के उपरान्त नाट्यशास्त्र के बाइसवें अध्याय में भरत ने नायिकादि के वागङ्गसत्वज अलंकारों, शील, अवस्था एवं वय के अनुसार उनके भेदोपभेदों का पारिभाषिक विवरण दिया है। ये अभिनय निश्चय ही श्रृंगारिक अभिनय हैं।

यौवन-काल में स्त्रियों के वक्त्र-गात्रज (मुखशरीरजन्य) विकार भाव-रसाश्रय (भावों और रसों के आश्रयभूत) अलंकार (नाट्यज्ञों द्वारा) कहे जाते हैं। इनमें से (निम्नलिखित) तीन अङ्गज, दश स्वाभाविक और यत्नज, तथा सात अयत्नज कहे जाते हैं। ये अलंकार देह-मात्र निष्ठ होते हैं, चित्त-वृत्तिरूप नहीं। रतिभावमात्र का अभिनयन करने के कारण इनको भाव-संश्रित कहा है। इनका उद्रेक यौवन में होता है। बाल्यकाल में ये अनुद्भिन्न होते हैं एवं वार्धक्य में तिरोभूत। किसी कवि ने कहा है—'तरुणीजन (युवति-वर्ग) के कुट्टमितादि ये जितने भाव होते हैं, उन सबको रात्रि में अदृश्य घटादिकों की भांति कामरूपी दीपक प्रकट कर देता है।'[1]

---

१. यावन्त एते तरुणीजनस्य भावाः समं कुट्टमिताद्योऽपि।
रात्रावदृश्यानिव तान्घटादीन्कामप्रदीपः प्रकटीकरोति ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

'अभिनवभारती' में उक्त परिभाषा को स्पष्ट किया गया है। तदनुसार 'वक्त्रगात्रज' का आशय है देह विकारमात्र रूप। अन्तःप्राणभू (अन्तःकरणोत्पन्न) बाष्पादि (अश्रुप्रेरक भीतरी उच्छ्वास) की भांति कण्ठ-रोधादि के समान इन अलंकारों का मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार—इस अन्तःकरण-चतुष्टय से कोई प्रयोजन नहीं। ये देहविकार पूर्वजन्म से घनिष्ठ सम्बन्ध रखने वाले (प्राग्जन्माभ्यन्तरित) होते हैं। भाव संस्कारमात्र से सत्व (आत्मा में विश्रान्त होने वाले रस का प्रकाशक अन्तःकरण का विशेषधर्म) के उद्बुद्ध होने से देहमात्र में स्थित रहने के कारण ये (भाव, हाव, हेला) अङ्गज कहे जाते हैं। अंगजेतर (यत्नज और अयत्नज) लीला, विलास, शोभा, कान्ति आदि अलंकार प्रस्तुत जन्म में समुचित और विशिष्ट विभावों के अनुप्रवेश (उपस्थिति) से रतिभावानुविद्धदेह में स्फुट (व्यक्त) होते हैं। यत्नज-अलंकार स्वाभाविक भी कहे जाते हैं। क्योंकि वे स्वभाव-बल से उत्पन्न होते हैं।[1]

अङ्गज—भाव, हाव और हेला—ये तीन अङ्गज अलंकार हैं। 'प्राच्यवासनानुविद्ध देहमात्र प्रभवित्व के कारण ये सर्वपूर्व (सबसे पहले) होते हैं। ये क्रिया (कृति)-साध्य हैं। इनकी व्यक्ति (प्रकटीकरण) के लिए शारीरिक क्रिया आवश्यक है। देहात्मक (उत्तम शरीरसंभूत) सत्व से भाव, भाव से हाव और हाव से हेला की उत्पत्ति होती है। ये भाव, हाव हेलादि, देहस्वभावापेक्षी होते हुए परस्पर समुत्थित होते हैं। अर्थात् अवसरानुकूल ये एक दूसरे से, क्रम का उलङ्घन करके भी, उत्पन्न हो जाते हैं। युवतियों में कभी हेला से हाव, हाव से हेला अथवा हेला के अनन्तर भी हेला उत्पन्न हो जाया करता है।

वाचिक, आङ्गिक एवं सात्विकराग (रंजन) के अभिनय द्वारा कवियों (सूक्ष्म, सूक्ष्मतर अर्थों को देखने वाले सहृदयों) के वासनात्मतया वर्तमान रसाख्यभावों को भावित (सुवासित, अनुरंजित) करने वाले विकार भाव हैं।

शृंगारोचित आकार के सूचक नेत्र, भ्रू, चिबुक, ग्रीवादि की भंगिमा से, स्थित–समुत्थित (स्थितः स्वयं समुत्थितः) अर्थात् रह-रह कर उद्भिन्न (विकसित) होने वाले विकार हाव हैं।

---

१. वक्त्रगात्रजा इति देहविकारमात्ररूपा एव न हि यथा बाष्पादीनामन्तःप्राणभुवि कण्ठरोधादिरूपं लक्ष्यते····ते च प्राग्जन्माभ्यन्तरिता भावसंस्कारमात्रेण सत्त्वोद्बुद्धेन देहमात्रे सति भवन्ति, त एवाङ्गजा उच्यन्ते······। अन्ये त्वद्यतनजन्मसमुचितविशिष्टविभावानुप्रवेशस्फुटीभवद्रतिभावानुविद्धे देहे परिस्फुरन्ति।
[ना० शा० २२–५—गद्यभाग अभि० भारती]

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

ललित अभिनयों (चेष्टाओं) से युक्त शृंगाररस (रति)-सम्भव देहविकार विशेष को हेला कहते हैं। हावावस्था में स्वयं रति का प्रबोधन नहीं माना जाता। केवल रति के संस्कारबल से देह में विकार उत्पन्न हो जाता है। हेला में रति प्रवृद्ध मानी जाती है। केवल समुचित विभावोपग्रह (विभावोपयोग, विभावानुकूलता) के अभाव से उत्पन्न निर्विषयता (आलम्बनविभाव राहित्य) के कारण उक्त देहविकार परिस्फुट नहीं हो पाता।

लीला, विलास, विच्छित्ति, विभ्रम, किलकिंचित, मोट्टायित, कुट्टमित, विब्बोक, ललित और विहृत—ये दश स्त्रियों के स्वभावज अलंकार हैं।

यह कहा जा चुका है कि भाव, हाव, हेला अंगज अलंकार हैं। ये सत्त्वाधिका-उत्तमाङ्गनाओं में पाये जाते हैं। शोभा, कान्ति आदि अलंकार गुण-स्वभावी और अयत्नज होते हैं। स्वाभाविक अलंकार यत्नजात (क्रियात्मक) होते हैं। स्वरतिभाव से प्राणित, हृदयगोचरीभूत होने के कारण ये स्वभावज कहे गये हैं। इन स्वभावजालङ्कारों में रति का प्रबोधनमात्र होता है। अभिलाष की स्थिति यहाँ नहीं मानी जाती। ये अलंकार पुरुषों में भी होते हैं किन्तु स्त्रियों में अधिक शोभित होने के कारण उन्हीं के साथ वर्णित होते हैं।

प्रियतमगत प्रीति, उसके प्रति आत्मा (हृदय) में अतिशय आदर के भाव, मधुर (सुकुमार, अनुद्धत) विशिष्ट (न कि कल्पित एवं साभिमान) वाचिक आङ्गिक अलंकारों से युक्त प्रयोगज्ञ युवतियों द्वारा प्रियजन की अनुकृति को लीला कहते हैं। स्पष्ट है कि लीला में प्रियतम के प्रति रति, समादर एवं शिष्टाचार का भाव आवश्यक है। औद्धत्य, साभिमानता एवं अनुकरणगत अशिष्टता इस अलंकार के विरोधी तत्त्व हैं।

स्थानासन (आसनोपविष्टता, आसन पर बैठने की क्रिया), गमन एवं हस्त, भ्रू, नेत्रादि के कर्मों (व्यापारों) में (प्रिय के दर्शनादि से) जो श्लिष्ट (अनुल्वण अस्पष्ट, अव्यक्त) विशेषता उत्पन्न होती है वह विलास है।

माल्य, आवरण, अलंकार; विलेपन (अंगरागादि लगाना) आदि के उपेक्षापूर्ण एवं अत्यल्प भी धारण, ग्रहणादि से यदि परमशोभा की उत्पत्ति हो तो वह अलंकृति विच्छित्ति कही जाती है।

विविध वस्तुओं (वस्त्राभूषणादि) तथा वाणी, अंग, वेश, सत्त्व (सुखजनक गुण, प्रसाद, हर्ष, प्रीति आदि अथवा सात्त्विक अनुभाव, स्तम्भ, पुलकादि) आदि का, मद, राग, हर्षजनित व्यत्यास (व्यतिक्रम) विभ्रम है। प्रिय की प्राप्ति के कारण उत्पन्न हर्ष से स्मित (मुसकान), रुदित (रोदन), हसित (हास),

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

भय, हर्ष, गर्व, दुःख, श्रम, अभिलाष आदि का संकर-करण (संकीर्णता, मिश्रण) किलकिंचित कहा जाता है ।

प्रियतम की कथा के सुनने से युवतियों में लीला, हेलादि के उत्पन्न होने एवं तद्भावभावन (उस भाव में तन्मय होने) के कारण मदनांगमर्दपर्यन्त (कामवशअङ्गों का मर्दन) अङ्गमोडन मोट्टायित है ·

केश, स्तन, अधरादि के ग्रहण से हर्ष संभ्रमोत्पन्न (हर्ष और घबड़ाहट से उत्पन्न) औपचारिक दुःख-प्रदर्शन से युक्त सुख (की प्राप्ति) को कुट्टमित कहते हैं ।

वस्त्रालंकारादि इष्ट भावों (अभिलषित पदार्थों) का अभिमान-गर्वसंभूत अनादर विव्वोक है ।

भ्रू, नेत्र, ओष्ठादि के संचालन से युक्त सुकुमारता से हस्तपादांग-विन्यास (हाथ , पैर आदि का प्रयोग) ललित कहा जाता है । अत्यन्त प्रीतियुक्त वाक्य-प्रयोग (प्रेमपूर्ण वार्ता) का अवसर प्राप्त होने पर भी, लज्जावश, स्वभाववश (मौग्ध्य, बाल्य वा अन्य चित्तस्ववश) अथवा (मौग्ध्यादि के) व्याज (बहाना, प्रख्यापन)-वश अभाषण (न बोल पाना) विहृत हैं ।

शोभा, कान्ति, दीप्ति, माधुर्य, धैर्य, प्रागल्भ्य और औदार्य—ये सात अयत्नज अलंकार हैं ।

रूप, यौवन, लालित्य (लावण्य) एवं उपभोग (सुखभोग) की उपबृंहिति (बृद्धि, प्राचुर्य) से अङ्गों की अलंकृति शोभा है ।

आपूर्ण मन्मथ (कामोपभोग, मन्मथोन्मेष से उत्पन्न) शोभा को कान्ति कहते हैं ।

अत्यन्त विस्तीर्ण कान्ति को ही दीप्ति कहते हैं ।

क्रोध (दीप्त) आदि और ललित (रतिक्रीड़ादि) सभी अवस्थाओं में अनुत्कट चेष्टा (मसृण कोमल अङ्गचालन) को माधुर्य कहते हैं ।

रूप-यौवनादि समस्त अर्थों (वस्तुस्थितियों) में चापलानुपहत (अचंचल) एवं अविकत्थन (अनात्मश्लाघाकर) स्वाभाविकी मनोवृत्ति को धैर्य कहा जाता है ।

प्रयोग (कामकलादि) में निस्साध्वसता (निर्भयता) प्रागल्भ्य है ।

सब अवस्थाओं (अमर्ष, ईर्ष्या, क्रोधादि दशाओं) में प्रश्रय (विनय) को औदार्य कहते हैं ।

शोभा, विलास, माधुर्य, स्थैर्य, गाम्भीर्य, ललित, औदार्य, तेजादि सत्त्वभेद अर्थात् दाक्ष्य (निपुणता) आदि शरीर-विकारभेद से पुरुषगत भी होते हैं ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पुरुषगत अलंकार :—दक्षता, शौर्य, उत्साह, नीच (अधम) व्यक्ति वा वस्तु से घृणा, उत्तम गुणों (गुणवाले व्यक्तियों) से स्पर्धा, को शोभा कहते हैं।

धीरसंचारिणी (धीरता से आक्षिप्त दृष्टि), गो वा वृषभ के समान सुन्दर गति, मुसुकानयुक्त वार्ता को विलास कहते हैं।

बड़े-वड़े विकारों (प्रकृति वा मूलस्वरूपादि के परिवर्तनों, प्रकृति के अन्यथा भावों, सामान्य स्थिति के परिवर्तनों—महत्स्वपि विकारेषु) यथा युद्ध (सशस्त्र संग्राम), नियुद्ध (बाहु-युद्धादि) व्यायामादि के समय भी पुनरनुशीलन (बारम्बार अभ्यास) से कर-चरणादि की क्रियाओं में (करणों में) जो श्लिष्टत्व (अनुल्वणत्व, अनौत्कट्य) उत्पन्न होता है वह माधुर्य कहा जाता है। भाव यह कि युद्धादि उग्रकर्मों को करते समय भी अभ्यास के कारण स्वरूप, मुद्रा, आकृति में कोमलता के बने रहने को, अंगसंचालनादि-जन्य उत्कट परिश्रम के समय भी बाह्य मुद्रा में सुकुमारता की यथास्थिति को माधुर्य संज्ञा दी गई है।

धर्म, अर्थ, काम, मोक्षरूपी फल देनेवाले शुभाशुभ संकल्पजात उद्योग में स्थिरता (व्यवसायादचलनं) को स्थैर्य कहते हैं। हर्ष, क्रोध, भयादि में भी उनके प्रभाव से आकार (आक्रियते चित्तवृत्तिरेभिरित्याकारः), मुखराग, दृष्टि आदि में विकार के अभाव, निस्तिमित (अनार्द्र, अक्लिन्न) देहस्वभाव को गाम्भीर्य कहते हैं।

अबुद्धि पूर्वक (बिना सोचे-विचारे) की गई, निर्विकार स्वभावज शृंगारयुक्त चेष्टाओं को ललित कहते हैं।

स्वजन एवं शत्रु को भी दान देना, परित्राणार्थ अङ्गीकार करना, उनसे प्रियभाषण आदि करना औदार्य है।

दूसरे के द्वारा किये गये अधिक्षेप (निन्दा) अवमान (तिरस्कार, अपमान) को प्राणात्यय (प्राणनाश) होने पर भी न सहना तेज है।

नीत्यनुवर्तन (नीति का अनुसरण) एवं देशकालादि का अनुगमन करते समय लिए गये प्रतिशोध को तेज नहीं कहेंगे।

इसी (बाइसवें) अध्याय में भरत ने 'काम' का अर्थ 'इच्छा' मान कर उसे धर्म, अर्थ और मोक्ष सबमें संयुक्त किया है। तदनुसार काम तीन प्रकार का हैं—धर्म-काम, अर्थ-काम और मोक्ष-काम। इन्हीं तीन काम-प्रकारों से सब कार्यों (भावों) की निष्पत्ति होती है।[१] गुणों से सम्पन्न (पूर्ण) होकर यह

१. प्रायेण सर्वभावानां कामान्निष्पत्तिरिष्यते।
स चेच्छागुणसम्पन्नो बहुधा परिकल्पितः॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सर्वकार्यकारी होता है। स्त्रीपुरुष के योग (स्त्री-पुरुष-संयोग) को काम कहते हैं। यही काम जब शुभोपचारकृत (उत्तम व्यवहार से, शुभ क्रियाओं से सम्पन्न) होकर रतिसंभोगकारक (रति की इच्छा उत्पन्न करनेवाला) होता है तो उसे शृंगार कहते हैं।[१] उचित व्यापारों से परिपूर्ण अन्योन्यहृदयग्रहण (पारस्परिक अनुराग से हृदय को प्रभावित करने की क्रिया) उपचार है। इसीलिए शृंगार उत्तम प्रकृति का कहा गया है। यह लोक-भूयिष्ठ (प्राप्त से भी अधिक) सुख की इच्छा करता है और नानाशीलयुक्त, विविध-स्वभावा विभिन्न इच्छाओं (हेवाक) से युक्त स्त्रियाँ उक्त सुख का मूल है[२]—शीलं, सत्त्वं, चैतन्यं बुद्धिपूर्वकं स्वभावो हेवाक इति पर्यायाः। स्त्रियाँ देव, दानव, गन्धर्व, रक्ष (राक्षस), नाग, पतत्री (पक्षी), पिशाच, यक्ष, व्याल, नर, वानर, मृग, मीन, उष्ट्र मकर खर, शूकर, वाजी, महिष, अज, गो आदि के समान शीलवाली होती हैं। स्वभावानुसार स्त्रियों के २१ भेद किये गये हैं।

स्वभावानुसार स्त्रियों के भेद :—स्निग्ध (चिकना, मृदुल) अङ्गोपाङ्गों, नियत एवं मन्द निमेष (पलक, पक्ष्मस्पन्दनकाल) वाली, रोगहीन, दीप्तियुक्त दानशीला, अल्पस्वेदा, समरता (न बहुत मृदु, न बहुत खर या तीक्ष्ण) स्वल्पभुक् (कम खानेवाली), सम्भोगेच्छुका, सुगन्धित फूलों से अनुराग रखनेवाली मनोहारिणी सुन्दरी देवशीलांगना कही जाती है।

आसुरी शील की स्त्री अधर्म और शठता में अनुरक्त, दृढ़ क्रोधवाली, अत्यन्त निष्ठुरा, मद्य-मांसप्रिया, सर्वदा कोप करनेवाली, अत्यन्त मानिनी, चंचला, अतिलुब्धा, परुषा (कठोरस्वभावा), कलहप्रिया, ईर्ष्याशीला, अस्थिर स्नेह वाली होती है।

क्रीड़ाशीला, सुन्दर नेत्रोंवाली (चारुनेत्रा), सुपुष्पित (विकसित) नख और दाँतों वाली, स्वङ्गी (सुखद अङ्गोंवाली), स्थिरभाषिणी (नियत ढंग से बोलने वाली), मंदापत्या (अल्प संतान वाली), रति (सम्भोग) में प्रीति, रुचि रखने वाली, गीत, नृत्य, वाद्य में अनुरक्त, प्रसन्न (हृष्टा, हृषिता) और मृजावती (मृजा=मार्जनम्, शुद्धीकरणम् अर्थात् मार्जन, शुद्ध करने वाले गुणों से युक्त), कोमल, चिकने, चर्म, केश और लोचनों वाली (स्निग्धत्वक्केशलोचना), स्त्री गन्धर्वसत्वा (स्वभावा) कही जाती है। जिसके सर्वाङ्ग बृहद्, विस्तीर्ण हों, जिसके नेत्र बड़े-बड़े और लाल हों, तीक्ष्ण, कड़े वा गधे के समान

---

१. यः स्त्रीपुरुषसंयोगो रतिसंभोगकारकः।
स शृंगार इति ज्ञेय उपचारकृतः शुभः ॥ ना० शा० २२. ९५

२. भूयिष्ठमेव लोकोऽयं सुखमिच्छति सर्वदा।
सुखस्य हि स्त्रियो मूलं नानाशीलाश्च ताः पुनः ॥ ना०शा० २२.९८

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

रोमों वाली (खररोमा), दिन में सोने वाली (दिवास्वप्ननिरता), ऊँचे स्वर में बोलने वाली (उच्चभाषिणी), नखों और दाँतों से क्षत (पीड़ित) करने वाली, क्रोध, ईर्ष्या और कलह में अभिरुचि रखने वाली एवं रात्रि में भ्रमण करने वाली (निशाविहारशीला) राक्षस-शीलाश्रिता स्त्री कही जाती है।

तीक्ष्ण नासिकाग्र एवं दाँतों वाली, सुन्दर या कृश शरीर, लाल नेत्र, नीले कमल के समान वर्ण वाली, स्वप्नशीला (बहुत सोनेवाली), बहुत कोप करने, वाली, टेढ़ी चाल, तिरछी चाल चलने वाली, चंचल वृत्ति से अथवा अस्थिर, क्षणिक उद्योग, प्रयत्न वा कार्य करने वाली, बहुत श्वास लेने, बहुत मान करने सुगन्धित माला और सुरा में रत रहने वाली स्त्री नागसत्वा कही जाती है।

जिसका अन्तमुँख अत्यन्त विस्तीर्ण हो, उग्रस्वभावा, नदी से प्रीति रखने, मद्य एवं रसादि से अनुराग रखने वाली, बहुत सन्तान वाली, फल से प्रीति रखने, नियमित श्वास लेने, उद्यान, बनादि से अनुराग रखने वाली, चपला, बहुत और शीघ्र बोलने वाली शाकुन (पक्षी के) सत्ववाली स्त्री है।

न्यूनाधिक अंगुलि-युक्त हाथों वाली, रात्रि में निष्कुटाचारिणी (गृहाराम, घर की बाटिका में बिहार करने वाली), बालकों को पीड़ा पहुँचाने वाली, निन्दा-चुगली करने वाली, घुमा फिराकर कठिनाई से अर्थ प्रकट करने वाला भाषण करने वाली, सम्भोग के समय कुत्सित आचरण करने वाली, रोमयुक्त अङ्गों वाली, घोर, कर्कश स्वर में बोलने, मद्य, मांसयुक्त बलि (पूजा) से प्रीति रखने वाली पिशाचसत्वास्त्री है।

सोते समय पसीने से युक्त अंगों वाली, स्थिर (शांत, कठिन, निश्चल) शय्या और आसन में रुचि रखने वाली, मेधाविनी (धारणावती बुद्धिवाली) मद्य, गंध, आमिष में प्रीति रखने वाली कृतज्ञता से (के कारण) दीर्घकाल तक देखने पर हर्ष प्रकट करने वाली, दीर्घकाल तक न सोने वाली अंगना यक्षशीला कही जाती है।

मानावमान में सम, एक समान रहने वाली, कठोरचर्मा (परुषत्वक्) कर्कशस्वरा, शठ, असत्य एवं उद्धत (कटु) बोलने वाली पीले नेत्रों वाली स्त्री व्यालसत्वा कही जाती है।

ऋजुता (सरल व्यवहार) में अनुराग रखने वाली, नित्य-निपुण, क्षमा-शील विभक्ताङ्गी (सुस्पष्ट विकसित अङ्गों वाली) कृतज्ञ, गुरुदेवद्विजप्रिया, धर्म कामार्थनिरता, अहंकारविहीना, सुहृत्प्रिया एवं सुशीला स्त्री मानुषसत्वा है।

घने (संयुक्त, ठोस) अल्प शरीर वाली, प्रसन्न, पीले रोमों वाली, छल अनुरक्त, उग्ररोष, [illegible] तीक्ष्णस्वभावा, वृक्ष, वाटिका और बन से प्रीति रखने

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

वाली, स्वल्प उपकार को भी बहुत मानने वाली, बलपूर्वक रति करने वाली स्त्री वानरसत्वा है।

विस्तीर्ण ठोढ़ी (चिबुक) और ललाट वाली, उन्नत, प्रवृद्ध शरीर, पीली आँखों, रोमश अङ्गोंवाली, गन्ध, माल्य एवं आसव से प्रीति रखने, कोप करने वाली, स्थिरचित्ता, जलोद्यान, वन से प्रीति रखने, माधुर्य में अनुराग रखने वाली स्त्री हस्तिसत्वा है।

स्वल्पोदरी, भग्ननासा, कृशजंघा, वनप्रिया, चंचल दीर्घनयना, चपला, दीर्घगामिनी, दिन में भयभीत रहने, नित्य गीत, वाद्य एवं रति में रुचि रखने, निवास पर स्थिरचित्त रहने वाली स्त्री मृगसत्वा है।

दीर्घ, पीन, उन्नत वक्ष वाली, चंचला, बहुत पलक न गिराने वाली, बहुत अनुचरों और सन्तान वाली, जल से प्रीति रखने वाली स्त्री मत्स्यसत्वा है।

लम्बे ओष्ठवाली, स्वेदबहुला, कुछ-कुछ भद्दी (विकट) चालवाली, कृशोदरी, पुष्प, फल, लवणाम्लकटु पदार्थों में रुचि रखने वाली. विषमकोटि और पार्श्ववाली (उद्‌बन्धकटिपार्श्वा) कर्कशा कठोर भाषण करने वाली, अत्यन्त उन्नत कटि और ग्रीवा वाली, और वनप्रिया स्त्री उष्ट्र-सत्वा है।

मोटे शिर, वक्र (अंचित) ग्रीवा, विदीर्णमुख (दारितास्या) घोर ध्वनि करने वाली, मछली के गुणों से युक्त स्त्री मकरसत्वा कही गई है।

मोटी जीभ, मोटे ओष्ठ, मोटे-मोटे दांतों वाली, रूक्ष (शुष्क, अनार्द्र) त्वचा-वाली, कटुभाषिणी, रतिकाल में युद्ध करने वाली, ढीठ, नखों, दांतों आदि से क्षति पहुँचाने, व्रण करने वाली, सपत्नी से द्वेष करने वाली, निपुणा, चपला, शीघ्रगामिनी, रोगयुक्ता, बहुत सन्तान वाली स्त्री खरसत्वा कही जाती है।

दीर्घ पृष्ठ, उदर और मुख वाली, रोमिल अंगों वाली, बलयुक्ता, अत्यन्त, छोटे ललाट वाली (सुसंक्षिप्त-ललाटा). कन्दमूल-फल से प्रीति रखने वाली, काले रंग, तीव्र वा विषम दांतों और मुखवाली, छोटे पेट और शिर के छोटे-छोटे बालों वाली, नीच आचरण वाली, बहुत बच्चों वाली, सौकरसत्वा (शूकर के स्वभाव वाली) स्त्री कही गई है।

दृढ (सुगठित) एवं सुस्पष्ट पार्श्व, जांघ, कटि, पृष्ठ, शिर और अधर वाली, सुन्दरी, दानशीला, सीधे और घने, बड़े बालों वाली, दुबली-पतली, चंचलचित्ता, मधुरभाषिणी, शीघ्रगामिनी, कामक्रोधपरा स्त्री हयसत्वा कही जाती है।

मोटी और बड़ी पीठ, आँख एवं बड़े दांतों वाली, कृशपार्श्वोदरा, दृढ़, पिंगल, वक्ररोमों वाली, रौद्री (क्रोधपूर्णस्वभावा), लोगों (लोक) से द्वेष

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

करने वाली, रति (सम्भोग) में रुचि रखने वाली, कुछ-कुछ उभरे हुए मुख वाली, जलक्रीड़ा और बन में प्रीति रखने वाली, दीर्घललाट, सुन्दर नितम्बों वाली (सुश्रोणी) स्त्री महिषसत्वा कही जाती है।

कृशशरीर, भुजाओं एवं वक्ष, जड़ीभूत, स्थिर नेत्रों, परिमित (छोटे-छोटे) हाथों, पदों वाली, पतले छोटे रोमों से भरी हुई (सूक्ष्मरोमसमाचिता) भयशीला, जल से घबड़ाने वाली, बहुत सन्तानवाली, बन में प्रीति रखने वाली, चंचला, शीघ्रगामिनी स्त्री अजसत्वा कही जाती है।

असमंजस (संगति, समता से विहीन, अव्यवस्थित) अंगों एवं नेत्रों वाली, विजृंभण (कामक्रीड़ा, जंभाई)-परायण (कामरत वा बारम्बार जंभाई लेने वाली) लम्बे-छोटे मुखवाली (दीर्घाल्प-वदना), छोटे-छोटे हाथों और चरणों वाली, ऊंचे स्वर, स्वल्प-निद्रावाली, क्रोध करने वाली, पुण्यकर्मों में प्रीति करने वाली, नीच आचरण करने, कृतज्ञता मानने वाली नारी अश्वशीला कही जाती है।

विशाल, मोटे, उभरे हुए नितम्बों, कृश जंघों वाली, प्रियजन की प्रिया, छोटे-छोटे हाथों, चरणों वाली, दृढ़तापूर्वक कर्मारम्भ करने, प्रजा का हित चाहने, पितरों और देवताओं की पूजा करने में अनुरक्त रहने, सत्य, शौच (पवित्रता) और गुरुओं से प्रीति रखने वाली, अचंचल (शान्त) क्लेश सहने वाली, स्त्री गोसत्वा कही जती है।

उक्त नानाशीला स्त्रियों के विविध सत्वों का विवरण देने के पश्चात् भरत ने उनकी विविध-प्रकृतियों और तदनुसार कामोत्पत्ति का उल्लेख किया है।

स्त्रियों की प्रकृतियाँ और कामोत्पत्तिः—नानासत्त्वसमुद्भवा नायिकाओं की प्रकृति तीन प्रकार की होती है :—बाह्य, आभ्यन्तर और बाह्याभ्यन्तर-परा। इनमें कुलीना स्त्रियाँ आभ्यन्तरा प्रकृति की, वेश्यांगना, बाह्या और कृत शौचा (वेश्या-पुनर्भवा) बाह्याभ्यन्तरा प्रकृति की कही जाती हैं। 'कृतशौचा' का अर्थ है 'एकान्त में प्रवरुद्ध एवं शुद्ध करके वेश्या को 'पुनर्भवा', पुनः जन्म धारण करनेवाली बनाना। इन स्त्रियों में कामोत्पत्ति के निम्नलिखित हेतु बताये हैं:—कामोत्पत्ति, श्रवण' दर्शन, चित्रादि प्रतिकृति (रूप), आंगिक लीला, विचेष्टितों (चेष्टाओं), मधुरालाप, आदि से होती है। रूप, गुण, कला, विज्ञानादि से सम्पन्न पुरुषविशेषको देखकर नारी मदनातुरा हो जाती है। तदनन्तर स्त्री-पुरुष के कामायमान होने पर कामभावयुक्त, कामकृत इंगित (शरीर-विकार) लक्षित होते हैं। मदनातुरा वेश्या के लक्षण हैं—पलकों का चंचल होना (चलपक्ष्मा),

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

नेत्रों का मुकुलित (ईषत विकसित) होना (मुकुलेक्षणा), उत्तरपट (उत्तरीय, चादर) का खसित होना (स्रस्तोत्तरपुटा), दृष्टि का काम्य होना (कामनाविशेष से संचालित होना), गण्डस्थल (कपोल-मण्डल) का किंचित संरक्त (लाल) एवं स्वेदबिन्दुओं से कुछ-कुछ अंकित होना (सस्वेदलवचित्रितः), प्रस्पन्दनयुक्त रोमांच होना, मुख-मण्डल का रंजित होना, सुन्दर अङ्गों में विकार की उत्पत्ति, तथा सकटाक्षनिरीक्षण, आभरण-संस्पर्श, कर्ण-कंडूयन (कानों को खुजाना), अंगुष्ठाग्र-विलिखन, स्तन-नाभि-प्रदर्शन, नख-निस्तोदन (नख को पीड़ा पहुँचाना) केश-संयमनादि करना।

कुलजा, मदनातुरा होने पर, हंसती हुई तने हुए नेत्रों से देखती, गर्व दिखाती, अधोमुखी होकर गूढ़ वचन बोलती है। यहाँ कुलजा से उत्तम कुलोत्पन्ना कुमारी वेश्या का अर्थ ग्रहण किया गया है।

कुलांगना (कुलबधू) मुस्कुरा कर उत्तर देने, मन्द स्वर में बोलने, स्वेदयुक्त आकार को छिपाने वाली, प्रस्पन्दितअधर (नीचे का ओष्ठ) वाली और चकित रहने वाली होती हैं।

दश काम दशायें—इस प्रकार अप्राप्तसुरतोत्सवा (जिसे सम्भोग, मैथुन का अवसर न प्राप्त हो) स्त्रियों में क्रमशः दश प्रकार की कामावस्थायें पाई जाती हैं—अभिलाष, चिन्तन, अनुस्मृति, गुण, कीर्तन उद्वग, विलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता एवं मरण।

1. **अभिलाषः**—व्यवसाय, (काम्यजन-ज्ञान) से आरब्ध, तत्संकल्पपूर्वक इच्छा (प्रिय, काम्यजन की प्राप्ति की इच्छा) से उत्पन्न प्रिय समागम के उपाय को अभिलाष कहते हैं।[1] यह काम की प्रथम दशा है। अभिलाष की दशा में नायिका कभी बाहर जाती है, कभी बैठती है, मदनोन्मत्ता, काम पीड़िता-सा आकार बनाती है, दर्शनपथ पर (ऐसे स्थान पर जहाँ से प्रिय दिखाई पड़े) स्थित होती है।

2. **चिन्ताः**—किस प्रकार से प्रिय की प्राप्ति हो, कैसे वह प्रिय मेरा हो जाय, इस प्रकार का निवेदन दूती से करके वह चिन्ता का निदर्शन करती है।[2]

---

१. व्यवसायात्समारब्धः संकल्पेच्छासमुद्भवः।
समागमोपायकृतः सोऽभिलाषः प्रकीर्तितः॥ ना० शा० १२-१७३

२. निर्याति च मुहुः करोति चाकारमेव मदनस्य।
तिष्ठति च दर्शनपथे प्रथमस्थाने स्थिता कामे॥ वही १७४
केनोपायेन संप्राप्तिः कथं वासो भवेन्मम।
दूतीनिवेदितैर्भावैरिति चिन्ता निदर्शयेत्॥ वही १७५

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

चिन्ता की दशा में अर्द्धनिमीलित दृष्टिपात, कंकण, करधनी का स्पर्श करना वा पकड़ना, कटीवस्त्रबन्ध (कमर पर साड़ी या लहंगादि का बंधन) नाभि आदि का संस्पर्श लक्षित होता है। यह काम की दूसरी दशा है।

3. अनुस्मृतिः—अनुस्मृति का अर्थ है अन्य विषय का त्याग करके केवल एक का स्मरण करना। बारम्बार निःश्वास (लम्बी साँस) लेना, मनोरथ (मनसः रथ इव; मन एव रथोऽत्रेति वा इच्छा) का चिन्तन, अन्य कार्यों से घृणादि अनुस्मृति के लक्षण हैं।[1]

अनुस्मृति की दशा में अपने कार्यों के करने में अशक्ता (विहस्ता), (वह नायिका) प्रिय की चिन्ता में ग्रस्त रहने के कारण न तो आसन पर न शैय्या पर धैर्य वा तुष्टि प्राप्त करती है। यह तीसरी कामदशा कही जाती है।[2]

4. गुण कीर्तनः—अङ्ग-प्रत्यङ्ग (शरीर के बड़े-छोटे अंग) की शृंगार-चेष्टाओं (विलास, क्रीड़ा) से, वाक्यों, क्रियाओं, हास, दृष्टि आदि से यह प्रदर्शित करना कि उस (प्रिय) के समान कोई नहीं है—गुण कीर्तन है। इस दशा में उंल्लकसन (रोमांच), अश्रु, स्वेदापमार्जन (स्वेद के अपमार्जन-खण्ड=स्वेदबिन्दु), दूती का कर्म (दूत्य), विरह और विश्वास, अनुराग के भाव प्रकट होते हैं।[3]

5. उद्वेगः[4]—उद्वेगस्थानाश्रिता (उद्वेग की अवस्था में) नायिका न आसन न तो शयन (शैया) से तुष्ट होती है, न उस पर स्थित रहती है, और

---

१. आकेकरार्धविप्रेक्षितानि वलयरशनापरामर्शः।
नीवीनाभ्यां संस्पर्शनं च कार्यं द्वितीये तु॥ वही १७६
मुहुर्मुहुर्निःश्वासितैर्मनोरथविचिन्तनैः।
प्रद्वेषाच्चान्यकार्याणामनुस्मृतिरुदाहृता॥ वही १७७

२. नैवासने न शयने धृतिमुपलभते स्वकर्मणि विहस्ता।
तच्चिन्तोपगतत्वात् तृतीयमेव प्रयुञ्जीत॥ (१७८ ना० शा०)

३. अङ्गप्रत्यङ्गलीलाभिर्वाक्चेष्टाहसितेक्षितैः।
नास्त्यन्यः सदृशस्तेनेत्येतत् स्याद् गुणकीर्तनम्॥ १७९॥
गुणकीर्तनोल्लकसनैरश्रुस्वेदापमार्जनैश्चापि।
दूत्यविरहविस्रम्भैरभिनययोगश्चतुर्थे तु॥ १८०॥

४ आसने शयने चापि न तुष्यति न तिष्ठति।
नित्यमेवोत्सुका च स्यादुद्वेगस्थानमाश्रिता॥ १८१॥
चिन्ता निःश्वासखेदेन हृद्दाहाभिनयेन च।
[illegible]भिनयेन च॥ १८२॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सर्वदा उत्सुक बनी रहती है। चिन्ता, निःश्वास, खेद, हृदय में ताप आदि से उद्वेग का अभिनय होता है।

६. विलापः—'यहाँ स्थित थी, यहाँ बैठी थी, यहाँ आई-गई थी', इस प्रकार के विलपन (भाषण) विलाप के लक्षण हैं। अत्यधिक औत्सुक्य, अस्थैर्य, इधर-उधर भ्रमण करना आदि इस दशा के द्योतक भाव-व्यापारादि हैं।[1]

७. उन्मादः—प्रिय से सम्बन्धित कथा हर समय गुरुजन के समीप भी कहना, अन्य पुरुषों से द्वेष करना, उन्माद कहा जाता है। अपलक दृष्टि, दीर्घ निःश्वास, ध्यानमग्न होना, क्रीड़ा के अवसर पर रोना, उन्माददशा के नाट्य हैं।[2]

८. व्याधिः—साम, दान, अर्थ (इन्द्रिय विषय—शब्द स्पर्श, रूप रस, गन्धादि) के उपभोग, प्रियसंयोगसम्बन्धी उद्देश्य से संप्रेषण (दूत, पत्रादि भेजने का कर्म) आदि सब कुछ के विफल हो जाने पर व्याधि उत्पन्न होती है। हृदय का मोहित होना, शिर में तीव्र वेदना होना, धैर्य धारण न करना व्याधि नामक आठवीं-दशा के लक्षण हैं।[3]

९. जड़ताः—जड़ता में नायिका पूछने पर कुछ नहीं बोलती, न सुनती, न देखती, 'हा कष्ट' इस वाक्य के अतिरिक्त और कुछ न कह कर चुप रहती है एवं उसकी स्मृति लुप्त हो जाती है। अचानक (अकाण्डे) हुंकारना, अत्यन्त शिथिल अङ्गों वाली (प्रशिथिलांगिका) होना, श्वासोच्छ्वासों से पीड़ित मुख वाली, अथवा श्वास-प्रश्वास के कारण अर्धोच्चरित शब्दों वाली होना ये जड़ता के अभिनय हैं।[4]

---

१. इह स्थित इहासीन इह चोपगतो मया।
इति तैस्तैर्विलपितैर्विलापं सम्प्रयोजयेत् ॥ १८३ ॥
उद्विग्नात्यर्थमौत्सुक्यादधृत्या च विलापिनी।
ततस्ततश्च भ्रमति विलापस्थानमाश्रिता ॥ १८४ ॥

२. तत्संश्रितां कथां युङ्क्ते सर्वावस्थागतापि हि।
पुंसः प्रद्वेष्टि चाप्यन्यानुन्मादः संप्रकीर्त्तितः ॥ १८५ ॥
तिष्ठत्यनिमिषदृष्टिर्दीर्घं निःश्वसिति गच्छतिध्यानम्।
रोदिति विहारकाले नाट्यमिदं स्यात्तथोन्मादे ॥१८६॥

३. सामदानार्थसंभोगैः काम्यैः संप्रेषणैरपि।
सर्वैर्निराकृतैः पश्चाद् व्याधिः समुपजायते ॥ १८७ ॥
मुह्यति हृदयं क्वापि प्रयाति शिरसश्च वेदना तीव्रा।
न धृतिं चाप्युपलभते ह्यष्टममेवं प्रयुञ्जीत ॥ १८८ ॥

४. पृष्टा न किंचित् प्रब्रूते न शृणोति न पश्यति।
हाकष्टवाक्या तूष्णीका जड़तायां गतस्मृतिः ॥ ना० शा० २१.१८९

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

10 मरणः—(समागम) के सब उपाय किये जाने पर भी यदि समागम न हो (तो) काम के प्रदीप्त होने पर मरण होता है।[1]

वासक के भाव-अभाव की दृष्टि से नायिकाओं के भेदः—

उक्त कामदशाओं का वर्णन करने के उपरान्त भरत ने वासक (निवास-स्थान, शयनागार) के भाव-अभाव की दृष्टि से पुनरपि नायिकाओं के आठ भेद गिनाये हैं। शयनागारस्थ सम्भोग (रति अथवा दर्शन-संलापादि सुख) के आधार पर उक्त भेद करके भरत ने वासस्थ रति-क्रीड़ा को प्रधानता दी है। प्रच्छन्नकामित (कामुक) नायकों, विशेषतः राजाओं के वासोपचार (नायिका के शयनागार का उपयोग) के सम्बन्ध में व्यवस्था देते हुए वे कहते हैं— 'अन्तःपुरजनों के साथ दिन में राजाओं का सम्भोग (दर्शनालापादि) इच्छित (विहित) है एवं रात्रि में संभोगार्थ शयनागार का उपयोग विहित है।[2] सम्भोग का अर्थ 'अभिनवभारती' के अनुसार 'परस्परावलोकनप्रणयकलह—संगीतकादि' है एवं 'अन्तःपुरजन, का "ऊढ़ा, पुनर्भूः, अवरुद्ध गणिका, कन्यका, प्रेष्या' (दूती) है। प्रथम अर्थात् राजाओं का अन्तःपुरजनों के साथ दिवा-सम्भोग स्पष्ट कामित का उदाहरण है एवं वासोपचार अर्थात् रात्रि में शयनागार का सम्भोगार्थ उपयोग प्रच्छन्न कामित का। यहाँ 'राजा' शब्द से सामान्य लोक का भी अर्थ ग्रहणीय है। भरत ने कहा है 'राजा जो-जो करता है वही प्रजा भी (यान्यान् प्रकुरुते राजा तान्स्तान् लोकोनुवर्तते')। प्रथम (स्पष्ट कामित के दिवासम्भोग) का उदाहरण 'अभिनवभारती' से देखियेः—

'उसके चन्द्रमा के समान मुख को देखते-देखते दिन (व्यतीत होकर) रात्रि में परिणत हो गया। उसके साथ गोष्ठी (संलाप) में रात्रि भी कामोत्साह उसी (काम) के अङ्ग (साधन, उपाय) में व्यतीत हो गई। उसके मार्ग दत्तनेत्र प्रवृत्त होने से (उसका बाट देखते-देखते) मैं अत्यन्त उत्कण्ठित गया तथा मेरा प्रेमोत्सव इस प्रकार समाप्त हो गया'।[3]

अकाण्डे दत्तहुंकारा तथा प्रशिथिलांगिका।
श्वासप्रस्ताननना चैव जड़ताभिनये भवेत्॥ २२.१९०

१. सर्वैः कृतैः प्रतीकारैर्यदि नास्ति समागमः।
कामाग्निना प्रदीप्तायां जायते मरणं ततः॥ २२.१९१

२. राज्ञामन्तःपुरजने दिवा सम्भोग इष्यते।
वासोपचारो यश्चैषां स रात्रौ परिकीर्तितः॥ २२.२०८

३. तद्वक्त्रेन्दुविलोकनेन दिवसो नीतः प्रदोषस्तथा
तद्गोष्ठ्यैव निशापि मन्मथकृतोत्साहैस्तदंगार्पणैः।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

वासक (वास, प्रच्छन्न कामित द्वारा संभोगार्थं रात्रिकालीन निवास) के भरत ने छः प्रकार बताये हैं :—परिपाटी (आनुपूर्वी, क्रमानुसरण, क्रम-पालन) पालनार्थ फलार्थं (संतानोत्पत्ति के लिए संतान-प्राप्त्यर्थं), नवत्व (नव-वधू का संभोग) की दशा में प्रसवानन्तर (प्रसव के तुरन्त पश्चात्), दुःख-निवारणार्थं तथा प्रमोद (आनन्द) की वृद्धि के लिये। ऋतु (गर्भधारणोपयुक्त) काल का वासोपचार फलार्थं वासक है।[१]

नवप्रसव के कारण, गर्भकालीन चिरविरह से खिन्ना नायिका को सुखी करने के लिए किया गया वासोपचार प्रसव-वासक है। बन्धुजन की व्यापत्ति (संकट, हानि, मृत्यु,) के अवसर पर स्त्री को आश्वासन देने के लिए किया गया वासक दुःखनिवारणार्थ वासक है एवं पुत्रोत्सव मनाने की बात कहकर प्रसूता का प्रमोद बढ़ाने के लिए किया गया वासोपयोग प्रमोद-वासक है। ऋतुकाल (गर्भधारण के अनुकूल) अवसर पर, संतानोत्पत्तिके लिए भरत ने प्रेष्या (दूती) तथा इष्टा (अभिलषिता, प्रिया) का उपसर्पण (संभोगार्थं समीप-गमन) कार्यं (विहित) माना है–'प्रेष्याणामथवेष्टानां कार्यं चैवोपसर्पणम्'। अभिनव ने भारती में एक पाठान्तर दिया है जिसके अनुसार परिचर्या, द्वेष्या (जिससे द्वेष हो) एवं दुर्भगा (कर्कशा, जो पति को प्रिय न हो) स्त्री को भी फलार्थं (संतानप्राप्ति के लिए) सेवनीय माना है—'प्रेष्याणामपि सर्वासां कार्यं चैवोपसर्पणम्'—। सन्तान-प्राप्त्यर्थं द्वेष्या, दुर्भगादि का सेवन भी अपवादस्वरूप विहित मान लिया है—'फलार्थइत्यस्य हेतोः सर्वापवादकत्वं दर्शयितुं धर्मवृत्तिना राज्ञा परिचार्यो-द्वेष्या दुर्भगा अपि सेव्या……।'

वासकभावाभाव के आधार पर नायिकाओं के भेदः—वासक (शयनागार) सम्बन्धी सुख, सम्भोग का, एवं उसका अभाव वियोगश्रृंगार का द्योतक है। नायिकाओं का प्रस्तुत भेद उनकी संयोग अथवा वियोगजन्य दशा के आधार पर किया गया है। ये नायिकायें हैं—वासकसज्जा, विरहोत्कंठिता, स्वाधीनभर्तृका, कलहान्तरिता, खंडिता विप्रलब्धा, प्रोषितभर्तृका तथा अभिसारिका।

तां संप्रत्यपि मार्गदत्तनयनां द्रष्टुं प्रवृत्तस्य मे
वृद्धोत्कण्ठमिदं पुनः किमथवा प्रेमासमाप्तोत्सवः ॥
[तापस १-१६]

१. परिपाट्या फलार्थे वा नवे प्रसव एव वा।
दुःखे चैव प्रमोदे च षडेते वासकाः स्मृताः ॥
[ना० शा० २२.२०९]

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

वासकसज्ज़ा नायिका:—उचित (पूर्वोक्त परिपाट्यानुसारी वासक, फलार्थ वासक आदि) नयानुसार उपलब्ध शयनागारवास के अवसर पर रति-संभोग लालसा से प्रसन्नचित्त हो आत्मसज्जा, श्रृंगार करने वाली नायिका वासकसज्जा है[१]।

विरहोत्कंठिता नायिका:—अनेक कार्यों में अत्यन्त आसक्त (व्यस्त, संलग्न) रहने के कारण जिसका प्रिय शयनागार में नहीं आता वह प्रिय-समागम-विरहित-नायिका विरहोत्कंठिता कही जाती है।[२]

स्वाधीनभर्तृका नायिका:—अतिशय सम्भोग-रसमग्न नायक जिसके पार्श्व में स्थित है वह प्रचुर हर्ष एवं सौभाग्याभिमान करने वाली नायिका स्वाधीनभर्तृका कही जाती है।[३]

कलहान्तरिका नायिका:—ईर्ष्या एवं कलह (झगड़ा) के कारण जिस (नायिका) का निर्गत (घर के बाहर निकल गया हुआ) प्रिय नहीं आता (लौटता) वह अवज्ञा (तिरस्कार) से क्षुब्ध, कुपित नायिका कलहान्तरिता है।[४]

खण्डिता नायिका:—जिस नायिका के (उपर्युक्त परिपाट्यानुसरी आदि) उचित शयनकक्ष में व्यासङ्ग (अन्य नारी-विषय-रति, परस्त्री आसक्ति) के कारण उसका प्रिय नहीं आता, वह, प्रिय के न आने से दुःखिता नायिका खंडिता कही गई है।[५]

विप्रलब्धा नायिका:—जिसका प्रिय दूती भेज कर एवं संकेत दे कर भी कारणवश नहीं आता वह विप्रलब्धा है।[६]

---

१. उचिते वासके—या तु रतिसम्भोगलालसा।
मंडनं कुरुते हृष्टा सा वै वासकसज्जिका ॥ [ना० शा० २२-२१३]

२. अनेककार्यव्यासंगाद्यस्या नागच्छति प्रियः।
तदनागतदुःखार्ता विरहोत्कंठिता तु सा ॥ [२२.२१४]

३. सुरता तु रसैर्बद्धो यस्याः पार्श्वे तु नायकः। (ना० शा० २२. २१५
सान्द्रामोदगुणप्राप्ता भवेत्स्वाधीनभर्तृका ॥

४. ईर्ष्याकलहनिष्क्रान्तो यस्या नागच्छति प्रियः।
सामर्षवशसंप्राप्ता कलहान्तरिता भवेत् ॥ २२ २१६ ॥

५. व्यासंगादुचिते यस्या वासके नागतः प्रियः।
तदनागमदुःखार्ता खंडिता सा प्रकीर्तिता ॥ २२. २१७ ॥

६. यस्या दूतीं प्रियः प्रेष्य दत्त्वा संकेतमेव वा।
नागतः कारणेनेह विप्रलब्धा तु सा भवेत ॥ २२.२१८ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रोषितभर्तृका नायिका:—नाना प्रकार के कार्यों की सिद्धि के लिए जिसका प्रिय परदेश गया हो, वह प्रलम्बीभूत अलकों एवं केशसमूह (कवरी= कशिरः वृणोति आच्छादयति केशवेशः, केशविन्यासः, केशगर्भकः) वाली प्रोषित-पतिका नायिका है।[1]

अभिसारिका नायिका:—लज्जा का त्याग कर, एवं मद (जाड्ये मदे मोदे, स्तुतौ, गतौ) तथा मदन (मदयतीति मदनः) से युक्त होकर जो कान्त (काम्यते इति कमनीयं, मनोरमः, पतिः) के समीप अभिसार (अभिसरः आभिमुख्येन सरति, तस्य व्यापारेण प्रियतमं अतिक्रामति, स्त्रीपुंसयोरन्यतरस्यान्यतरार्थं संकेतस्थल गमनं) करती है वह अभिसारिका नायिका है।[2]

उपर्युक्त (अभिलाष, चिन्तादि) दश कामदशाओं (कामस्थानों) एवं वासकसज्जा, विरहोत्कंठितादि आठ प्रकार की नायिकाओं का लक्षण विवरणादि देने के उपरान्त भरत ने नाटक में अभिनेय सामान्य कामस्थानों एवं नायिकाओं के (अभिनेय) भावों का भी उल्लेख किया है। तदनुसार कामुक स्त्रियों एवं पुरुषों द्वारा निम्नलिखित सामान्य गुण अभिनय में प्रयोज्य हैं :—चिन्ता, निःश्वास, खेद, हृद्दाह, अनुगमन अध्व (मार्ग)-निरीक्षण, आकाशवीक्षण (आकाश की ओर देखना), दीनप्रभाषण, स्पर्शन्, मोटन (आक्षेप, भर्त्सन), सापाश्रय (साप=शाप, शपन, शपथ, वास+अपाश्रय =विरक्ति, आश्रयहीनता) अर्थात् शपथ-ग्रहण वा विरागादि।

इस प्रकार खण्डिता, विप्रलब्धा, कलहान्तरिता और प्रोषितकान्ता नायिकाओं के, अभिनय में प्रयोज्य, भाव हैं—चिन्ता, निःश्वास, खेद, हृद्दाह, सखियों के साथ संलाप, आत्मावस्थावलोकन, ग्लानि, दैन्य, अश्रुपात, रोषागमन (क्रोध का आना), निर्भूषणभुजात्व (भुजाओं में आभूषण न धारण करना), दुःख, रोदन। वासकसज्जा, अभिसारिका एवं स्वाधीनपतिका के प्रयोज्य भाव हैं—विचित्रोज्ज्वल वेश-धारण, प्रमोद से उद्योतित मुखश्री, उदीर्ण (अत्यधिक) शोभा।

वेश्या, कुलजाया एवं प्रेष्या नायिकाओं के अभिसारण के स्वरूप:—वेश्याङ्गना अभिसारिका मद (मदगर्वे, मदहर्षे) मृदु चेष्टाओं

---

१. नानाकार्याणि संधाय यस्या वै प्रोषितः प्रियः।
सा रूढालककेशान्ता भवेत् प्रोषितभर्तृका ॥ (ना० शा० २२. २१९)

२. हित्वा लज्जा तु या श्लिष्टामदेन मदनेन च।
अभिसारयते कान्तं सा भवेदभिसारिका ॥ (ना० शा० २२.२२०)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(आंगिक अनुभावों) एवं परिजनों से युक्त विविध अलंकारों तथा चित्रित अङ्गों से सुशोभिता हो कर शनैः-शनैः अभिसार करती है ।

कुलजांगना अपने ही शरीर में विलीन (सी) होती हुई, त्रस्ता, विनमितानना (मुख झुकाये हुए) एवं अवगुंठन (आच्छादन, वस्त्र) से आच्छादित हो कर अभिसरण करती है ।

प्रेष्या नायिका मंदमत्त 'अत्यन्त गर्व वा हर्ष से युक्त होने के कारण दूती, सखी आदि से स्खलित (भूल से कुछ का कुछ बोलना, अशुद्ध, असंवद्ध, त्रुटिपूर्ण) वचन बोलती (मदस्खलित संलापा) विभ्रम (मदरागहर्षजनित विपर्यास) जन्य नेत्रों की उत्फुल्लता से युक्त (विभ्रमोत्फुल्ललोचना), विषमगति से चलती हुई (आविद्धगतिसंचारा) अभिसार करती है ।

उक्त नायिकाओं द्वारा सुप्त प्रिय का प्रबोधन:—संकेतस्थल वा प्रिय के घर पहुँचने पर प्रिय को यदि सोता हुआ पाती है (पश्येत्सुप्तं प्रियं तदा) तो कुलजा अलंकारों (नूपुरादि) के शब्दों से (अलंकारेण) उसे जगाती है । वेश्या, प्रियप्रबोधनार्थ, शीतलता प्रदान करने वाले पदार्थों से, एवं वस्त्रों की वायु (वस्त्रव्यजनैः) से उसका प्रतिबोधन करती है ।

देव, दानव, गन्धर्वादि-शीला नायिकाओं का विवरण देते समय भरत ने कहा है कि उक्त नानाशीला नायिकायें सुख के मूल हैं (सुखस्य हि स्त्रियोमूलं)। धर्मार्थ तपश्चर्या की जाती है एवं सुखार्थ धर्म अपेक्षित होता है । सुख का मूल प्रमदा हैं अतः उनका सम्भोग इष्ट है। नाट्यधर्मानुसार कामोपभोग द्विविध है—बाह्य और आभ्यन्तर । स्त्रियों की प्रकृति भी तीन प्रकार की होती है—बाह्यपरा, आभ्यन्तरपरा एवं बाह्याभ्यन्तरपरा । अभिनवभारती में स्पष्ट व्यवस्था दी गई है—"राज्ञामभ्यन्तर एव नाटके भोग·········न हि राजोपचारे तु बाह्यस्त्री भोगः···अर्थात् नाटक में राजाओं के लिए आभ्यन्तर भोग ही विहित माना है······राजाओं के व्यवहार में बाह्य स्त्रीभोग निषिद्ध है । भरत ने (२२.१५५ ना०शा) कहा है कि राजाओं को आभ्यन्तर एवं बाह्यजन को बाह्य-भोग विधेय है । आभ्यन्तर भोग केवल उपर्युक्त नायिकाओं का ही विधेय है । किन्तु अपवादतः बाह्यस्त्रीभोग भी विहित है यदि नायिका दिव्यवेशाङ्गना हो—'दिव्यवेशाङ्गनानां हि राज्ञो भवति संगमः' । बाइसवें अध्याय में उक्त आभ्यन्तर भोग का विवरण दिया गया है । तेइसवें में बाह्य भोग-भोगी वैशिक नायक का वर्णन है ।

नायक के भरतकृत दो भेद हैं—आभ्यन्तरभोगपरायण, बाह्यभोग परायण—शास्त्रानुसार नायक के त्रिविधभेद है—पति, उपपति और वैशिक । भानुदत्त की 'रसमंजरी' के अनुसार विधिवत् पाणिग्रहण करने वाला नायक पति

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

है (विधिवत्पाणिग्राहकः पतिः); स्त्री के आचार (धर्मानुष्ठान) के नाश का कारण होने वाला उपपति कहा जाता है (आचारहानिहेतुः पतिरुपपतिः) एवं वेश्या के उपभोग में अत्यन्त रसिक नायक को वैशिक कहते हैं (बहुलवेश्योपभोगरसिको वैशिकः)। किन्तु भरत के नाट्यशास्त्र में नायकों का इस रूप में विभाजन नहीं मिलता। उन्होंने राजाओं के लिए केवल आभ्यन्तर एवं बाह्य-भोग का विधान किया है। स्पष्ट है कि भरत ने इस विधान के अनुसार केवल दो प्रकार के नायकों को दृष्टि में रक्खा है। आभ्यन्तर-भोगपरायण राजा पति की श्रेणी में एवं बाह्य-स्त्रीभोगरत राजा व्यभिचारी होने के कारण उपपति एवं वैशिक दोनों की सीमा में आ जाता है। भरत के नाट्यशास्त्र के अनुसार लोक-सामान्य, दिव्यपुरुष, राजा, ब्राह्मणादि विद्वानों के अतिरिक्त, इतर साधारण मानव नाटक में नायक का पद नहीं पा सकता। अटएव भरत ने, नाटकादि को दृष्टि में रखकर नायक राजा को ही माना है। किन्तु 'राजा' में प्रजा अर्थात् सामान्यलोक को भी अन्तर्भूत माना है। जो जो राजा करता है उसी का अनुसरण प्रजा या सामान्म लोक भी करता है।[१] इस वाक्य से उनका आशय सुव्यक्त है।

राजोपचारगत बाह्यभोगः—राजा के (काम वा संभोग सम्बन्धी व्यवहार को राजोपचार कहते हैं) आभ्यन्तर कामोपचार के कारण राजा प्रच्छन्न कामित कहा जाता है। प्रच्छन्न कामित के लिए ऊढा (विवाहिता), पुनर्भू (गणिका का विवाहिता नारी रूभ), अवरुद्ध गणिका, कन्यका, प्रेष्यादि भोग्य हैं एवं बाह्यभोग में वेश्यादि बाह्य-स्त्रियां ही। भरत के अनुसार वैशिक वह नायक है जो सब कलाओं में विशेषता प्राप्त कर लेता है। वेश्याओं के उपभोग में वह साधु (विशेषज्ञ, साधु-साधयति कर्मेति, चारुः,पटुः) होता है। वैशिक पुरुष सर्वकालोपेत, सर्वशिल्प, (कलादिक कर्म)·विचक्षण (विशेषेण चष्टे, धर्मादिमुपदिशतीति), स्त्री-चित्तग्रहणाभिज्ञ होता है। यह कामकला में विदग्ध वेश्याकामुक होत्ता है।

वैशिक के गुणः—शरीर से उत्पन्न आहार्य (भूषादि से रचित, कृत्रिम) एवं सहज (सह जायते इति सहजः) तैतीस गुण वैशिक नायक के होते हैं जो समासतः इस प्रकार है— वह शास्त्रवित्, शिल्पसम्पन्न (कलाओं का ज्ञाता) रूपवान्, प्रियदर्शन, विक्रान्त (शूर), घृतिमान् अर्थात इष्टि (इष यज वा+क्तिन्,

---

१. सुखदुःखकृतान्भावान् नानाशीलसमुत्थितान् ।
यान्यान् प्रकुरुते राजा तान्स्तान् लोकोऽऽनुवर्तते ॥
(ना० शा० २२. २०३)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अभिलाषः, यागः) वा तुष्टिगुणों से युक्त, वय (यौवन), वेष (सुन्दर वेष-भूषा) एवं उच्चकुल मे सम्पन्न, सुरभि (सुन्दर, सुष्ठु), मधुरत्यागी, सहिष्णु, अविकत्थन (अनात्मश्लाघाकर), अशंकित, प्रियभाषी (प्रिय आभाषण, आलाप, कथन करने वाला), चतुर, शुभद (शुभ देने वाला), शुचि (शुद्ध, शुद्धान्तः करण) कामोपचारकुशल (काम वा सम्भोग के व्यवहार में दक्ष), दक्षिण (सरल), देशकालवित्, अदीनवाक्य (दरिद्र, भययुक्त वचन न बोलने वाला) एवं मानी होता है।

वैशिक का वयस्यः—(सखा, समान आयुवाला) अनुयुक्त (जिज्ञासित, प्रश्नकृत), शुचि, दक्ष, दक्षिण (सरल), प्रतिपत्तिमान्) प्रगल्भ, प्रत्युत्पन्नपति, प्रतिभावान्, गौरवयुक्त) एवं चित्राभिधायी (वक्रोक्तिकुशल) होता है।

वैशिक की दूतीः—विज्ञानगुण सम्पन्ना, कथिनी (बृहत्कथादिलंभन कथनाकर्णन कुशला = बड़ी-बड़ी कथाओं को कहने तथा सुनाने में कुशल), लिंगिनी (चित्रकरी) होती है। प्रातिवेश्या (निकटावसथस्था, पड़ोसिनी) सखी, दासी, कुमारी, कारुशिल्पिनी (धोबिन, रंगरेजिन आदि) धात्री (घेट पाने, दधाति धरतीति स्तनदुग्धेभ्यः, माता उपमाता), पाषण्डिनी (व्रतिनी[1]), रंगोपजीविनी (रंजकस्त्री, चारणस्त्री—रंगेन रंजेन जीवतीति) आदि दूती का कार्य करती हैं। दूती प्रोत्साहन (नायक नायिका संमुखीकरण) में प्रवीण, मधुरकथा (मृदुभाषिणी), दक्षिणा (सरला)[2] कालज्ञा, लडहा (लडहः मनोज्ञः), संवृतमंत्रा (संवृतः आवृतः, मंत्रः मंत्रणा, रहसि कर्त्तव्यावधारणम्—योजना को गुप्त रखने वाली), होती है। नाना प्रकार के कारण दिखाकर नायक नायिका का उत्साहन, यथोक्त कथन (आज्ञानुसार कथन) अर्थात् संमुखीकरण, संदेशार्पण, काम्या (कामनायुक्त व्यक्ति, कमनीय, कामनायोग्य व्यक्ति) का भाव-परीक्षण, दूती के कार्य कहे गये हैं। उसे अजड़ (अप्रज्ञ, अपंडित—जड़ः करणीयं न शक्नोति कर्तुं, प्रत्युत्पन्नमतिसाध्यानि कृत्यानीत्याह) अरूपसंपन्न, नार्थवन्न (निःस्वार्थ), अनातुर (अपटु का बिपरीत पटु, कुशल) होना चाहिए। दूत वा दूती यदि रूपवान् अर्थवान् हो तो नायक-नायिकादि का कार्य न कर स्वार्थसिद्धि में प्रवृत्त हो जाती है। 'अभिनवभारती' में भाव स्पष्ट करते हुए लिखा है—रूप वा अर्थ से युक्त होने पर दूती स्वार्थता का

---

१. यो त्रयीधर्मंषण्डयतीति, पाषण्डिनो विकर्म्मस्थान् वैडालव्रतिकान् शठान्। हैतुकान् वकवृत्तींश्च वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत्। (मनु)

२. या गौरवं भयं प्रेम सद्भावं पूर्वनायके।
न मुंचत्यन्यसक्तेऽपि सा ज्ञेया दक्षिणा बुधैः॥ [विष्णुपुराण टीकायां]

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

आहरण, ग्रहण करती है, स्वार्थ में प्रवृत्त हो जाती है। आतुर (अधीर, अपटु) होने से दूती घृणा उत्पन्न कर देती है, रति से निरपेक्ष हो जाती है, अतएव कामदौत्य नहीं कर पाती[१]। ऊपर कहा गया है कि नाना कारण दिखाते हुए नायकादि का प्रोत्साहन भी दूती का कर्त्तव्य है। इन कारणों को बताते हुए भरत कहते हैं कि नायक के भोग (सुख, वैभव, स्त्री की भृति, भरण, वेतन—भुज्यते असौ इति) धनाधिक्य का अधिक विकत्थन (मिथ्याश्लाघा) कर के काम (संभोगेच्छा, इच्छा,) और अर्थ (प्रयोजन) का अनुवर्णन (बारम्बार वा उचित वर्णन) करना चाहिए। दूती के इस प्रकार निवेदन करने के उपरान्त नायक को अपने घर रात्रिचार-प्रधान-उत्सव (ऐसा उत्सव जो रात्रि में मनाया जाय) में, उद्यान में, मित्र, धात्री, वा सखी के गृह में, निमंत्रण में अथवा रुग्ण होने के व्यपदेश (छल, बहाना) से (व्याधित व्यपदेशेन) किसी शून्य आगार में, विधिपूर्वक प्रथम-सङ्गम करना चाहिए। यहाँ प्रथम सङ्गम का भाव गन्धर्व विवाह, अथवा, वेश्या पुनर्भू के संगम से है। ये स्त्रियां दो प्रकार की होती हैं—अनुरक्ता तथा विरक्ता।

अनुरक्ता—स्वभाव से जो नारी सुरत के समय भावातिरेक पूर्वक काम (सम्भोग) में संलग्न होती है, तथा गुप्त वा विनीत लीला करती है वह मदनातुरा अनुरक्ता कही जाती है। यह सखियों के मध्य में प्रिय का गुण-कथन करती है, अपना धनदान करती है, प्रिय के मित्रों का आदर करती है, एवं उसके शत्रुओं से द्वेष। वह स्त्री सखियों के गमागम (आने जाने) से प्रसन्न होती, प्रिय की कथाओं से तुष्ट होकर सस्नेह निरीक्षण करती, प्रिय के सो जाने पर सोती, प्रिय द्वारा चुम्बित होने पर प्रति चुम्बन लेती, प्रिय के उठने के पूर्व उठ जाती, एवं, क्लेश-सहनशीला होती, उत्सव में मुदित तथा व्यसन (विपत्ति) में दुःखिता होती है।

विरक्ता—विरक्ता नायिका चुम्बन लेने पर अभिचुम्बन (साभिलाष चुम्बनं) नहीं करती, अनिष्ट (पूर्वकृत अवाँछित) कथा-चर्या करती, प्रिय बातें कहने पर भी कोप करती है, प्रिय के मित्रों से द्वेष करती, उसके वैरियों की सेवा करती, पराङ्मुखी (पराक् प्रतिलोमगानि मुखं यस्य—प्रतिगतं लोभ आनुकूल्यं यस्मादितिविमुख, पराचीन) हो कर शयन करती (पति से पहले शय्या पर शयन करती), महान् उपकार करने पर भी तुष्ट न होती, क्लेशसहन नहीं करती तथा अकारण कुपित होती है।

---

१. रूपेण अर्थेण वा युक्तः स्वार्थतामाहरेत। आतुरो हिदृश्यमान एव जुगुप्सां जनयति, स च रतेर्निरपेक्ष इत्यातुरो न कामदूतः।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उक्त स्त्रियों की त्रिविधा प्रकृति—सब स्त्रियों की प्रकृति त्रिविध होती है, उत्तमा, मध्यमा, नीचा। प्रिय के अपराधी होने पर भी जो प्रिय से बोलती है, अप्रिय नहीं, जो दीर्घरोषा नहीं होती, सब कलाओं में विचक्षण (निपुण) होती, शील, शोभा, कुलाधिक्य (कुल की श्रेष्ठता) के कारण पुरुषों के द्वारा इच्छित हो, काम-तन्त्र (सिद्धान्त, नियम) में कुशल, दक्षिणा (अनुकूला) रूपशालिनी होती है, कारण-वशरोष-ग्रहण करती (रुष्ट होती,) ईर्ष्या के विगत होने पर बोलती, कार्य-काल- विशेषज्ञ एवं सुरूपा नायिका उत्तमा कही जाती है।

जो पुरुषों द्वारा काम्य (अभिलषित) हो अथवा वह स्वयं उन (पुरुषों) की कामना (अभिलाषा) करती हो, कामोपचार (काम-व्यवहार) में प्रवीण हो, विरोधी जनों से क्रोध, द्वेष करती हो, अनिभृत (व्यक्त) रूप से ईर्ष्यातुरा, क्षीण (अल्प)-क्रोधा, अतिगर्विता, क्षणमात्र में प्रसन्न हो जाने वाली (क्षणप्रसादा) हो वह मध्यमा कही जाती हैं।

अनवसर कुपित होने वाली (अस्थान-कोपना), सदोष आचरण (चरित्र, स्वभाव) वाली (दुष्टशीला) अतिमानिनी, चपला, परुषा, दीर्घरोषा स्त्री अधमा है।

यौवन के चार भेद—वेश,भूषा, रूप, चेष्टाओं और गुणों से शृङ्गारिणी समस्त नारियों के चार प्रमुख यौवन-भेद हैं।

प्रथम यौवन—इसमें नायिका ऊरू (ऊर्णूयते आच्छाद्यते इति, जानूपरिभागः, जानु का ऊपरी भाग, जंघा), गण्ड (गडि आस्यैकदेशे, कपोलः), जघन (स्त्रीकट्याः पुरोभागः), अधर, स्तनपीन (स्थूल), कर्कश (कठोर) एवं मनोज्ञ होते हैं एवं शृंगार (संयोग-स्पृहा, रति क्रीड़ादि) के प्रति समुत्साह प्रदर्शित होता है।

द्वितीय यौवन—इसमें नायिकादि का गात्र (गच्छति मरणात्परं स्वकारणभूतपंचत्वं प्राप्नोति यद्वा गम्यते स्थानात् स्थानान्तरं प्राप्यते संचाल्येत) पूर्णावयव (पूर्ण अंगो वाला) होता है, पयोधरपीन, मध्यभागनत (झुका हुआ) एवं काम का सारभूत होता है।

तृतीय यौवन—इसमें रमणी सर्व श्रीसंयुक्त, रति के कारणों (साधनों का उत्पादक–क्रियते अनेन), रति के गुणों से जाड्य (आढ़ौकते ढौकृ गतौ वाहुलकात् ढ्यः युक्त, अन्वित, विशिष्ट) एवं उसकी शोभा काम का संतुष्ट करने वाली होती है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

चातुर्थ यौवन—नवयौवन (प्रथम यौवन), द्वितीय तथा तृतीय यौवन के व्यतीत हो जाने पर अवशिष्ट शृंगार शत्रुभूत यौवन है। इस यौवन काल में गण्ड, जघन, अधर, स्तन का लावण्य किंचित ऊन (कम) हो जाता, तथा काम के प्रति उच्छ्वास (प्रोत्साहन) नहीं रह जाता।

रमणियों के उक्त यौवन कालीन आचार—प्रथम यौवन काल में नवयौवना नारी न बहुत (अत्यर्थ) क्लेश-सहा होती है दशनादि का क्लेश नहीं सहन करती, न स्त्रियों से कोप करती, न हर्ष प्रकट करती है। सुखद गुणों बातों, विशेषताओं में अवसक्त (संलग्न) रहती है।

द्वितीययौवन-भेदगता नारी कुछ क्रोध करती और कुछ मत्सर (द्वेष)। यह स्त्री क्रोध में चुप हो जाती है।

तृतीय-यौवन भेदस्था रमणी—यह नारी संभोग में निपुण, प्रतिपक्षियों से क्रोध करने वाली, रति के गुणों से युक्त, व्यक्त रूप से गर्वयुक्त चेष्टायें करने वाली होती है।

चतुर्थ भेदान्तर्भूता नारी प्रिय के चित्तग्रहण में समर्थ, कामाभिज्ञ, मात्सर्य-हीन, एवं पुरुषों से वियुक्त न होने की इच्छा वाली होती है।

स्त्री सम्प्रयोग से (मैथुन) विषयक पुरुषों के पाँच भेद

स्त्री-सम्भोग से सम्बद्ध पुरुषों के पांच भेद हैं—चतुर, उत्तम, मध्य, अधम तथा प्रवृत्तक।

चतुर—पुरुष समदुःख (कृपालु, कारुणिक) क्लेशसह, प्रणय-क्रुद्धा स्त्री के प्रसादन (प्रसन्नीकरण) में प्रवीण होता है। वह अर्थी (इच्छा रखने वाला) अपने को गुप्त न रखने वाला और दक्ष होता है।

उत्तम मनुष्य—उत्तम पुरुष वह है जो नारी की विरक्ति का ज्ञान प्राप्त कर कभी उसका अप्रिय नहीं करता। इस पुरुष की ईप्सितहृदयता (वा हृद्गत अभिलाष) अज्ञात होती हैं। वह स्मृतिमान एवं धृतिमान् (धैर्यवान्, संतुष्ट), ज्येष्ठ (श्रेष्ठ), मधुर (प्रियदर्शन, सौम्य), त्यागी, राग (द्वेष, ईर्ष्या) को नहीं प्राप्त होता (ईर्ष्या नहीं करता), कामदेव के वश में होता है। वह अपमानित होने पर भार्या से विरक्त हो जाता है।

मध्यभेदस्थ पुरुष—नारी के सर्वार्थों (आशयों, प्रयोजनों) से मथ कर निकाले गये (सर्वार्थैः मध्यस्थो) भावों का (गूढ़ आशय भावों का) जो ग्रहण करता है, तथा थोड़ा सा दोष देखकर भी जो (उक्त नारी से) विरक्त हो जाता है वह मध्यम भेद का पुरुष है। समयानुकूल यह पुरुष अपमानित

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

होने पर भी अत्यन्त क्रोध नहीं करता, व्यलीक (छल, अपराध, वैपरीत्य) मात्र को देखकर यह मध्यम पुरुष विरक्त हो जाता है।

अधम पुरुष—नारी से तिरस्कृत होने पर भी (अधम-पुरुष) अविकृतास्य (मुख की मुद्रा को बिना विकृत बनाये ही) नारी के समीप निर्लज्जतापूर्वक सानुकूलभाव से जाता है। (दूसरी स्त्री के) प्रेम से परावृत्त-भाव (अन्यदीयस्नेह के कारण पुनः अभिमुख होकर, पुनरपि अनुकूल होकर) होकर वह पराई स्त्री के समीप गमन करता है। अभिनवकृत व्यलीक (सद्यः, अभी अभी किये गये अपराध) की दशा में भी जो प्रत्यक्षतः दृढ़तर अनुराग दिखाता है, किन्तु मित्रों के द्वारा निवार्यमाण (वर्ज्य, अपवार्य) होता है वह अधम पुरुष कहा जाता है।

प्रवृत्तक पुरुष—जो भय तथा अमर्ष की गणना (चिन्ता) नहीं करता मूर्ख प्रकृति (स्वभाव) का, प्रसक्तहास (अवसर अनवसर हास में प्रवृत्त होता), एकान्त (एकनायिकानिष्ठ, केवल एक नायिका से प्रेम रखने वाला) दृढ़ग्राही, कामसम्बन्धिनी नीतियों को दृढ़तापूर्वक ग्रहण करने वाला एवं निर्ल्लज्जतापूर्वक उनका पालन करने वाला, रतिकालीन कलह में भली भांति पिटने, मार खाने पर (संप्रहारित) भी अकर्कश (अकठोर, विनत), स्त्रियों के हाथ का क्रीड़नीयक (खिलौना) बन कर रहने वाला होता है वह संप्रवृत्त (प्रवृत्तक) पुरुष कहा जाता है।

इसके उपरान्त भरत ने वैशिकाश्रय (वेश्यागामी पुरुषों के आश्रय में रहने वाली) स्त्रियों एवं वेश्याओं से सम्बद्ध उपचारों (व्यवहारों, वर्तावों) का वर्णन किया है। यहां उन्होंने बताया है कि सुशीला एवं दुःशीला स्त्रियों को ध्यान में रखकर, उनके शील, आचरण, स्वभावादि के अनुसार साम, दान, दण्ड, भेदादिनीतियों से काम लेना चाहिए। आवश्यक होने पर उपेक्षा भी करना उचित है।

साम—'मै तुम्हारा हूँ', 'तुम मेरी हो', 'मै तुम्हारा दास हूँ', 'तुम मेरी प्रिया हो' इस प्रकार से आत्मोपक्षेपण (निजभावप्रदर्शन) को साम कहते हैं।

दान—समय समय पर शक्ति के अनुसार (विभवमात्रया) नियम-निरपेक्ष निमित्तान्तरकृत (निमित्तविशेषकृत) अर्थात् प्रमोदव्यसनादि के निबन्धन से धन का दान देना दान कहा जाता है।

भेद—स्त्री के अन्य प्रेमी (उपपति आदि) के दोषों को इस प्रकार देखना चाहिए जिस प्रकार सत्यत्व से प्रतीत हो। इसी सोपाय दर्शन (उपाय पूर्वक दोष-दर्शन) को भेद कहते हैं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

दण्ड—बन्धन और ताड़न को दण्ड कहते हैं।

मध्यस्था (किंचित स्नेह रखने वाली) स्त्री को साम से, लब्धा को प्रदान से, अन्यावबद्धभावा (परपुरुष में अनुरक्त) को भेद से तथा दुष्टाचार करने वाली (देश से पलायन, पुरुषान्तरगृह-वास इत्यादि करने वाली), स्त्री को आत्मानुकूल बनाने के लिए स्त्री का मृदुताड़न, बन्धन आदि दण्ड कहा जाता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

चतुर्थ अध्याय

धनंजय के दशरूपक में शृंगार

शृंगार रस एवं कामोपचार की दृष्टि से भरत ने नाट्यशास्त्र में नायक-नायिकादि के भेदोपभेद एवं विभिन्न कामदशाओं के उपर्युक्त विवरण दिये हैं। आगे दसवीं शती में धनंजय ने भरत के नाट्य-शास्त्र के आधार पर उसी (नाट्य-शास्त्र) के सिद्धान्तों का संक्षेप अपने 'दशरूपकम्' नामक नाट्य ग्रन्थ में दिया है। प्रथम-प्रकाश की चतुर्थ कारिका में धनंजय ने, आपाततः प्रतीत होनेवाले, अपने पिष्ट-पेषण का कारण बताते हुए लिखा है—"समस्त वेदों का सार ग्रहण कर विरंचि ने जिस नाट्यवेद की रचना की, जिसका प्रयोग अभिनय द्वारा (करणांगहारादि से) भरत ने किया, जिसमें नीलकण्ठ शिव ने तांडव (ताण्डवेन मुनिना कृतं ताण्डिनृत्यशास्त्रं तदस्यास्तीति—पुं नृत्यं ताण्डवं प्राहुः—स्त्रीनृत्यं लास्यमुच्यते), सर्वाणी (शर्व्वस्य भार्या—शर्व्वहिंसे, शर्व्वः शृणाति सर्व्वाः प्रजाः संहरति प्रलये संहारयति वा भक्तानां पापानि, शिवः = पार्वती) ने लास्य (भावाश्रय, तालयाश्रयनृत्य) का समावेश किया, उस नाट्यवेद का सम्पूर्ण लक्षण कौन कर सकता है? किन्तु (उक्त) प्रकृष्ट गुणों से युक्त रचना (की सहायता) से लक्षणों का संक्षेप करता हूँ।[१]

दशरूपक में धनंजय ने दशरूपकों का पर्यालोचन एवं उनकी आनन्द-निस्यन्दिता (आनन्द-प्रस्रवणता) उससे प्राप्त रसरूप अलौकिक रसास्वादन के अनुभव का विवरण दिया है। सभी रूपकों में अनुकरण पाया जाता है। इनके भेद स्पष्ट करने वाले तीन तत्व उन्होंने माने हैं। वे हैं—वस्तु, नेता तथा रस (वस्तु, नेता रसस्तेषां भेदकः)। तदनुसार रसों का विवरण 'दश-रूपक' के अन्तिम प्रकाश में दिया गया है।

हम कह चुके हैं कि भरत ने मूलतः शृंगार, रौद्र, वीर, और वीभत्स—ये चार ही रस माने हैं। हास्य, करुण, अद्भुत और भयानक क्रमशः तत्तज्जन्य हैं। धनंजय तथा धनिक ने तज्जन्यतां से उक्त मूल (शृंगारादि) तथा तन्मूलज

---

१. उद्धृत्योद्धृत्य सारं यमखिलनिगमान्नाट्य वेदं विरिञ्चि-
श्चक्रेयस्य प्रयोगं मुनिरपि भरतस्ताण्डवं नीलकण्ठः।
शर्वाणीलास्यमस्य प्रतिपदमपरं लक्ष्म कः कर्तुमीष्टे
नाट्यानां किन्तु किञ्चित्प्रगुणरचनया लक्षणं संक्षिपामि॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(हास्यादि) रसों में कारण-कार्य सम्बन्ध न मानकर चित्तभूमि-सादृश्य-सम्बन्ध माना है। धनंजय कहते हैं, "काव्यार्थ (विभावादिक से युक्त स्थायीभाव) के संभेद (संपर्क, ज्ञान) से आत्मा में उत्पन्न होनेवाले आनन्द को स्वाद कहते हैं। यह स्वाद चार प्रकार का होता है—चित्त का विकास, चित्त का विस्तर, चित्त का क्षोभ एवं चित्त का विक्षेप (असंयम, अस्थिरता, व्यग्रता)। मन के ये विकार जो क्रमशः—शृंगार, वीर, वीभत्स एवं रौद्र रसों में परिलक्षित होते हैं उनके उत्कर्ष (प्राधान्य), उसी क्रम से शृंगार-जन्य हास्य, रौद्र-जन्य करुणरस, वीरजन्य अद्भुत, तथा वीभत्स रसजन्य भयानक रस में भी पाये जाते हैं। इसलिए उन हास्यादि रसों की उक्त शृंगारादि मूलरसों से तज्जन्यता निश्चित की गई है।[१]

धनिक ने वृत्ति में धनंजय की उक्त कारिका का आशय स्पष्ट कर दिया है। इनके अनुसार "काव्यार्थ से विभावादि संयुक्तस्थायी भाव (के गुण-धर्म) के सम्भेद (सम्पर्क) अर्थात् अन्योन्य संवलन (संगम) से स्वपर (अपना पराया) के विभाग (भेद) के प्रत्यस्तमित (अस्तंगत) होने पर जो प्रबलतर आनन्दोत्पत्ति होती है उसे स्वाद कहते हैं। इस स्वाद की सब रसों में सामान्यात्मकता (समान रूप से प्राप्त होने की योग्यता) के होने पर भी, उन रसों से भिन्न-भिन्न विभावादि कारणों के पाये जाने से उन (रसों) की चित्तभूमियाँ (उक्त विकास, विस्तर, क्षोभ नामक अवस्थायें) भी भिन्न-भिन्न चार प्रकार की होती हैं—जैसे शृंगार में विकास, वीर में विस्तार, वीभत्स में क्षोभ एवं रौद्र में विक्षेप। हास्य, अद्भुत, भयानक और करुण नामक अन्य चार रसों का भी, जो अपनी-अपनी भिन्न सामग्री (विभावानुभावादि) से परिपुष्ट होते हैं (पूर्णता को प्राप्त होते हैं) उन्हीं चार विकास-विस्तरादि चित्तभूतियों से मेल होता है। अतएव 'शृंगार से हास्य, रौद्र से करुण, वीर से अद्भुत एवं वीभत्स से भयानक की उत्पत्ति होती है।[२] (भरत के) इस वचन में (शृङ्गारादि मूलरसों के) हेतु होने तथा तत्तज्जन्य हास्यादि के हेतुमान् होने का आशय प्रकट होता है। इस हेतु और हेतुमद् भाव का यह आशय नहीं कि

---

१. स्वादः काव्यार्थसम्भेदादात्मानन्दसमुद्भवः।
विकारविस्तरक्षोभविक्षेपैः स चतुर्विधः ॥ दश० ४·४३ ॥
शृङ्गारवीरवीभत्सरौद्रेषु मनसः क्रमात्।
हास्याद्भुतभयोत्कर्षकरुणानां त एव हि ॥ ४-४४ ॥
अतस्तज्जन्यता तेषामत एवावधारणम्।

२. श्रृंगाराद्धि भवेद्धास्यो रौद्राच्च करुणो रसः।
वीराच्चैवाद्भुतोत्पत्तिर्बीभत्साच्च भयानकः॥

Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उक्त श्रृङ्गार एवं हास्य तथा रौद्र एवं करुणादि रस-युग्मों में कार्य-कारण सम्बन्ध है अपितु यह कि उनमें चित्त भूमियों की समानता है। उनसे कारण कार्यसम्बन्ध इसलिए संभव नहीं है कि उनमें विभाव भिन्न हैं, उनका हेतुहेतुमद्भाव कारणान्तरजन्य है। यहाँ 'कारण' का अर्थ 'विभाव' है।

धनंजय धनिक प्रतिपादित उक्त चित्त-भूमि-सिद्धान्त की स्थापना पर यदि हम विचार करें तो यह सिद्ध होता है कि शृंगार हास्य की 'विकास नामक चित्तभूमि अन्य रसों की चित्तभूमियों से अधिक सुष्ठु और उदात्त है। वि+काश-दीप्तौ + घञ=विकाशः = प्रकाशः। की यह अवस्था चित्त की दीप्ति की द्योतिका है। उधर श्रृङ्गार (शृंगं प्राधान्यं ऋच्छतीति—ऋ गतौ) भी रसराज है।

रसराज की यह विकस्वर (प्रकाशित) चित्तावस्था आत्मा की प्रसन्नता, तथा ज्योतिमत्ता का सूचक है। वीर तथा अद्भुत की चित्तावस्था विस्तार में चित्त (चेतत्यनेनेति, चित्+करणोक्तः) की चेतनता की व्यापकता बढ़ जाती है। चित् ज्ञाने संज्ञाने ज्ञानमिह जागरणम्, चित्त अपने कर्त्तव्यों के प्रति, शैथिल्य का त्याग कर जागरूक, सावधान हो जाता है। बीभत्स और भयानक की अवस्था (क्षोभ क्षुम्। भावेघञ् = क्षोभनम्) में चित्तचंचल हो जाता है। विक्षेप (वि+क्षिप+घञ) में प्रेरणा वा त्याग का भाव जागृत हो जाता है। रौद्र एवं करुण रस के अन्तर्गत चित्त की विक्षिप्ति पाई जाती है। इन दोनों भूमियों में चित्त अत्यन्त चंचल होकर क्षिप्रकारी हो जाताहै। उ०रा० के तीसरे अङ्क में शोक क्षोभ का एक उदाहरण देखिए—'तड़ागके जलराशि-संकुल हो जाने, जलभार के बढ़ जाने पर परिवाह (सेतुभेद) ही उसकी प्रतिक्रिया है। शोक क्षोभ (शोकाधीन चित्त-चांचल्य) की अवस्था में हृदय को प्रलाप (रोदनादि) ही धारण कर सकता (यथास्थिति स्थापित कर सकता) है।'[१]

उन सबको आहतांग कर देने वाले देवताओं के (दैवी) आयुधों से अक्षोभ्य (अचंचल, असंचाल्य) समुद्रों का भी क्षिप्रकारी (वेगयुक्त बनाने वाला क्षोभन (उद्वेलन) हो गया।[२]

उत्कृष्टतम् चित्तभूमिवाले रसराज श्रृङ्गार की परिभाषा धनंजय ने इस प्रकार दी है—'परस्पर अनुरक्त युवक-युवतियों के, रम्य देश, कला, काल, वेश,

१. पूरोत्पीड़े तटाकस्य परीवाहः प्रतिक्रिया।
शोकक्षोभे च हृदयं प्रलापैरेव धार्यते ॥ [उ० रा० ३. २९]

२. आहताङ्गैः समस्तैस्तं देव प्रहरणैस्तदा।
अक्षोभ्याणां समुद्राणां क्षोभनं क्षिप्रकारिणाम् ॥
[रामायण—३. ३६- १०]

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

भोगादि के, सेवन से उद्भूत आत्मा का प्रमोद ही रति नामक स्थायी भाव है। यह रति स्थायी भाव ही (उक्त नायिकादि) के अंगों की मधुर चेष्टाओं से परिपुष्ट (उत्तेजित हो कर शृङ्गार रस होता है।" इन देश कलादि विभावों से पुष्ट हो जाने पर रति नामक स्थायि भाव से शृङ्गार की चर्वणा होती है।

देश-विभाव से निष्पन्न शृङ्गार का उदाहरण देखिये—'हे सुतनु ! (शोभना तनूर्यस्याः सा सुतनुस्तत्सम्बुद्धौ) उस (प्रस्रवणाख्य) पर्वत पर लक्ष्मण द्वारा प्रतिविहिता (पुनः पुनः कृता) सपर्या (सपर पूजायाम्) से सुस्थ (स्वस्थ) हमारे और अपने उन सुखानुभूतिपूर्ण दिनों की याद करती हो ? उस स्थान पर स्वादु जलयुक्त गोदावरी नदी का स्मरण करती हो ? गोदावरी के उपान्तों (आगतो अन्तात्, निकट) में हमारे अपने वर्तन (वर्तते अनेन इति जीवन) को स्मरण करती हो।' यहाँ रति स्थायी भाव, राम आश्रय, सीता आलबन विभाव, प्रस्रवणपर्वत, सरसनीरा गोदावरी नदी एवं उसके उपान्तादि उद्दीपन विभाव, दुःखोद्गारपूर्ण वचन अनुभाव एवं स्मृति, विषादादि संचारी भाव हैं।

कला विभाव संपन्न शृंगार—मालविकाग्निमित्र से उद्धृत इस पद्य में मालविका की नृत्य-कला अग्निमित्र के हृदयस्थ रति भाव को उद्दीप्त कर उसे रसोन्मुख करती है—"हाथों के संचालन एवं उसमें निहित (छिपे हुए) वचनों से (मानों हाथों की गतियाँ ही वाणी हों) अर्थ की पूर्ण प्रतीति, व्यंजना हो जाती है। इसके चरणस्थापन की लयपूर्ण कला रस में तन्मय कर देती है। शाखायोनि (शाखा बाहु है योनि उत्पत्तिस्थान जिसका=अंगुलि) द्वारा, अभिनय की छःविधियों (वाचिक-वाणी का, आहार्य = वेष भूषा का, सात्विक=स्वभावज, हर्ष पुलकादि तथा आंगिक जो संख्या में तीन हैं—(१)शरीर, (२) मुखज, (३) चेष्टाकृत) का अनुसरण करती, प्रत्येक भाव के साथ हृदय में विषयों को प्रेरित कर रही है। यही राग-बन्ध वा प्रेम है।[2]

काल-विभाव-सम्पन्न शृंगार—कुमारसम्भव, तृतीय सर्ग में वसन्त के

---

१. स्मरसि सुतनु तस्मिन्पर्वते लक्ष्मणेन प्रतिविहितसपर्यासुस्थयोस्तान्यहानि।
स्मरसि सरसतीरां तत्र गोदावरीं वा स्मरसि च तदुपान्तेष्वावयोर्वर्तनानि ॥

[उ० रा० १.२६]

२. हस्तैरन्तर्निहितवचनैः सूचितः सम्यगर्थः
पादन्यासैर्लयमुपगतस्तन्मयत्वं रसेषु।
शाखायोनिर्मृदुरभिनयः षड्विकल्पोऽनुवृत्ते-
र्भावे भावे नुदति विषयान् रागबन्धः स एव ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

आविर्भाव से वृक्षों तथा पशुओं तकमें रतिभाव के संचार का वर्णन है:—'अशोक वृक्ष ने शाखाओं के स्कन्धों तक पल्लवसहित फूलों को उत्पन्न कर दिया। उसने नूपुर से झंकृत सुन्दरियों के चरणों की भी अपेक्षा न की' तथा—"द्विरेफ़ (द्वौ रेफौ रकारवर्णौ यस्य भ्रमरनाम्नि) अपनी प्रिया (भ्रमरी) का अनुसरण करता हुआ फूल के एक ही पात्र से मधु-पान करने लगा। स्पर्श-जन्य सुख के कारण आँखे बन्द किये हुई मृगी को काला मृग अपनी सींगों से खुजाने लगा"[1]यहाँ बसन्त ऋतु, बिभाव है जो शंकर के रति नामक स्थायी भाव का रसत्व पुष्ट कर रहा है।

वेष-विभाव से शृंगार-निष्पत्ति—यह उदाहरण "कुमारसम्भव' से लिया गया है। शिव को प्रसन्न करने के लिए पार्वती आयी हैं। विकसित पुष्पों आदि की वेषभूषा शंकर के रति-भाव को उद्दीप्त करती दिखाई देती है—

'पार्वती ने जो अशोक के फूलों की माला पहन रक्खी थी वह (लाल होने के कारण, अपनी लालिमा से) पद्मरागमणि का भी निन्दन कर रही थी (अशोक के फूलों की लालिमा पद्मराग की लालिमा से भी विशदतर थी)। उनके द्वारा धारण किये गये कर्णिकार (कर्णिभेदनं करोतीति, उदरमल-भेदकत्वात् अस्य तथात्वम्) नामक वृक्षविशेष के पुष्प अपनी स्वर्णिमा से हेम की द्युति (प्रकाश) को मोहित कर रही थी (अपनी श्रेष्ठता से तिरस्कृत कर रही थी)। सिन्दुवार (वा सिन्धुवार = सिन्धुं गजमदं वारयति तिक्तत्वात्, श्वेतपुष्प:) के पुष्पों के द्वारा पार्वती ने, मानो 'मुक्ताकलाप (मुक्तानां कलापो समूहोऽत्र = मुक्ताहार:) बना रक्खा था। इस प्रकार के वसन्ताभरण (पार्वती) ने धारण किया था"।[2]

उपभोग-विभाव से रस-व्यंजना—रुष्ट नायिका को नायक ने मना कर रत्यनुकूल बना लिया है। रति-क्रीड़ा के उपरान्त, प्रात:, सखी उसकी संभोग-जनित दशा का वर्णन कर रही है—

'हे तरुणि! (तरति प्लवते प्रमोदसलिले इति = युवती), तुम्हारी आँखों से मषीकण (मसि:=अंजन) लुप्त हो गया है, अधर (न ध्रियतेऽसौ) का

---

१. असूत सद्य: कुसुमान्यशोक: स्कन्धात्प्रभृत्येव सपल्लवानि।
पादेन नापेक्षत सुन्दरीणां सम्पर्कमाशिञ्जितनूपुरेण॥
मधु द्विरेफ: कुसुमैकपात्रे पपौ प्रियां स्वामनुवर्तमान:।
शृंगेण संस्पर्शनिमीलिताक्षीं मृगीमकंडूयत कृष्णसार:॥

२. अशोकनिर्भर्त्सितपद्मरागमाकृष्ट हेमद्युतिकर्णिकारम्।
मुक्ता कलापीकृत सिन्दुवारं वसन्तपुष्पा भरणं वहन्ति॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

ताम्बूल-राग (पान का रंग) कवलित (कवलितः कवलं करोति, कवल + णिच कर्मणि क्तः, भुक्तः, कवलः केन जलेन वलते चलतीति, वल + अच् = ग्रासः), नष्ट हो गया है। तुम्हारी कवरी (कं शिरः तृणोति आच्छादयति=केशविन्यासः) कपोल (कं सुखं पोलतीति, पुल महत्त्वे) खण्डो पर शान्त, श्रमयुक्त होकर पड़ी हैं, एवं शरीर के अंगों (गात्र=हस्तपादाद्यवयवसमुदयः) की द्युति (शोभा) नष्ट हो गई है। हे मानिनि ! ऐसा प्रतीत होता है कि इस समय तुम्हारे प्रियतम ने अनेक उपायों द्वारा तुम्हारी मनोभूमि पर बढ़े हुए मानरूपी बड़े वृक्ष को भग्न कर दिया।"[1]

प्रमोदात्मो रति का उदाहरण—ऊपर कहा गया कि देश-काल-कलादिक विभावों के द्वारा आत्मा का प्रमुदित होना ही रति नामक स्थायी भाव है, जो (रति) मधुर अंग की चेष्टाओं (अनुभावों) से पुष्ट होकर श्रृंगार रस होता है। 'मालतीमाधव' के इस उदाहरण में मालती को देखने पर माधव के हृदय में उद्भूत प्रमोद का वर्णन किया है—'जगत् (गच्छतीति) पर विजय पाने वाले, नवेन्दु की कलायें आदि भाव (सत्तायें) स्वभावतः मधुर (तृप्तिकर, प्रीणन) होते हैं एवं जो, मन को मत्त (हर्षयुक्त) करते हैं। मेरे तो जन्म का यही महान् उत्सव (उद्धवः, महः, आह्लादजमक व्यापारः) है कि यह (इयं मालती), जो मेरे नेत्रों के लिए चन्द्रिका के समान (हर्ष देने वाली) है तथा मेरे नयनों का विषय हैं (विषिण्वन्ति विषयिणं स्वेन रूपेण निरूपणीयं कुर्वन्ति, चक्षुरादिग्राह्यः इन्द्रियार्थः) मेरे लोक में (लोकः विलोकनं, अवलोकनं, दर्शनं दृष्टिः) आयी है अर्थात् दृष्टिगत हुई है।"[2]

युवति विभाव (मालविकाग्निमित्र से) :—इस (मालविका) के अक्ष (अक्षि = चक्षु, आँख—अक्ष्णोति, अक्षति वा अक्ष्यते वा अवेन अत्र वा चक्षू व्याप्तौ; अश्नुते अत्यर्थं अशू व्याप्तौ) दीर्घ हैं, इसका वदन (वदन्त्यनेनेति, वद् वाक् संदेशयोः), इसके बाहु (बाधते शत्रून् इति) अंसों (अंस्यते समाहन्यते

---

१. चक्षुर्लुप्तमषीकणं कवलितस्ताम्बूलरागोऽधरे
विश्रान्ता कबरी कपोलफलके लुप्तेव गात्रद्युतिः।
जाने सम्प्रति मानिनि प्रणयिना कैरप्युपायक्रमै-
र्भग्नो मानमहातरुस्तरुणि ते चेतःस्थलीवर्धितः॥

२. जगति जयिनस्ते ते भावा नवेन्दुकलादयः
प्रकृतिमधुराः सन्त्येवान्ये मनो मदयन्ति ये।
मम तु यदियं याता लोके विलोचनचन्द्रिका
नयनविषयं जन्मन्येकः स एव महोत्सवः॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अंस समाघाते, यद्वा अमति अम्यते वा भारादिना । अम गतौ = स्कन्धों) से झुके हुए हैं, इसका उर (वक्षस्थल) संकुचित है, इसके स्तन (स्तनयति कथयति वक्षःशोभामिति, स्तन शब्दे) निविड़ (घने, नितरां विडतीति, विड आक्रोशे, आलिंगने, समाश्लेषे) तथा उन्नत हैं, दोनों पार्श्व (कक्षाधोभागः, कक्षः = बाहुमूलः) प्रमृष्ट हैं (शोधित परिमार्जित) हैं। मध्य (देह का मध्यभाग कटि) पाणिमित (पाणिः = पणायन्ते व्यवहरन्त्यनेन = हस्तः, भुजादलः = हाथ के अगले भाग के बराबर) है, जघन (स्त्रीकट्याः पुरोभागः) नितम्बी है, प्रशस्त नितम्ब-विशिष्ट है, चरणों की अंगुलियाँ अविरल (घनी, मिली हुई) हैं । नृत्य करते हुए (आह्लादित) मन का जैसा छन्द (चन्दयति आह्लादयति चन्द्यतेऽनेन वा चदि आह्लादे + चन्देरादेश्च छः = आह्लाद अभिलाष) है, वैसा ही विकसित (व्यक्त) उसका वपु (उप्यते देहान्तरभोगसाधनवीजीभूतानिकर्माण्यत्रेति) है ।[१] युवानायक व युवती नायिका-विभाव (मालती माधव से)—समीप की गली (अभ्यन्तर मार्ग) में बारम्बार पर्यटन करते हुए, वलभी (सबसे ऊपर छत पर की कोठरी) के ऊँचे गवाक्षों (खिड़कियों) से प्रत्यक्ष नव-काम के समान माधव को देखकरचंचल (अशान्त) एवं सुन्दर अंगों से युक्त मालती तीव्र उत्कंठा के कारण (विरहजन्म पीड़ा से) कष्ट पा रही है ।[२] यहाँ दोनों के सौन्दर्य का वर्णन है ।

आगे धनंजय ने कहा है कि आठ सत्वज (सात्त्विक), आठ स्थायी, एवं तैंतीस व्यभिचारी भावों—कुल उनचास भावों का युक्तिपूर्वक (अंगरूप में) निबंधन श्रृंगार को पुष्ट करता है किन्तु आलस्य, मरण, औग्र्य नामक संचारी, एवं जुगुप्सा नामक स्थायी भाव दोनों का आश्रय यदि एक ही आलम्बन विभाव बनाया जाय तो रस-विरोध होता है ।

श्रृंगार के तीन विभाग—धनंजयके अनुसार श्रृंगार के तीन बिभाग हैं—अयोग, विप्रयोग तथा संभोग । धनिक की वृत्ति से प्रतीत होता है कि धनंजय

---

१. दीर्घाक्षंशरदिन्दुकान्तिबदनं बाहू नतावंसयोः
संक्षिप्तं निविड़ोन्नतस्तनमुरः पार्श्वे प्रमृष्टे इव ।
मध्यः पाणिमितो नितम्बि जघनं पादावरांलांगुली
छन्दोनर्तयितुर्यथैव मनसः स्पष्ट तथास्या वपुः ।।

२. भूयो भूयः सविधनगरी रथ्यया पर्यटन्तं
दृष्ट्वा दृष्ट्वा भवनबलभीतुंगवातायनस्था ।
साक्षात्कामं नवमिव रतिर्मालतीमाधवं यत्
गाढ़ोत्कंठा लुलितललितैरंगकैस्ताम्यतीति ।।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

ने 'विप्रलम्भ' शब्द का प्रयोग इसलिए नहीं किया है कि कहीं उस (विप्रलम्भ) का उपचरित, सामान्य व्यवहार में प्रयुक्त शाब्दिक, व्युत्पत्तिपरक अर्थ 'वंचन =प्रवंचना = ठगी' न मान लिया जाय। संकेत दे कर भी संकेत-स्थल पर न पहुंचना, दी गई अवधि का अतिक्रमण करना, किसी अन्य नायिका का अनुसरण करना आदि अप्रीतिकर कार्यों से प्रधान नायिका को संयोग, मिलन से 'वंचित करना।'—यह सामान्यतः प्रयुक्त, व्यवहार-सिद्ध, सरल अर्थ का ग्रहण न कर लिया जाय केवल इसीलिए, 'विप्रलम्भ' शब्द का प्रयोग नहीं किया गया। इसी अर्थ के आधार पर प्रिय-संभोग से वंचिता नायिका 'विप्रलब्धा' कही जाती है।

अयोग शृंगार—नवयुवक युवती के परस्पर अनुरक्त होते, उनके एक चित्त, मनोनुकूल होते हुए भी गुरुजनों की पराधीनता अथवा दैव (भाग्य) के विधान से, विप्रकर्ष (दूरी, भेद, अन्तर) से घटित वा उत्पन्न असंगम, असमागम ही अयोग (युज् + घञ्समासः=विधुरं विगता धूर्भारो यस्मात्, कूटः=कैतवं = कपटता प्रत्यवायः, कष्टम्) अर्थात् विश्लेष कहा जाता है।

'रत्नावली' नाटिका में वासवदत्ता के अधीन (इनं प्रभुम् अधिगतः, इनः = एतीति = प्रभुः) होने के कारण सागरिका का वत्सराज से 'मालतीमाधव' में मालती का पिता के अधीन होने, उसके पिता की माधव के कुल से शत्रुता होने के कारण माधव से, तथा 'कुमारसम्भव' में दैव के कारण शिव का पार्वती से समागम का अभाव अयोग कहा जावेगा।

अयोग शृंगार की दश अवस्थायें :—अभिलाष, चिन्ता, स्मृति, गुण-कथा, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, संज्वर, जड़ता तथा मरण—ये शृङ्गार की अयोग-जन्य दश कामदशायें हैं, जो, प्रभाव की दृष्टि से एक दूसरे से श्रेष्ठतर हैं।

अभिलाष एवं उसका उदाहरण :—सर्वाङ्गसुन्दर कान्त (नायक) के प्रति नायिका की संभोगेच्छा अभिलाष है। प्रत्यक्ष दर्शन, श्रवण, चित्र-दर्शन, स्वप्न-दर्शन, माया आदि के माध्यम से उक्त अभिलाष उत्पन्न होता है। सखियों आदि के गीत या मागधादि के गुणस्तवन सुनने से भी समागम की इच्छा उत्पन्न हो सकती है। विस्मय, आनन्द, सम्भ्रम आदि भाव अभिलाष में उत्पन्न होते हैं। दर्शन से अभिलाषोत्पत्ति का उदाहरण देखिये—'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में शकुन्तला के दर्शन से दुष्यन्त की समागमेच्छा उद्भूत होती है—

"यह सुन्दरी शकुन्तला क्षत्रिय द्वारा पाणिग्रहण के योग्य है क्यों कि इसे देख कर मेरा मन साभिलाष हो रहा है। संदेह के स्थलों एवं पदार्थों में (सच्चरित्र व्यक्तियों के) अन्तः करण की प्रवृत्तियां, मन की प्रवणता ही

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रमाण मानी जाती है।"[१] यहाँ दुष्यन्त के (मन में) पहले सन्देह होता है कि यह (शकुन्तला) ब्राह्मण कन्या है अथवा क्षत्रिय कन्या। किन्तु उसे (शकुन्तला) को देखकर दुष्यंन्त का साभिलाषित होना शकुन्तला के ब्राह्मण-कन्या होने का सन्देह दूर कर देता है। दुष्यन्त का मन अत्यन्त पवित्र है, तथापि यदि उसका मन शकुन्तला को देखने मात्र से समागम की अभिलाषा से युक्त होता है तो उसे निश्चय हो जाता है कि शकुन्तला भी आर्यक्षत्रिय कन्या है क्योंकि दुष्यन्त की परम पूत आत्मा कभी अग्राह्य ब्राह्मण कन्या के के प्रति आकर्षित नहीं हो सकती। मनःपूत व्यक्तियों की आत्मा संदेह के स्थलों पर प्रमाण होती है।

अभिलाषदशाजन्य विस्मय (आश्चर्य) का उदाहरणः—उस तन्वङ्गी (तनुः अल्पः विरलः कृशांगी) के स्तनों (स्तन शब्दे, स्तनः स्तन्यते शब्द्यते कामुकैः, स्तनयति कथयति वक्षः शोभाम् इति) को देख कर युवक शिर कंपाने लगता है, मानो उस (नायिका) के दोनों स्तनों के बीच निर्मग्न (उलझी हुई) दृष्टि (पश्यन्ति अनया इति=चक्षुः) का उत्पाटन (उद्धार) कर रहा है, फंसे हुए नेत्रों को छुड़ा रहा है।'[२] यहाँ शिर को कंपाना नायक के हृदय में स्थित विस्मय का प्रमाण है।

अभिलाषजन्य आनन्द का उदाहरणः—(राजशेखर कृत विद्धशालभंजिका से)—नायक कहता है 'इस छोटे प्राकार (परकोटा, घेरा) के अग्रभाग पर दृष्टि डालो, थोड़ा (मनाक्) तर्क करो कि बिना आकाश के ही, निष्कलंक (गलितहिरणः नष्ट हो गया है हरिणाकार कलंक जिसका) चन्द्रमा (के समान) यह कौन है?' यह चन्द्रमा लवलीलता के पके फल के समान स्वच्छ (अच्छः = न च्छयति निर्मलत्वात् दृष्टि नावृणोति) चन्द्रिका छिटका रहा है, जिसे सुधा निर्मित ग्रासों (ग्रस्यते अद्यते इति) में उपवन (उपमितं वनेन, कृत्रिमवनं आरामः = आरम्यतेऽत्र) के चकोर (चकते चन्द्रकिरणेन तृप्यतीति चकतृप्तौ) कवलित (भुक्त, कवलः केन जलेन वलते चलतीति ग्रासः) कर रहे हैं।'[3] यहाँ नायिका के निष्कलंक चन्द्रवत् मुखमण्डल

---

१. असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा यदार्यमस्यामभिलाषि मे मनः।
सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः॥

२. स्तनावालोक्य तन्वंग्याः शिरः कम्पयते युवा।
तयोरन्तरनिर्मग्नां दृष्टिमुत्पाटयन्नेव॥

३. सुधाबद्धग्रासैरुपवनचकोरैः कवलितां
किरञ्ज्योत्स्नामच्छां लवलिफलपाकप्रणयिनीम्।
उपप्राकाराग्रं प्रहिणु नयने तर्कय मना-
गनाकाशे कोऽयं गलितहरिणः शीतकिरणः॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

की चन्द्रिकावत् किरणों (कान्ति) को अमृत के समान सुस्वादु मान कर चकोर पान कर रहे हैं जो नायक के आनन्द का आधार है।

अभिलाषजन्य साध्वस (संभ्रम) का उदाहरण—शिव को (सम्मुख) देख कर सरस अंगों वाली यष्टि (यजते संगच्छते इति दण्डः, लगुड़ः) के सदृश तन्वङ्गी पार्वती कांपने लगी। पगस्थापनार्थं उठे हुए चरणों वाली पार्वती इतनी संभ्रम (भयादिजनित त्वरा) से युक्त हो गई कि वह (शैलराजतनया) मार्ग में स्थित पर्वत के मिलने से (व्यतिकरः व्यतिषङ्गः परस्परमेलनम्) आकुलित सिन्धु (नदी, सिन्धुः स्यन्दते चलति इति) के समान न तो वहाँ से जा ही सकी न वहाँ ठहर ही सकी''[1] है। कुमारसंभव में वर्णित पार्वती के साध्वस (सम्भ्रम) की दशा का वर्णन है।

अयोगशृंगारस्थ चिन्ता एवं उसका उदाहरण—हित (ईप्सित वस्तु, मित्र) की अनाप्ति (अप्राप्ति) के कारण किया गया ध्यान (ध्यै भावेल्युट = चिन्तनम्) चिन्ता है। इसके अनुभाव है—शून्यता (शून्यं अतिशयेन ऊनः, अभावविशिष्टः) श्वास तथा ताप (सन्ताप, दुःख)। जैसे—"कोमल मृणाल (पद्मनतनुः कमलतन्तुः मृण्यते हिंस्यते भक्षणाद्यर्थं यत्) एवं कमलदण्डो के वलय (वलते आवृणोति हस्तादिकमिति=कटक) के आभूषण से सुन्दर हाथ पर अपने आनन (आन् इति, अनेन आननं मुखं, आन = उच्छ्वास) को रख कर पक्ष्माग्र (पक्ष्यते, परिगृह्यते आतपतापादिकमनेन = अक्षिरोम, नेत्रच्छदरोम) पर गुंथे हुए मोतियों के समान अश्रुबिन्दुओं से महादेव के हास के समान वक्ष-स्थित श्वेत हारावली रूप आभूषण की रचना करती हुई किसे स्मरण कर रही हो।'[2]

अयोगजन्य स्मृति एवं उसका उदाहरण—किसी सदृश (वस्तु) के ज्ञान वा उसकी चिन्ता आदि के कारण (भूत) संस्कार (सं+कृ+घञ् = अनुभवः मानसकर्म इति) को स्मृति कहते हैं। यह स्मृति पूर्व ज्ञात अर्थ

---

१. तं वीक्ष्य वेपथुमती सरसांगयष्टि-
निक्षेपणाय पदमुद्धृतमुद्वहन्ती।
मार्गाचलव्यतिकराकुलितेव सिन्धुः
शैलाधिराजतनया न ययौ न तस्थौ॥

२. पक्ष्माग्रग्रथिताश्रुबिन्दुनिकरैर्मुक्ताफलस्पर्धिभिः
कुर्वन्त्या हरहासहारिहृदये हारावलीभूषणम्।
बाले बालमृणालनालवलयालंकारकान्ते करे
विन्यस्याननमायताक्षिसुकृती कोऽयं त्वया स्मर्यते॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(विषय, वस्तु) का (पुनरपि) भास (दीप्ति, प्रभा) अर्थात् ज्ञान कराती है। भ्रू समुन्नयनादि (भौहों का उपर उठाना आदि) इसके अनुभाव हैं। जैसे सीता का हरण करके भागते हुए रावण की, मार्गावरोध करने वाले जटायु को देख कर, स्मृति उद्बुद्ध हो जाती है। वह सोच रहा है—'क्या गगन (गं गानं शब्दात्मकं गुणं गच्छति यद्वा गकारं भूतेषु प्रथमभूतत्वात् प्राधान्यं गच्छति, यद्वा गच्छन्त्यस्मिन् देवादय इति) में मेरे अप्रतिहत मार्ग को यह मैनाक रोक रहा है ? (किन्तु) उसको (मार्गावरोध करने की) यह शक्ति कहाँ ? वह तो महेन्द्र (इन्द्र) के वज्रपात से भी भीत हैं। (तो क्या) तार्क्ष्य है (तार्क्षस्य कश्यपस्य अपत्यं) ? वह भी अपने विभु (प्रभुः प्रभवति जनयतीति) के साथ मुझ रावण (रावयति भीषयति सर्वान् इति) ! आः ! ज्ञात हो गया, यह तो वृद्धावस्था से क्लेशयुक्त दुःखित (जरसाक्लिष्टः—क्लिश उपतापे, दुःखे) अपना वध चाहता हैं।'[1]

अयोग जन्य उन्माद एवं उदाहरण—सन्निपात वा ग्रहादिग्रहण आदि कारणों से उत्पन्न अविवेकिता (अप्रेक्षाकारिता) (चेतनाचेतन-अपरिच्छेद) को उन्माद कहते हैं। इसके लक्षण रोना, गाना, हंसना, आसित (बैठना) आदि है। उदाहरण देखिये—'अरे नीच राक्षस ! ठहर ! ठहर मेरी प्रियतमा को लेकर कहाँ जा रहा है ? क्या ? यह तो सन्नद्ध (सं+नह × क्तः=व्यूढः, विन्यस्तः, संहतः) नये बादल हैं, दृप्त, दृप् (हर्षे, गर्वे, गर्वोऽहंकारे=गर्वितः) निशाचर नहीं है, यह दुराकृष्ट (दूरतकतना हुआ, आकृष्टं=कृताकर्षणं = बलादानयनं) इन्द्रधनुष है, उस (राक्षस) का शरासन नहीं है। यह भी पटु (तीक्ष्ण) धारासार (धारा=अतिवृष्टिः, आसारः वेगवृष्टिः) है न कि वाणपरम्परा (वाणों का क्रम, पर्याय, परिपाटी, अनुक्रम)। यह मेरी प्रिया उर्वशी नहीं है अपितु शाणित कनक (कनी दीप्तौ-कनति दीप्यते इति, स्वर्णः) के समान सचिक्कण विद्युत (विशेषेण द्योतते इति चपला, तड़ित) है।[2] विक्रमोर्वशीय में उर्वशी के प्रति पुरूरवा की उक्ति है।

---

१. मैनाकः किमयं रुणद्धि गगने मन्मार्गमव्याहत
शक्तिस्तस्य कुतः स वज्रपतनाद्भीतो महेन्द्रादपि।
तार्क्ष्यः सोऽपि समं निजेन विभुना जानाति मां रावणमाः
ज्ञातं, स जटायुरेष जरसा क्लिष्टो वधं वांछति ॥

२. आः क्षुद्र राक्षस ! तिष्ठ तिष्ठ । क्वमे
प्रियतमामादाय गच्छसि ?
नवजलधरः सन्नद्धोऽयं न दृप्तनिशाचरः
सुरधनुरिदं दूराकृष्टं न तस्य शरासनम्।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अयोगजन्य व्याधि एवं उदाहरण—सन्निपातादि रोगों को व्याधि कहते हैं। उदाहरण देखिये—'निरन्तर (अच्छिन्नं=छेदरहितं, अकर्तितं) बहने वाले अश्रुओं (अश्नुते व्याप्नोति नेत्रं कण्ठं वा = नेत्रजलं) को उस नायिका ने बन्धुओं (बन्ध बन्धने, स्नेहेन मनो बध्नाति यः, स्वजनः) को चिन्ता, गुरुजनों (माता, पितादि) को अशेष (नास्ति शेषो अस्य इति, निःशेषं. सर्वं) दैन्य (दीनस्य भावः, दरिद्रता) परिजनों (परिगतो जनः, परिवारः. पोष्यवर्गः) को एवं ताप (दुःख) सखियों को बांट दिया है।' भावार्थ यह है कि नायिका की मरणासन्नावस्था को देखकर उसके बन्धु रो रहे हैं, गुरुजन चिन्तामग्न हैं, सेवकगण दीन हो गये हैं एवं सखियाँ उसकी विरह-तप्त दशा देखकर स्वयं दुःखिनी हैं। 'आज या कल नायिका परनिर्वृत्ति (परम् मोक्ष) पा जाएगी, केवल उसकी श्वासें उसे खिन्न बना रही हैं। तुम्हारे विप्रयोग (विगतः प्रकृष्टो योगो अत्र, विप्रलम्भः, संयोगाभावः) जनित दुःख को उसने लोगों में विभक्त कर दिया है।[1] नायिका मरणप्राय है यही ध्वनि है।

अयोग जन्य जड़ता—इष्ट (इष्यते इज्यते वा यत् तत् वांछितम्) वा अनिष्ट वस्तु के दर्शन, श्रवणादि से उत्पन्न प्रतिपत्ति (प्रकृष्ट ज्ञान, प्रबोध) के अभाव को जड़ता कहते हैं। उदाहरण देखिये—

'हे सखि! साध्वस (भय) का निग्रह (निराकरण, निवारण) करके शंकर की सेवा विजन (एकान्त रहः विजनेविगतो जनो यस्मात्) प्रिय के सम्मुख होने पर, पार्वती सखियों द्वारा मंत्रणा, शिक्षा पाकर भी कुछ स्मरण न कर पाई।[2]

अयोगजन्यमरण—मरण सुप्रसिद्ध और अनर्थ का सूचक है अतः इसका लक्षण नहीं किया गया है। नायक के विदेश चले जाने के कारण नायिका निराश होकर मरणोन्मुख हो गई है। सखी उसकी दशा का नायक से वर्णन कर रही है—

अयमपि पटुर्धारासारो न वाण परम्परा
कनकनिकषस्निग्धा विद्युत्प्रिया न ममोर्वशी॥

१. अच्छिन्नं नयनाम्बु बन्धुषु कृतं चिन्ता गुरुभ्योर्पिता
दत्तं दैन्यमशेषतः परिजने तापः सखीष्वाहितः।
अद्य श्वः परनिर्वृतिं व्रजति सा श्वासैः परं खिद्यते
विश्रब्धो भव विप्रयोगजनितं दुःखं विभक्तं तया॥

२. एवमालि निगृहीतसाध्वसं शंकरो रहसि सेव्यतामिति।
सा सखीभिरुपदिष्टमाकुला नास्मरत्प्रमुखवर्तिनि प्रिये॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

'तुम्हारे आने की अवधि संप्राप्त होने पर नायिका प्रतिक्षण तुम्हारे मार्ग (वर्त्म वर्ततेऽनेनास्मिन्वेति, पन्थाः) की ओर के वातायन (वातस्य अयनं गमनागमनमार्गः = गवाक्षः) पास जा कर, निष्क्रिय हो जाने के कारण, (ब्रह्मवत् क्रिया शून्य हो जाने से—निष्क्रिय निर्गता क्रिया यस्य=ब्रह्म), विहित क्रियाओं से रहित हो जाने के कारण, बहुत कालपर्यन्त कुछ सोच विचार कर अन्त में कुछ निश्चय कर अश्रुयुक्त नेत्रों से सम्प्रति (इसी समय) क्रीड़ा कुररी (क्रीड़ा के लिए पालीत्नो गई स्त्री क्रौंच पक्षी) को सखियों को निवेदित (समर्पित) कर दिया एवं माधवी लता का करुण विवाह सहकार (सह युगपत् कारयति विक्षेपयति सौगन्धमिति, सौरभाम्रः) से कर दिया।'[1] नायिका ने यह माधवी-सहकार-पाणिग्रहण करुण परिस्थिति में शोक युक्त होकर किया। इष्ट का नाश एवं अनिष्ट की प्राप्ति करुण रस का लक्षण है। प्रिय के मिलनाशा का नाश एवं आसन्न मरण की प्राप्ति नायिका को शोकाकुल कर देती है। शृंगार के आलम्बन में मरण का व्यवसाय (अनुष्ठान् निश्चय) मात्र दिखाना चाहिए तथ्य नहीं।

विप्रयोग शृ ारः—विप्रयोग विश्लेष (अयोगः, विधुरं, प्रत्यवायः कष्ट—विधुरं प्रत्यवायः स्यात् कष्टविश्लेषयोरपि—विगता धूः कार्यभारो यस्मात्) है जो या तो रूढ़ (रूढं जातप्रसिद्धम्) अथवा विस्रम्भ (केलिकलह = प्रणयः) से उद्भूत। इस प्रकार इसके दो भेद हैं—(१) मानविप्रयोग (२) एवं प्रवास विप्रयोग। मान भी दो प्रकार का होता है—प्रणयमान तथा ईर्ष्या मान। धनिक ने भी वृत्ति में लिखा है—'प्राप्त की अप्राप्ति विप्रयोग है जिसके दो भेद हैं—मान और प्रवास। मान विप्रयोग भी द्विविध है—प्रणयमान और ईर्ष्या मान। प्रवास जन्य विप्रयोग रूढ़ है तथा मानजन्य विप्रयोग विस्रंभ के कारण घटित होता है। नायिका या तो प्रणय का ठेस लगने से अथवा ईर्ष्या से प्रेरित होकर मान करती है। विप्रयोग और अयोग में भेद यह है कि अयोग में नायिका नायिका की एक दूसरे के प्रति पूर्वानुराग की स्थिति होती है किन्तु विप्रयोग में एक बार समागमनिष्पन्न होने पर पुनः समागमाभाव होता है। दोनों (नायक-नायिका) के कोपावसित (कोप–परिपक्व) होने पर प्रणयमान होता है। प्रेम पूर्वक वशीकार (वशीकरण) प्रणय है, प्रणय का भंग प्रणय मान है जो दोनों (नायक—नायिका) में उत्पन्न होता है।

---

१. संप्राप्तेऽवधिवासरे क्षणमनु त्वद्वर्त्मवातायन
बारम्बारमुपेत्य निष्क्रियतया निश्चित्य किंचिच्चिरम्।
सम्प्रत्येव निवेद्य केलिकुररीं सास्रं सखीभ्यो शिशो—
र्माधव्याः सहकारकेण करुणः पाणिग्रहो निर्मितः॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

मानविप्रयोगः—'उत्तररामचरितम्' से नायक कृत प्रणयमान का उदाहरण—'इसी लता निकुंज में आप सीता के आगमनमार्ग में नेत्र वितीर्ण (दत्त) किये हुए (उसी मार्ग की ओर सोत्सुक्य देखते हुए) विद्यमान थे। हंसों की क्रीड़ाये देखने के कुतूहल (कुतूं चर्ममयतैलादि पात्रवत अन्तर्हलति सोत्सुकं करोति = अपूर्ववस्तु दिदृक्षाद्यतिशयः) से उस सीतां को गोदावरी के तट पर विलम्ब हो गया। आप के समीप आति हुई सीता ने आप को विमन (विरुद्धं मनो यस्य, दुःखितमानसः) देखकर (परिदुर्मनायित) चिन्तित चेतस देख, कातर्य (कातरः, कष्टेन तरतीति, अधीरः तद्वत् भावः) से अरविन्द (नीलोत्पल) के कुड्मल (मुकुलाः, मुंचति कलिकात्वं, कुड्मलः कुटति ईषत् विकाशोन्मुखीभवतीति, कुडवाल्ये) के सदृश प्रणामांजलि (नमस्कारसूचक कर पुट) बांध लिया।[1]

नायिका कृत प्रणयमान :—'प्रणय कुपित देवी पार्वती को देखकर ससंभ्रम (भयादि जनित त्वरा, आवेग युक्त) चकित होकर त्रिभुवन के गुरु (गीर्यते स्तूयते महत्वात् पूज्यः) महादेव भय से सद्यः (समानेऽहनि इति, त (क्षणं) प्रणाम करने लगे। शिव के शिर झुकाने पर पार्वती ने गगा को देखने पर (आलोके—आलोकः दर्शनं) चरणाघात किया। त्रिनेत्र (भगवान् शंकर) की यह विस्मयान्वित (आश्चर्य—विशिष्ट) स्थिति आप लोगों की रक्षा करे।[2]

उभयगत प्रणयमान :—प्रणय-कुपित, मिथ्या-निद्रित (अलीकप्रसुप्त—अल्+ईकन् = मिथ्या), मानयुक्त नायक नायिका में जो, निःश्वासों को निरुद्ध कर (रोक कर) उन निरुद्ध निःश्वासों के प्रति कान लगाये हुए हैं कौन मल्ल है (मलते धरति बलमिति=बाहुयोधी)'।[3]

---

१. अस्मिन्नेव लतागृहे त्वमभवस्तन्मार्गदत्तेक्षणः,
सा हंसैः कृतकौतुका चिरमभूद्गोदावरी सैकते।
आयान्त्या परिदुर्मनायितमिव त्वां वीक्ष्य बद्धस्तया
कातर्यादरविन्द कुड्मलनिभो मुग्धः प्रणामांजलिः॥ [उ० रा० ३.३७]

२. प्रणयकुपितां दृष्ट्वा देवीं ससम्भ्रमविस्मित
स्त्रिभुवनगुरुर्भीत्या सद्यः प्रणामपरोऽभवत्।
नमितशिरसो गंगालोके तया चरणाहता-
ववतु भवतस्त्र्यक्षस्यैतद्विलक्षमणवस्थितम्॥

३. पणअ कुविआण दोह्ण वि अलिअपसुत्ताणमाणइंताणम्।
णिच्चलणिरुद्धणीसासदिण्णअण्णाण को मल्लो॥
[प्रणयकुपितयोर्द्वयोरप्यलीकप्रसुप्तयोर्मानवतोः।
निश्चलनिरुद्धनिःश्वासदत्तकर्णयोः को मल्लः॥]

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

ईर्ष्याकृतमान :—प्रिय के किसी अन्य नायिका के प्रति आसक्त होने पर, स्त्रियों में जो कोप होता है उसे ईर्ष्या कृत मान कहते हैं। यह आसंग (आसक्ति) या तो श्रुत (सुना हुआ) या अनुमित अथवा दृष्ट होता है। इस नायिकान्तरसंग की श्रुति (श्रवण) सखी के वचन द्वारा होता है क्योंकि उस (सखी) का बचन विश्वास्य (विश्वसनीय) होता है। उस आसक्ति का अनुमान परस्त्री सम्भोग का चिह्न आदि देखने, उत्स्वप्नायित (स्वप्न में अन्य स्त्री का नाम लेने,) एवं गोत्रस्खलन करने (किसी अन्य का नाम भूल से लेने) से होता है। नायक का नायिकान्तर प्रेम दृष्टरुप में तब होगा जब नायिका यह प्रेमव्यापार स्वयं अपनी आँखों से देख ले वा कानों से उनका प्रेमालाप सुन ले—

'हे सुन्दर भौहों वाली! नवनीत (मक्खन) के समान कोमलहृदया! तुमको किस दुष्टमंत्री ने मिथ्या ही तुम्हारा प्रियकारी बनकर, मधुमुख (मीठी मीठी बातों) से मुग्ध कर तुमको हमारे प्रति चण्डी (चडि कोपे) बना दिया है? क्षण भर के लिए तुम इतना (तो) विमर्श (विचार) कर लो कि प्रेमियों में तुम्हारा सच्चा हितैषी कौन है? तुम्हारी धात्री-तनया है, हम हैं, तुम्हारी सखी है वा हमारे मित्र हैं?"[1]

उत्स्वप्नायित से अनुमान का उदाहरण रुद्र कवि कृतः—'पानी में निमग्न, कामाधिक्य से मैंने उस सखी का आलिंगन कर लिया। हे राधे तुमसे यह किसने मिथ्या बात कह दी कि मेरा प्रेम उस सखी से है। तुम व्यर्थ ही खिन्न हो रही हो (ताम्यसि-तमखेदे)। उत्स्वप्न के क्रम (परिपाटी) में कही गई विष्णु के इन वचनों को सुनकर कमला (लक्ष्मी) ने व्याज (बहाने) से कण्ठग्रह (बाहु द्वारा कण्ठ ग्रहण) शिथिल कर दिया। इस प्रकार कमला द्वारा कण्ठग्रह का शिथिलीकरण तुम्हारी रक्षा करे।[2]

भोगांकानुमित अन्यासक्ति का उदाहरण :—'नायिका द्वारा किये गये नये अंग के नख-चिह्न (पदं-चिह्नम्) को तुम अंशुक (वस्त्र) से छिपा रहे हो

---

१. सुभ्रू त्वं नवनीतकल्पहृदया केनापि दुर्मन्त्रिणा
मिथ्यैव प्रियकारिणामधुमुखेनास्मासु चंडीकृता।
किं त्वेतद्विमृश क्षणं प्रणयिनामेणाक्षि कस्ते हितः
किं धत्रीतनया वयं किमु सखी किं वा किमस्मत्सुहृत् ॥

२. निर्मग्नेन मयाम्भसि स्मरभरादाली समालिंगिता
केनालीकमिदं तवाद्य कथितं राधे मुधा ताम्यसि।
इत्युत्स्वप्नपरंपरासु शयने श्रुत्वा वचः शार्ङ्गिणः
सव्याजं शिथिलीकृतः कमलया कण्ठग्रहः पातु वः ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अधरोष्ठ में (विद्यमान) दन्तदष्ट (दाँत से काटने का चिह्न) को पाणि (पणायन्ते व्यवहरन्त्यनेन, पण व्यवहारे) द्वारा स्थगन (अपवारण, छिपाने का कार्य) कर रहे हो, किन्तु प्रत्येक दिशा में (दिक् दिशति अवकाशं ददाति या) अन्य स्त्री (स्त्यायति गर्भो यस्यामिति—स्त्यै संहतौ = दृढ़ करना) के सम्भोग की शंसा (प्रशंसा, स्तुति, वर्णना, सिद्धि) करने वाले नव परिमल गन्ध (परिमल: परिमलते सुगन्धिं पार्थिवकणां धरतीति—मल धारणे = सुरतादि विमर्दोत्थ विलेपन कुंकुमादि गन्धः) के विसर्पण (प्रसार) का निवारण कौन कर सकता है' ।[१] शिशुपालवध (एकादश सर्ग) से उद्धृत इस पद्य में नायिका नायक के शरीर पर परस्त्री-संभोग-चिह्नों से अन्यासक्ति का अनुमान कर उसे उपालम्भ दे रही है ।

गोत्रस्खलन कल्पित अन्यासक्ति का उदाहरण :—नायिका नायक के गोत्र स्खलन से परस्त्री आसक्ति का अनुमान लगाकर रो रही है। यह देखकर सखी नायक से निवेदन कर रही है—'प्रणय क्रीड़ा के समय (तुम्हारे) गोत्रस्खलन से कुपित होकर, तुम्हारे कैतव (कितव + स्वार्थे अण् = कपट:) से अनभिज्ञ तुम्हारी जाया (जायते पुत्ररूपेणात्माऽस्यामिति) सत्य ही रो रही है। दुष्ट (दुष्यतीति = अधम:) अपना यह परिहास (परिहासः केलिमुख: केलिर्दवन-नर्म्मणी) तो देखो ।'[२]

दृष्टि अन्यासक्ति का उदाहरण :—नायिका कृत प्रणयमान का उदाहरण 'प्रणय कुपिता देवी पार्वती को देखकर आदि······' पूर्वकथित है ।

मान निवारण के उपायों के प्रकार:—उक्त श्रुत, अनुमित एवं दृष्ट अन्यासक्ति के भेदों में, क्रमश: उत्तरवर्ती पूर्ववर्ती से गुरुतर (गुरु: गीर्यते स्तूयते महत्त्वात्, दुर्जर: = दुर्दु:खेन जीर्यतीति, दुर्जय: = दु:खेन जीयते असौ) होता, क्लेश साध्यतर होता (यथोत्तरगुरु:) होता है। इनका उपचार छः उपायों से होता है—साम, भेद, दान, नति (प्रणाम), उपेक्षा वा रसान्तर

---

१. नवनखपदमंगंगोपयस्यंशुकेन
स्थगयसि पुनरोष्ठं पाणिना दन्तदष्टम् ।
प्रतिदिशमपरस्त्रीसंगशंसी विसर्पन्
नवपरिमलगन्ध: केन शक्यो वरीतुम् ।।

२. केलीगोत्तक्खलणे विकुप्पएकेअवं अआणंती ।
दुट्ठ उअसु परिहासं जाआसच्चं विअ परुण्णा ।।
[केली गोत्रस्खलने विकुप्यति कैतवमजानन्तो ।
दुष्ट पश्य परिहासं जाया सत्यमिव प्ररुदिता ।।]

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

की उपस्थिति । प्रिय वचन का प्रयोग साम, नायिका की सखी का उपार्जन (प्राप्ति, अनुकूल बनाना) भेद, किसी व्याज से आभूषणादि का दान दान, चरणों पर गिरना नति नामक उपाय है। सामादि उपाय परिक्षीण (सर्वतोभावेन शक्तिहीन) हो जाने पर अवधीरण (अवज्ञा, अनादर) करना उपेक्षा (उदासीनता) एवं शीघ्रता पूर्वक, वेग से, भय तथा हर्ष की उत्पत्ति कर नायिकाकृत कोप को नष्ट करना रसान्तर कहा जाता है । इनमें से साम अर्थात् प्रिय वचनों द्वारा ईर्ष्यामान की उपचर्या का उदाहरण देखिये—

'तुम्हारा मुखरूपी शशी (शशोऽस्यास्तीति, शश + इनिः) सारे विश्व (विशति स्वकारणमिति विश प्रवेशने, कारणं हेतुः बीजं, अविद्या, कार्यतेऽनेन, जगत्) को अपनी मुस्कुराहट की ज्योत्सना (ज्योतिरस्तस्यामिति) से धवलित कर रहा है; शुक्ल बना रहा है। तुम्हारे नेत्र चारो ओर मानों अमृत का रस गिरा रहे हैं। तुम्हारा वपु (उप्यते देहान्तरभोगसाधनबीजीभूतानि कर्माण्यत्रेति = शरीर) दिशाओं में लावण्य (सौन्दर्यविशेष, मोती की आभा के समान आभा) विकीर्ण कर रहा है । हे सुन्दर अङ्गोंवाली तुम्हारे हृदय से कठोरता का सम्बन्ध कैसे हो गया ?"[१]

यथा वा, "हे सुन्दरी ! वेधा (विधति विदधातीति = ब्रह्मा) ने तुम्हारे नयनों (नीयते दृष्टि विषयेऽनेनेति, चक्षुः) को इन्दीवर (इन्दी लक्ष्मीस्तस्या वरं प्रियं, इदि परमैश्वर्ये=नीलपद्मं) से, मुख (खनति विदारयति अन्नादिकमनेन, खन्यते विधात्रा सुखमनेति वेति) अम्बुज से, दांत कुन्द से, अधर नये पल्लव से तथा अङ्गों को चम्पे की पंखुड़ियों से बनाकर हृदय को पत्थर से कैसे बनाया ।"[२]

भेद अर्थात् नायिका-सखी-समावर्जन (तुष्टीकरण, आकर्षण) **द्वारा ईर्ष्यामान का उपचार**—'हे सुन्दर भौहों वाली (रमणी) ! आज्ञा का भंग कर देने पर भी मैंने किसी प्रकार तुम्हे प्रणाम द्वारा तुष्ट, प्रीति युक्त (धृताः) किया था । तुमने कई बार विहँस कर अपना क्रोध शीघ्र (हस्ते=हाथ हाथ) छोड़

---

१. स्मितज्योत्स्नाभिस्तेधवलयति विश्वं मुखशशी
दृशस्ते पीयूषद्रवमिव विमुंचन्ति परितः ।
वपुस्ते लावण्यं किरति मधुरं दिक्षु तदिदं
कुतस्ते पारुष्यं सुतनु हृदये नाद्य गुणितम् ॥
[दश० ४.६३]

२. इन्दीवरेण नयनं मुखमम्बुजेन कुन्देन दन्तमधरं नवपल्लवेन ।
अङ्गानि चम्पकदलैः स विधाय वेधाः कान्ते कथं रचितवानुपलेन चेतः ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

देती थीं। किन्तु अबकी बार का कोप तो कुछ अन्य ही प्रकार का है। यह तो आज गुणित (वृद्ध) होकर असीम हो गया है। इस क्रोध में तो प्रिय सखियों के मधुर वचन भी व्यर्थ हो गये।'[1] दान अर्थात् व्याज (बहाने) से भूषणादि देकर ईर्ष्यामान का उपचार—अन्यासक्तनायक दूसरी नायिका के घर रह कर लौटा है। ज्येष्ठा नायिका को प्रसन्न करने के लिए वह किसी लतादि की कलिका शृंगार के लिए दे रहा है। नायिका उसकी भर्त्सना करती हुई कह रही है:—हे शठ ! (शठ वध क्लेश कैतवे, क्लेशोदुःखानुभवः कैतवं मिथ्यावंचनम्) अलि (अलति दंशे समर्थोभवति यः सः) के नाद से बार बार उपहसित (अवमानित) सी इस कलिका (कलिः इषत्प्रकाशते उद्भिद्यते वा) को मुझे बार-बार क्यों दे रहा है।) अधिक रात्रिपर्यन्त (अधिरजनि गतेन अधिः=उपरिभागः अधिकं) उस (नायिका) के घर रहकर तुमने आज महान् कलहक्लेश दिया—।[2] नति अर्थात् पादपतन द्वारा ईर्ष्यामानोपचारः—प्रिय के चरणों पर गिरे हुए प्रिय के चिकुर (चिइति अव्यक्त शब्दं कुरतीति = कुर शब्दे = केशः) नायिका के नूपुर के कोण (किनारे) से उलझ गये हैं, यह कह रहे हैं कि हृदय-पद में (पदं = व्यवसायः स्थानम्) उत्थित मान (के व्यवसाय निश्चय, अनुष्ठान) से अब नायिका को मुक्ति मिल गई है।[3] उपेक्षा अर्थात् प्रिया के प्रति उदासीनता दिखा कर ईर्ष्यामान-भंग का उदाहरण—नायक की अन्यनायिकासक्ति से कुपित होकर नायिका ने मान किया है। उसके मनाने के सब प्रयत्न विफल हो जाने पर नायक उपेक्षा प्रदर्शित कर वहां से चल देता है। तब नायिका का मान शान्त हो जाता है और वह अपनी सखी से नायक को बुला लाने को कहती है—:वह (नायक) चला गया तो क्या; उसके पास जाना ठीक नहीं (क्यों-

---

१. कृतेऽप्याज्ञाभंगे कथमिव मया ते प्रणतयो
धृताः स्मित्वा हस्ते विसृजसि रुषं सुभ्रु बहुशः।
प्रकोपः कोऽप्यन्यः पुनरयमसीमाद्य गुणितो
वृथायत्र स्निग्धाः प्रियसहचरीणामपि गिरः॥

२. मुहुरुपहसितामिवालिनादैर्वितरसि नः कलिकां किमर्थमेनाम्।
अधिरजनि गतेन धाम्नि तस्याः शठकलिरेव महांस्त्वयाऽद्य दत्तः॥

३. णेउर कोडिविलग्गं चिहुरं दइअस्स पाअपडिअस्स।
हिअअं माण पउत्थं उम्मोअंतिच्चिअ कहेइ।
[नूपुर कोटिविलग्नं चिकुरं दयितस्य पादपतितस्य।
हृदयं मानपदोत्थमुन्मुक्तमित्येव कथयति ॥]

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कि वह परस्त्रीगामी) हैं। और हे सखि! ईश्वर (समर्थ) के प्रति परुषता (निष्ठुरता) अच्छी (साध्वी—साध्यति कार्यमिति = चारुः) नहीं है। हे सखि! जाओ और विनय (प्रणिपात) करके ले आओ अथवा विप्रिय (विरुद्धं प्रीणातीति, प्री तर्पणे, तर्पणमिह प्रीतीभावः प्रीतीकरणं च = अपराधः) करने वाले व्यक्ति अनुनेय (विनय द्वारा मनाया जाने योग्य) नहीं है।"[1]

भय हर्षादि के द्वारा रसान्तर से कोप भंश (क्रोध-नाश) का उदाहरण—अलीक (मिथ्या, अप्रिय अपराध) के अभिव्यक्त हो जाने पर, सब उपाय (उप + अय + घञ् उप सामीप्यं, सामर्थ्यं, अय गतौ, अपः एति एति सुखमनेन = मंगलानुष्ठानं, शुभावहविधिः) रूपी विभव (धन) के निष्फल हो जाने पर बहुत समय (चिरं = दीर्घकालः) तक सोच विचार कर नायक ने कृतक (कृन्तति स्वरूपम्...कृन्तनं छेदनं = कृत्रिमः) एवं निपुण रभस (उत्तेजना, आवेग) उत्पन्न कर दिया। 'यहाँ पीछे यह क्या है'—यह कह कर (नायिका को) अकस्मात् भयभीत कर, उस धूर्त (धूर्वति हिनस्ति इति = मायी, वंचक) ने वधू का मुस्कराते हुए मधुर आलिङ्गन किया।"[2]

प्रवास विप्रयोगः—कारण प्रभेद से प्रवास विप्रयोग तीन प्रकार का होता है (१) कार्यवश (२) आवेग-क्रोधादि वश (३) शाप वश नायक तथा नायिका की भिन्न देशता, भिन्न भिन्न देश में रहना प्रवास कहा जाता है। प्रवास में (तत्र) नायक तथा नायिका में अश्रु, निःस्वास, कृशता, विमनिमा (विमनस्कता, अन्यमनस्कता) के कारण केशों के अविन्यास (विन्यासः रचनम्, स्थापनम्, न विन्यासः = अविन्यासः) से उनका लम्बा हो जाना आदि लक्षण मिलते हैं। कालभेद से यह प्रवास विप्रयोग विद्वानों के विचारानुसार तीन प्रकार का होता है:—१ भूत, २ भावी वा भविष्यत् एवं ३ वर्तमान् प्रवास सम्बन्धी। कार्यज विप्रयोग निम्नलिखित है—

कार्यज भावी या यास्यत्प्रवास का उदाहरण—प्रिय विदेश गया नहीं है, जाने वाला है। "प्रिय के भावी विरह से त्रस्त (सह्लीका, ह्ली इति कन्।

---

१. किं गतेन न हिं युक्तमुपैतुं नेश्वरे परुषता सखि साध्वी।
आनयैनमनुनीय कथं वा विप्रियाणि जनयन्ननुनेयः॥

२. अभिव्यक्तालीकः सकलविफलोपायविभव-
श्चिरंध्यात्वा सद्यः कृतकृतकसंरंभनिपुणम्।
इतः पृष्ठे पृष्ठे किमिदमिति संत्रास्य सहसा
कृताश्लेषां धूर्तः स्मितमधुरमालिङ्गति वधूम्॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

टाप् । = त्रासः) भावी पथिक की पत्नी एक घर से दूसरे घर में आयुभर जीवन धारण का रहस्य पूछती हुई भ्रमण कर रही है।"[१]

कार्यजवर्तमान । गच्छत्प्रवास का उदाहरण—"हे नाथ ! एक प्रहर बीतने पर वा दिन के मध्य (मध्याह्न) वा अपराह्न में अथवा समस्त दिन बीत जाने पर तुम आज ही लौट आओगे न ? इस प्रकार के संभाषण से अश्रुकंठी (गद्गद् कंठ वाली—क्योंकि बाष्प वा अश्रु का प्रभवस्थान कंठ ही है) बाला (मुग्धा नायिका) सौ दिन की यात्रा से प्राप्य स्थान को जाने की इच्छा रखने वाले नायक के प्रस्थान को बाधित कर रही है।'[२]

कार्यजभूत वा गत प्रवास का उदाहरण—'मेघदूत' में यक्ष की उक्ति—'हे सौम्य (प्रिय) ! वह (मेरी प्रिया) वीणा को अपने उत्सङ्ग (उत्स्वजते मिलति यत्र, उत् + सञ्ज + घञ् = क्रोड़, गोद) में अथवा किसी मलिन वस्त्र पर रख कर मेरे गोत्र (गोत्रं गवते शब्दयति पूर्वं पुरुषान् यत् = नाम, वंश, कुल) से चिह्नित स्वविरचित गेय पद को गाने की इच्छा कर रही होगी। (गेय पद को गाने के समय) वह बार बार अपनी ही बनाई गई मूर्च्छना को भूल भूल जाती हुई दिखाई पड़ेगी।'[३]

संभ्रम (आवेग) जन्य विप्रयोग:—सम्भ्रमजन्य विप्रयोग दिव्य (अलौकिक, आकाशीय) वा मानुषी विप्लव (उत्पातः = उत्पतति अकस्मादायाति यः, स च त्रिविधः) के सहसा उत्पन्न होने से घटित होता है। उत्पात त्रिविध होते हैं—(१) दिव्य यथा अपर्व (असमय) ही चन्द्रादित्य ग्रासादि, (२) आन्तरीक्ष्य, यथा उल्कापात निर्घातादि (वायु संघर्ष से उत्पन्न शब्द, तूफान

---

१. होन्त पहिअस्स जाआ आउच्छणजीवधारणरहस्सम् ।
पुच्छंती भमइ घरं घरेसु पिअ विरहसहिरीआ ॥
[भविष्यत्पथिकस्य जाया आयुःक्षणजीवधारणरहस्यम् ।
पुच्छती भ्रमति गृहाद् गृहेषु प्रियविरहसह्लीका ॥]

२. प्रहरविरतौ मध्ये वाह्नस्ततोऽपि परेऽथवा
दिनकृते वास्तं नाथ त्वमद्य समेष्यसि ।
इति दिनशतप्राप्यं देशं प्रियस्य यियासतो
हरति गमनं बालालापैः सवाष्पगलज्जलैः ॥

३. उत्सङ्गे वा मलिनवसने सौम्य निक्षिप्य वीणां
मद्गोत्राङ्कं विरचित पदं गेय मुद्गातुकामा ।
तंत्रीमार्द्रां नयनसलिलैः सारयित्वा कथंचिद्
भूयोभूयः स्वयमपि कृतां मूर्च्छनां विस्मरन्ती ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

आदि) (३) भौम यथा भूकम्पादि । उत्पातजन्य सम्भ्रम विप्रयोग में नायक नायिका का आकस्मिक वियोग होता है । वृत्ति में भाव स्पष्ट करते हुए धनिक कहते हैं—'बुद्धि पूर्वक विचार करने पर, उत्पात निर्घात (वज्रपात) उग्र वातादि से उत्पन्न उपद्रव अथवा परचक्र (परः अरिः चक्रम् क्रियते अनेन इति । कृ + घञर्थकः = शत्रुसेना) आदि जन्य विप्लव से उत्पन्न (बुद्धिपूर्वक= मनन पूर्वक) किया गया संभ्रमज प्रवास केवल एकरूप (एक प्रकार का) होता है । जैसे विक्रमोर्वशीय में पुरूरवा का, तथा मालती माधव में कपाल कुण्डल द्वारा मालती के अपहरणान्तर मालती माधव का वियोग ।

सन्निध होते हुए भी यदि शापवश स्वरूपान्यत्वकरण (स्वरूप-परिवर्तन) हो जाय तो वह शापज प्रवास कहा जाता है । जैसे कादम्बरी में शाप के कारण वैशम्पायन (पुण्डरीक) तथा महाश्वेता का वियोग ।

करुण और विप्रयोग में भेद:—नायक-नायिका में से एक के मर जाने पर जहाँ दूसरा प्रलाप करे तो वह शोक ही कहा जाएगा । व्याश्रयत्व (आलम्बन के अविद्यमानता) के कारण वह शृंगार नहीं कहा जा सकता । हाँ प्रत्यापन्न (दैवी शक्ति आदि से पुनः जीवित) हो जाने पर करुण नहीं कहा जाएगा । उदाहरणतः रघुवंश के अष्टम सर्ग में इन्दुमती का मरण एवं अज का [illegible]लाप करुण है । कादम्बरी में पहले तो करुण है किन्तु आकाश-सरस्वती की [illegible]णी के उपरान्त पुंडरीक महाश्वेता का वियोग प्रवास शृंगार है ।

विप्रयोग की दशा में नायिका को पाँच अवस्थायें:—विप्रयोगान्तर्गत प्र[illegible]यमान में (प्रणयायोगयोः = प्रणय व्यापार में) नायिका उत्का (उद्गतं [illegible]नो यस्याः—उत् + कन् + टाप् = उत्कंठिता), प्रवास में प्रोषित–प्रिया, ईर्ष्यामान में कलहान्तरिता, विप्रलब्धा या खण्डिता होती है ।

सम्भोग शृंगार का लक्षण:—जहाँ नायक नायिका एक दूसरे के अनुकूल (दक्षिण, सहाय) होकर विलासी (विलासो भोगोऽस्यास्तीति) बनकर दर्शन, स्पर्शन आदि का निषेवन (सेवन) करते हैं वहाँ मोदयुक्त सम्भोग होता है । जैसे उत्तर रामचरित में—'अनुराग के सम्बन्ध से, परस्पर सम्मिलित कपोलयुक्त (गाल से गाल सटाये), अत्यन्त गोपनीय, अत्यन्त सूक्ष्म शब्दों का अक्रम पूर्वक (पौर्वापर्याभावयुक्त) प्रयोग करते हुए, भुजाओं द्वारा एक दूसरे का दृढ़ आलिंगन किये हुए सो रहे थे । इस प्रकार आनन्द में निमग्न रहने के कारण सारी रात्रि अल्पक्षण के समान हमलोगों के बिना जाने (अविरत, अज्ञात) ही बीत गई' ।[१]

---

१. किमपि किमपिमन्द-मन्द-मासत्तियोगा-
दविरलितकपोलं जल्पतोरक्रमेण ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सम्भोग शृंगार में नायिकाओं में लीला आदि दश चेष्टायें प्रयुक्त होती हैं। प्रिय के प्रति ये चेष्टाये दाक्षिण्य (अनुकूलता) मृदुता एवं प्रेम के अनुरूप (सदृश) होती हैं।

दशरूपक में नायक भेद:—दशरूपक के द्वितीय प्रकाश में धनंजय ने नायक-नायिकाओं के सामान्य एवं शृंगार-प्रधान लक्षण तथा भेद गिनाये हैं। उन्होंने रूपकों (नाटक प्रकरणादि) में परस्पर भेद का कारण वस्तु, नेता तथा रस—वस्तुनेतारसस्तेषां भेदक:—बताया है। नेता रसादि के भेद-प्रभेदानुसार रूपक भेदों की भी स्थापना हुई है। अतएव नायक-नायिकाओं के भी भेदादि का प्रतिपादन किया गया है।

नायक के सामान्य गुण:—सामान्यत: नायक विनीत मधुर, त्यागी, दक्ष, प्रियंवद (प्रियवचन बोलने वाला), रक्तलोक (लोक का अनुरागी) शुचि, कुशलवक्ता, रूढ़वंश (रूढ—रुह + क्तः = प्रसिद्ध), स्थिर (स्था + किरच् = निश्चल:) एवं युवा होता है। वह बुद्धि (बुद्धयतेऽनयेति = बुध + क्तिन् = निश्चयात्मिकान्तःकरणवृत्ति, ज्ञान) उत्साह (उत् + सह + घञ् = उद्यम:, अध्यवसायः) स्मृति, प्रज्ञा (एकाग्रता) कला (शिल्पादि = शिल्प समाधौ, समाधीयतेऽस्मिन् मनोजनैरिति = किसी गुण में मन का स्थिरीकरण), तथा मान (मन्यते बुद्धयतेऽनेनेति = चित्तसमुन्नतिः) से युक्त शूर (शूर = विक्रमे, शूरयति विक्रमतीति, विक्रम: = शौर्यातिशयः, अतिशक्तिता, क्रम: = शक्तिः आक्रमणम्) दृढ़ (दृह + क्तः कठिनः, बलवान्), तेजस्वी (तेजः दीप्तिः, तेजोऽस्त्यस्येति, तिजशिते, शितं = तीक्ष्णीकरणम्) शास्त्र-चक्षु (शास्त्र-ज्ञाता) होता है।[1]

नायक की विनीतता का उदाहरण:—'ब्रह्मवादी (ब्रह्मवादो वेदपाठोऽस्यास्तीति, ब्रह्मवाद: ब्रह्मणो वेदस्य वादो वदनं पठनमिति यावत् = वेदपाठः, ब्रह्म, क्ली०, बृंहति वर्धते निरतिशयमहत्वलक्षण वृद्धिमान् भवतीत्यर्थः, बृहि वृद्धौवेद: वेदान्तमते 'वस्तुसच्चिदानन्दाद्वयं ब्रह्म तथा अज्ञानादि-सकलजड़समूहोऽवस्तु) जन के द्वारा जिसके पवित्र चरणों की उपासना (उप + आस + टाप् =

सपुलकपरिरंभव्यापृतैकैकदोष्णो
रविदितगतयामा रात्रिरेव व्यरंसीत् ॥ उ० रा० १-२७

१. नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षो प्रियंवदः।
रक्तलोकः शुचिर्वाग्मी रूढवंशः स्थिरो युवा॥
बुद्धयुत्साहस्मृतिप्रज्ञाकलामानसमन्वितः।
शूरो दृढश्चतेजस्वी शास्त्रं चक्षुश्च धार्मिकः॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सेवा) की गई है जो विद्या (विद्यतेऽसौ इति, ज्ञानम्, शास्त्रम्, तत्तु अष्टादश-विषम्—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष, छन्द, ऋग्वेद, यजुर्वेद, साम-वेद, अथर्ववेद, मीमांसा, न्याय, धर्मशास्त्र, पुराण, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्ववेद, अर्थशास्त्र) और तप (तप दाहे, तपति, तापयति = देहक्लेशजनकं कर्म) के निधि (निधीयतेऽत्र इति । नि + धा धारणे = शेवधिः = शेवं सुखं धीयतेऽस्मि-न्निति, सेवधिः सेवः सेवनं धीयतेऽस्मिन्निति, सेवां विना निधिलाभाभावादि-त्यर्थः) हैं एवं तपस्या करने वालों में वरिष्ठ (अयमेवमतिशयेन वरं उरुं वा अतिशयेन इष्ठन = वरतमः, उरुतनः) आपके प्रति मैंने दैवात् (हठात्) विनयापचार (विनयाभाव रूपो अहिताचरण, अशिष्टाचार) किया है, अतः हे भगवान् ! यह नय (नम्रता) की अंजलि (रूप अभिवादन-प्रणाम) आप को निवेदित है आप प्रसन्न हों[१] । 'महावीरचरित' से उद्धृत यह पद्य राम की विनम्रता की अभिव्यक्ति करता है ।

नेता में माधुर्यः—नेता को मधुर (प्रियदर्शन) होना चाहिए । 'महाबीर चरित' से उदाहरण देखिये—"हे सुन्दर राम ! (रमते इति, रम्यतेऽनेनेति—रम् + घञ् बा = मनोज्ञः) आशय (अभिप्राय, -चित्त हृदगतो भाव) के सदृश ही तुम नयनाभिरामता को (नेत्र-प्रियता, प्रियदर्शनता—अभिरामः अभि-रमते मनोऽत्र, अभि + रम + आधारे घञ् = रुचिरः सुन्दरः) धारण करने वाले हो, (हृद्गत भावों के समान तुम्हारा स्वरूप भी सुन्दर है), तुम्हारे गुणों का रामणीयक (रमणीयस्य भावः) अप्रतर्क्य (अननुमेय) है, अतएव तुम सर्वथा (सर्व प्रकार से) मेरे लिए मनोहर (प्रिय आकर्षक—हृदयंगमाः मनो-हराः) हो ।"[२]

त्यागी नेताः—नायकत्यागी (त्यजतीति = दाता), सर्वस्वदाता हो यथा—'कर्ण ने त्वचा (त्वचति संवृणोति सर्वशरीरमिति, त्वक्) शिवि ने मांस, जीमूतवाहन ने जीव (जीव प्राणे, जीवः जीवनमिति, जीवितम्, प्राणः) तथा दधीचि ने अस्थियों (हड्डियों) को दे डाला । महात्माओं के लिए कुछ भी अदेय नहीं है ।"[३]

---

१. यद्ब्रह्मवादिभिरुपासितवंद्यपादे विद्यातपो व्रतनिधौ तपतांवरिष्ठे ।
दैवात्कृतस्त्वयि मया विनयापचारस्तत्र प्रसीद भगवन्नयमंजलिस्ते ॥

२. राम राम नयनाभिरामतामाशयस्य सदृशीं समुद्वहन् ।
अप्रतर्क्य गुणरामणीयकः सर्वथैव हृदयंगमोऽसि मे ॥

३. त्वचं कर्णः शिबिर्मांसं जीवं जीमूतवाहनः ।
ददौ दधीचिरस्थीनि नास्त्यदेयं महात्मनाम् ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

क्षिप्रकारी (दक्ष) नेता:—'दिविषदों (दिवि सीदतीति, षद् गतौ = वर्तते =स्वर्गस्य देवताओं) के तेज से रिद्ध (ऋद्धः समृद्धः सम्पन्नम्), त्रिपुर नामक दैत्य का अन्त करने वाला, (शिव का पिनाक) धनुष जो स्फूर्जित (स्फूर्जं व्रजनिर्घोषे, वज्रनिर्घोषो वज्रकर्तृक शब्दः) सहस्र वज्रों से निर्मित-सा प्रतीत होता है राम के समक्ष प्रादुर्भूत है (प्रकट हुआ है)। वत्स राम ने उस अचल (स्थिर) धनुष पर (अपना) दोर्दण्ड (बाहुरूपदण्ड) इस प्रकार स्थापित (आहितः) किया जैसे कलभ (कलेन = कलध्वनिः करेण, शुण्डेनेति यावत् भाति ।) अपना शुण्डार (शुण्डां रातीति-रा ग्रहणे) रखता है और सशब्द गुण (प्रत्यंचा) वाले उस धनुष को खींचकर तोड़ डाला ।'[1] यह उदाहरण भगवान राम की दक्षता (क्षिप्रकारिता, शीघ्रकारिता) का है ।

नायक की प्रियंवदता (प्रियभाषिता) :—'आप की उत्पत्ति (उत्+पत्+क्तिन् = उद्भव, जन्म) महर्षि जमदग्नि से हुई है, पिनाकी (पिनाकोऽस्त्यस्येति, शिवः पिनाकः, पाति रक्षति पनाय्यते स्तूयते वा, पालरक्षणे, पन् स्तुतौ वा) भगवान[2] देव (शंकर) आपके गुरु हैं। आपकी वीरता वाणी से नहीं वर्णित हो सकती, वह कर्मों से ही प्रकट है । सात समुद्रों से चिह्नितमही (मह्यते पूज्यते इति = पृथिवी) बिना किसी ब्याज के दान दे देना दान की सीमा है। सत्य, ब्रह्म एवं तप के निधि (हे भगवान्) तुम्हारी क्या (कौन-सी] वस्तु है जो अलौकिक नहीं है ।[3]

रक्तलोकनायक—'हे स्वामिन ! आप की कृपा से, आप के पुत्र वेदत्रयी के रक्षक श्रेष्ठ राम (भद्र = भन्दते इति = भदि कल्याणे = श्रेष्ठ साधु) के द्वारा हम लोग राजन्वत (राजा वाले) होकर, लब्ध क्षेम (कुशल प्राप्त कर), पूर्ण मनोरथ हो गये हैं ।'[4]

---

१. स्फूर्जद्वज्रसहस्रनिर्मितमिव प्रादुर्भवत्यग्रतो ।
रामस्य त्रिपुरान्तकृद्दिविषदां तेजोभिरिद्धं धनुः ।
शुण्डारः कलभेनयद्वदचले वत्सेनदोर्दण्डक
स्तस्मिन्नाहित एव गर्जितगुणं कृष्टं च भग्नं च तत् ॥

२. ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः ।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना ॥

३. उत्पत्तिर्जमदग्नितः सभगवान्देवः पिनाकीगुरु-
वीर्यं यत्तु न तद्गिरां पथि ननु व्यक्तं हि तत् कर्मभिः ।
त्यागः सप्तसमुद्रमुद्रितमहीनिर्व्याजदानावधिः
सत्यब्रह्मतपोनिधेर्भगवतः किं वा न लोकोत्तरम् ॥

४. त्रय्यास्त्राता यस्तवायं तनूजस्तेनाद्यैव स्वामिनस्ते प्रसादात् ।
राजन्वत्यो रामभद्रेण राज्ञा लब्धक्षेमाः पूर्णकामाश्च रामः ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

शुचि (निर्मल मन वाला, कामाद्यनभिभूत) नेताः—'हे शुभे ! (शुभ दीप्तौ, शुभा = मंगलजनिका) तुम कौन हो ? किसकी भार्या (परिग्रह, सर्वतो भावेन ग्रहणम्, परि + ग्रह) हो, मेरे पास तुम्हारे आगमन का क्या कारण है ? वशी मन वाले रघुवंशीयों के मन को परस्त्रीविमुख-प्रवृत्ति मान कर कहो (चक्षवदे, वदः कथनम् चक्षणं =कथनं) ।'[१]

वाग्मी (प्रशस्तावागस्त्यस्येति) नेताः—'हे परशुराम ! मुझे न तो अपने बाहु-बल का ही पता था और न त्र्यंबक (त्रीणि चन्द्रसूर्याग्नि रूपाणि अम्बकानि नेत्राणि यस्य) के कार्मुक (धनुष) की तनिमा का (अल्पता का) ही । इसी लिए मुझसे यह दोष हुआ । हे परशुराम ! मेरी चपलता को क्षमा करो । डिंभ (डिंभयति संहतो भवतीति = शिशुः) की दुर्विलासिता (नटखटी) बड़े लोगों को मुदित ही करती है ।'[२]

रूढ़वंश नेताः—नायक प्रसिद्ध वंशजात होना चाहिए । रामचन्द्र की कुलीनता का उदाहरण देखिये— दिनकर (दिनं क्ली०, द्यति खण्डयति महाकालमिति, दो छेदे + इनच् , दिवस, तं करोतीति, दिनस्य करः = सूर्यः) के वंश (वमति उद्गिरति पुरुषान् , वन्यते सेव्यते = कुलम्) में क्षत्रिय संतान (संतन्यते इति, तन + घञ' तन विस्तरे) रूपी मल्ली (वेलाफूल) के अम्लान (म्लानं-म्लं हृषंक्षये + क्तः = मलिनं, अम्लानं = अमलिनं = कान्तियुक्त) स्तवक (गुच्छक) के भ्रमररूप राजपुत्र उत्पन्न हुए । उनमें राम जो अचरम (चरमः = अन्तः पश्चिमः अचरमः, पूर्वः) अर्थात् सबसे ज्येष्ठ थे, ताड़कारूपी कालरात्रि (रात्रिविशेषः स तु कालः, कल्पान्तरात्रिरित्यर्थः) के प्रत्यूष (प्रत्यूषः पुन्प्रत्यूषति पूजति' कामुकामिति = प्रभातः) है तथा सुन्दर चरित्र रूपी कथा (वार्ता, प्रबन्ध कल्पना) रूपी कन्दली गुलमप्रभेदः कदली) के मूलकन्द हैं ।'[३]

---

१. का त्वं शुभे कस्य परिग्रहो वा किं वा मदभ्यागमकारणं ते ।
आचक्ष्व मत्वा वशिनां रघूणां मनः परस्त्रीविमुखप्रवृत्ति ॥ रघु०

२. बाह्वोर्बलन विदितं न च कार्मुकस्य त्रैयम्बकस्य तनिमा तत एष दोषः ।
तच्चापलं परशुराम मम क्षमस्व डिंभस्य दुर्विलसितानि मुदेगुरूणाम् ॥
हनुमन्नाटक

३. ये चत्वारो दिनकरकुलक्षत्र सन्तानमल्ली
मालाम्लानस्तवकमधुपा जज्ञिरे राजपुत्राः ।
रामस्तेषामचरमभवस्ताडकाकालरात्रि
प्रत्यूषोऽयं सुचरितकथाकन्दलीमूलकन्दः ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

स्थिर (वाणी मन क्रियादिक से अचंचल) नेता—'नीच व्यक्तियों के द्वारा विघ्न के भय से कोई काम आरम्भ ही नहीं किया जाता, मध्यम कोटि के लोग कार्यारम्भ करके (भी) विघ्नों से विहत (विशेषेणहतः विनष्टः) होने पर प्रारब्ध कार्य से विरत (विरामः वि+रम+घञ) निवृत्त हो जाते हैं, किन्तु बार-बार प्रतिहन्यमान (प्रतिहतः रुद्धः प्रतिस्खलितः) हो कर भी तुम्हारे सदृश उत्तम गुणों के व्यक्ति प्रारब्धकार्य का वहन करते हैं।[१]

नायक के उपर्युक्त सामान्य गुणों की परिभाषा एवं उदाहरण देकर धनंजय ने उनके भेदों का वर्णन किया है। शेष गुणों को 'स्पष्टमन्यत्' कहकर धनिक ने भी छुट्टी ले ली है। अन्त में इतना अवश्य कहा है—"नायक का युवक होना भी आवश्यक गुण है। उस (नायक) में बुद्धि और प्रज्ञा आदि का भी विकास होना चाहिए। बुद्धि ज्ञान (सामान्य ज्ञान) है एवं प्रजा विशेषकारी बुद्धि है। उदाहरण देखे—

"नृत्यकला के प्रयोग के सम्बन्ध में मैने उस भावुक (बाला) को जो-जो उपदेश दिये हैं, उन-उन प्रयोगों में कुछ विशेषताओं का समावेश कर इस प्रकार प्रदर्शन करती है मानो मुझे प्रत्युपदेशादि दे रही है।"[२]

नायकों के विशेष भेदः—नायकों के चार भेद होते हैं—ललित, शान्त, उदात्त एवं उद्धत। धीरता इन सब नायकों का अनिवार्य गुण है अतयेव 'धीर' शब्द विशेषण के रूप में उक्त चारों नायक-भेदों के साथ जड़ा रहता है जैसे—धीरललित, धीरशान्त, धीरोदात्त और धीरोद्धत।

धीरललितः—नायक निश्चिन्त, कलासक्त, सुखी और मृदु होता है। इस नायक के सचिवादि उसके एवं प्रजा के योग-क्षेम का सब विधान वा व्यवस्था करते हैं अतयेव वह निश्चिन्त रहता है। इस प्रकार चिन्ता-मुक्त होने के कारण ही यह ललित नायक गीतादि-कलाविष्ट, भोगप्रबण एवं श्रृंगार-प्रधान प्रवृत्ति का होने के कारण, वह सुकुमार आचरण वाला एवं मृदु (कोमल, अतीक्ष्ण स्वभाव का) होता है। 'रत्नावली से उदाहरण देखिये—'राज्य के शत्रु जीते जा चुके हैं, योग्य सचिव (यौगन्धरायण) के ऊपर राज्य का समस्त भार स्थापित

---

१. प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः
प्रारभ्यविघ्नविहता विरमन्ति मध्याः।
विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः
प्रारब्धामुत्तमगुणस्त्वमिवोद्वहन्ति।

२. यद्यत्प्रयोगविषये भाविकमुपदिश्यते मया तस्यै।
तत्तद्विशेषकरणात् प्रत्युपदिशतीव मे बाला।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कर दिया गया है। प्रजा उचित पालन-पोषण द्वारा लालित (लालनं, लल+णिच् +ल्युट = अत्यन्त स्नेह करणम्) स्नेहित है प्रजा (प्र + जन, प्रजायते इति=जन:) के अवशिष्ट उपसर्ग (उपप्लव, उत्पात) शान्त हो चुके हैं। प्रद्योत की पुत्री वासवदत्ता है, वसन्त का समय है तुम हो। इस प्रकार अपनी इच्छानुसार काम आवे। मैं तो इसे महान आनन्ददायक उत्सव मानता हूँ।'[1]

धीरशान्त नायकः—ऊपर बताये गये 'विनीत, मधुर, त्यागी' आदि नेता के सामान्य गुणों से युक्त द्विज आदि धीरशान्त कहे जाते हैं। द्विजादिकमें, धनिक की वृत्ति के अनुसार विप्र, वणिक (वैश्य), सचिवादि का ग्रहण किया जाता है। 'प्रकरण' नामक रूपकों के भेदविशेष का नायक धीरशान्त होता है। प्रकरण रूपक के नायक विप्र, वणिक्, सचिवादि में, यदि, उपर्युक्त, 'निश्चिन्तता, कलासक्ति, आदि धीरललित नायक के लक्षण पाये जाँय तथापि ब्राह्मणादि जाति के नायकों में शान्त गुण मानना ही होगा। लालित्य ब्राह्मणादि नायकों का स्वाभाविक गुण नहीं माना जाता। जैसे 'मालतीमाधव' का नायक 'माधव' एवं 'मृच्छकटिक' का नायक 'चारुदत्त' आदि शान्ति कोटि के नायक ही माने जाएँगे 'ललित'- कोटि के नहीं यथा—'मृच्छकटिक' में चारुदत्त' स्वयं अपना परिचय देता हुआ कह रहा है—

'जो मेरा गोत्र (कुल) सभाओं में चैत्यों (देवालय, यज्ञशाला—चैत्यं = चित्यस्य इदं = देवालयतमं' यज्ञायतनम; चित्यं = चीयते इति चिता, चीयतेऽसौ इति अग्निः, चि = चित्याग्नि चित्ये च) के निविड़ (निविरीष, घना, निरवकाश) ब्रह्मघोषों (वेदघोषों) से ध्वनित होता एवं सैकड़ों मखों (मखः पु० मखन्ति गच्छन्ति देवा अत्रेति; मख सर्पणे) के द्वारा परिपूत रहता था, वही आज मेरी निधन-दशा (मरण-दशा, निधनः=मरणम्, निधनं = नाशः, नि + धा+क्यु) के वर्तमान होने पर ऐसे नीच मनुष्यों (चाण्डालों) के द्वारा घोषणा (घुषिर वि शब्दने, लोकविज्ञापना योच्चैः शब्दितम्) में घोषित किया किया जा रहा है।'[2]

---

१. राज्यं निर्जितशत्रु योग्यसचिवे न्यस्तः समस्तो भरः
सम्यक्पालनलालिताः प्रशमिता शेषोपसर्गाः प्रजाः।
प्रद्योतस्य सुता वसन्तसमयस्त्वं चेति नाम्ना धृतिं
कामः काममुपैत्वयं मम पुनर्मन्ये महानुत्सवः।

२. मखशतपरिपूतं गोत्रमुद्भासितं यत्
सदसि निविडचैत्यब्रह्मघोषैः पुरस्तात्।
मम निधनदशायां वर्तमानस्य पापै-
स्तदसदृशमनुष्यैर्घुष्यते घोषणायाम्॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

धीरोदात्त नायकः—धीरोदात्त नायक महासत्व (शोक क्रोधाद्यनभिभूतान्तः सत्त्वः) अत्यन्त गम्भीर, क्षमावान् अविकत्थन (अनात्मश्लाघनः) स्थिर, निगूढ़ाहंकार (विनयच्छन्नावलेपः)……और दृढ़व्रती (अंगीकृत निर्वाहकः) होता है। यथा—

'हे गरुड ! अभी भी मेरी शिराओं के मुखों से रक्त स्यन्दित (स्यन्द स्रुतौ स्रुतिः क्षरणम्) हो रहा है, मेरी देह (देग्धि प्रतिदिनं, दिह वृद्धौ + अच् =शरीरं) में अब भी मांस (मांस, मन्यते इति, मन ज्ञाने) है। मै देख रहा हूँ, तुम अभी तृप्त नहीं हुए हो, तो तुम भक्षण से विरत क्यों हो गये ?'[१]

धीरोद्धतनायकः—धीरोद्धत नायक दर्प (दृप भावे घञ् दृप्यते इति अहंकृतिः, दृपहर्षे गर्वे)। और मात्सर्य वा ईर्ष्या (ईर्ष्य,णे ईर्ष्य+अच + टाप् = परोत्कर्षा सहिष्णुता, अक्षान्तिः) से (भूयिष्ठ बहु + इष्ठन् = प्रचुरः) माया (मीयते अपरोक्षवत् प्रदर्श्यते अनया इति) और छद्म (छद्यते आव्रियते स्वरूपमनेनेति=व्याजः) का परायण (आश्रय पर केवलामयनमासक्ति स्थानमिति परायणम्=तत्परं) अहंकारी, चल, चण्ड (चण्डते रुष्टो भवतीति=अत्यन्त कोपनः) और विकत्थन (स्वगुणशंसी) होता है।

श्रृंगारी नायकों के भेदः—नायक जब पूर्वानायिका के अतिरिक्त किसी अन्य नायिका में आसक्त हो जाता है तो पूर्वा (पहली) नायिका के प्रति उसका व्यवहार दक्षिण, शठ या धृष्ट प्रवृत्ति का होता है। इस प्रकार धीरोदात्तादि उपर्युक्त चार प्रकार के नायकों के श्रृंगार दृष्ट्या चार-चार और भेद किये जा सकते हैं। उक्त प्रत्येक नायक अन्य नायिकासक्ति की दशा में दक्षिण, शठ वा धृष्ट कहा जाता है। किन्तु वे ही नायक यदि एकमात्र स्वीया के प्रति अनुरक्त रहते हैं तो उनमें से प्रत्येक अनुकूल नायक कहा जायगा। इस प्रकार सब मिला कर नायकों के सोलह भेद होते हैं।

दक्षिण नायकः—ज्येष्ठा नायिका के साथ सहृदयतापूर्ण व्यवहार करता है। अन्य से प्रेम करता हुआ भी वह ज्येष्ठा के प्रति भी अपने प्रेम में कमी नहीं आने देता। वृत्तिकार धनिक उदाहरणस्वरूप स्वरचित पद्य ही प्रस्तुत करते हैं। नायिका की सखियाँ नायक की अन्यानायिका से आसक्ति की चेतावनी देती है किन्तु ज्येष्ठा नायिका नायक के, अपने प्रति किये गये प्रेमपूर्ण व्यवहार में कोइ अन्तर न पाकर उत्तर देती है:—

'हे सखि ! नायक मुझे देखते ही प्रसन्न हो जाता है। नाना प्रकार की

१. शिरामुखैः स्यन्दत एव रक्तमद्यापि देहे मम मांसमस्ति।
तृप्तिं न पश्यामि तवैव तावत्किं भक्षणात्त्वं विरतो गरुत्मन् ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

महान् (गुरवः-गुरु=महान्, अलघु) प्रेमपूर्ण क्रीड़ायें किया करता है। प्रतिदिन की उसकी विनम्रता अपूर्व है। किन्तु कुछ लोग बड़े विश्वास के साथ कुछ बातें कहते हैं (यह नायक किसी अन्य नायिका पर अनुरक्त है) मैं नायक की विकृति का विश्वास नहीं करती (यह नहीं विश्वास कर पाती कि नायक किसी अन्य नायिका पर अनुरक्त हैं)।"[1]

शठ नायकः—शठ नायक भी जब नायिकान्तर (अन्यानायिका) द्वारा अपहृतचित्त हो जाता है (उसका हृदय अन्या नायिका द्वारा प्रभावित हो जाता है) तो ज्येष्ठा के प्रति विप्रियकारित्व उसमें भी आ जाता है किन्तु दक्षिण नायक में सहृदयता शठ से अधिक होती है।

शठ नायक (ज्येष्ठा नायिका का) विप्रिय करता है किन्तु छिप कर यथा—

'(हे दुष्ट) अन्यानायिका की कांची (कटि का आभरण, रसना, मेखला = करधनी) में लगी हुई मणियों के रणित् (शब्द कण) को अकस्मात् सुन कर (मेरी सखी का) अलिंगन करते समय ही तुमने भुजग्रन्थि (बाहु-पाश) को प्रशिथिल (बहुत ढीला) कर दिया तो मैं इन बातों को क्या कहूं। तेरे सब वचन (उच्यतेऽनेनइति=वचनम्) घृत-मधुमय (विष-युक्त) हैं। उसी विष से भ्रमित मेरी सखी कुछ भी नहीं जान पाती।'[2]

धृष्ट नायकः—अन्य वा कनिष्ठा (अति युवती, जघन्यजा चरमजा) नायिका के साथ शृङ्गार चेष्टायें करने वाला नायक जब नखक्षतादि सम्भोग=चिह्न अंगविकारों से युक्त नायिका के सम्मुख आता है एवं उसके उक्त संभोग-चिह्न नायिका को उसकी गुप्त चेष्टाओं से अवगत करा देते है, तो वह धृष्ट कहा जाता है।

धृष्टनायक की धनंजय कृत परिभाषा अपूर्ण है। नायिकान्तर सम्भोग के

---

१. प्रसीदत्यालोके किमपि किमपि प्रेमगुरवो
रतिक्रीडा कोऽपि प्रतिदिनमपूर्वोऽस्य विनयः।
सविश्रंभः कश्चित्कथयति च किंचित्परिजनो
न चाहं प्रत्येमिप्रियसखि किमप्यस्य विकृतिम्॥

२. शठान्यस्याः कांचीमणिरणितमाकर्ण्य सहसा
यदाश्लिष्यन्नेव प्रशिथिलभुजग्रन्थिरभवः।
तदेतत्क्वाचक्षे घृतमधुमयत्वद्बहुवचो
विषेणाघूर्णन्ती किमपि न सखी मे गणयति॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अमरु श० ७१.

अनन्तर रतिकृत अंग-विकृतियों को धारण कर नायक का नायिका के सम्मुख आना एवं उक्त विकारों का ज्येष्ठा नायिका के सम्मुख व्यक्त हो जाना ही नायक की धृष्टता का परिचायक नहीं कहा जा सकता। नायिका-कृत भर्त्सनाओं के उपरान्त भी नायक यदि निःशंक बना रहे, केवल तब ही वह निर्लज्ज धृष्ट कहा जा सकता है। सम्भव है नायक उक्त रति चिह्नों की स्थिति से स्वयं भी न परिचित हो पाया हो, अथवा परिचित होकर भी उनको छिपाने का प्रयत्न करता हुआ नायिका के सम्मुख आवे एवं, रहस्य के उद्घाटित होने पर, नायिका द्वारा तर्जित होने पर पश्चात्ताप करता वा क्षमा याचना करता, कुकृत्य पर लज्जित होता दिखाई पड़े तो वह दक्षिण नायक ही कहा जाएगा धृष्ट नहीं। साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने परिभाषा को सर्वथा स्पष्ट कर दिया है। धृष्ट नायक की विश्वनाथ कृत उक्त परिभाषा है—

"कृतागा अपि निःशंकस्तर्जितोऽपि न लज्जितः
दृष्ट दोषोऽपि मिथ्यावाक्कथितो धृष्ट नायकः।"

अर्थात् अपराधी होने पर भी नायक यदि नि.शंक हो एवं डाँठ-फटकार पर भी वह लज्जित न हो, दोषों के प्रकट हो जाने पर भी, नायिका के सम्मुख झूठ बोलता जाये तो वह धृष्ट नायक कहा जाता है। अमरुशतक से, धनंजय द्वारा उद्धृत उदाहरण देखिये—नायक कनिष्ठा नायिका का सम्भोग कर, रतिकृत अंगविकारों से विकृत ज्येष्ठा के समीप आया है। नायिका की क्या दशा होती है देखें:—'लाक्षा (लक्ष्यते अनयेति=राक्षा, अलक्तक पलाशी=लाह) के लक्ष्म (लक्ष्मत्यनेन, लक्ष्यते इति वा=चिह्नम्) ललाट के दोनों फलकों पर कण्ठ में अंगद (बाजू) नामक आभूषण का अंकन, वक्त्र (वक्ति अनेनेति=मुखम्) में कज्जल की कालिमा, नेत्रों में ताम्बूल (पर्ण=पान) का रंग, एवं अपर (इतर अन्य) राग (नेत्र की लालिमा जो निद्राच्छेद=निद्रा के खण्डित, बाधित होने के कारण उत्पन्न हुआ है), विद्यमान हैं। प्रातःकाल प्रिय के कोपकारी पूर्वोक्त मण्डन (मण्डनं=मण्डयते अनेन इति मड़िभूष) संभोग चिह्नरूप अलंकार, बहुत समय तक देखकर, मृग (मृगयते अन्वेषयति तृणादिकं, मृग्यते वा इति= पशुमात्रम्, मृग्यते अन्विष्यतेऽसौ व्याधैः=हरिणः) के समान नेत्रों वाली नायिका के रोषातिशयजनित श्वासोच्छ्वास लीलाकमल के गर्भ में ही समाप्ति को प्राप्त हो गये। अर्थात् अपने कोप का गोपन करने के लिए नायिका ने हाथ में मनोरंजनार्थ किये गये क्रीड़ा-कमल में ही सौरभाघ्राण के व्याज से अपने श्वासोच्छ्वासों को भर दिया।'[१]

१. लाक्षालक्ष्म ललाटपट्टमभितः केयूरमुद्रा गले
वक्त्रे कज्जलकालिमा नयनयोस्ताम्बूलरागोऽपरः।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

यहाँ प्रतिनायिका का चरण-प्रणाम गम्य है क्योंकि चरणों के अलक्तक राग के ही कारण नायक का भालपट्ट लांछित हुआ है। इसी प्रकार प्रत्येक अंग-विकृति, सम्भोग चिह्न, नायक की किसी न किसी रति-चेष्टा की व्यंजना करती है जैसे गले में केयूर-मुद्रांकन नायककृत कनिष्ठ नायिका के कंठालिगन की, मुखपर लगी कज्जल की कालिमा नायककृत नायिका के कज्जलमण्डित नेत्रों के चुम्बन का, नेत्रों में लगा ताम्बूल राग नायिका कृत नायक के नेत्र चुम्बव की अभिव्यक्ति करता है।

अनुकूल नायक:—वह है जो एक ही नायिका में अनुरक्त रहता है जैसे उत्तर राम चरित्र के राम। उदाहरण देखिये—

'सीता का प्रेम सुख एवं दुःख दोनों में अद्वैत है, एक रूप है। जब दम्पति में एक सुखी है तो दूसरा भी सुखी है और जब एक दुःखो है तो दूसरा भी दुःखी है। यह प्रेम सब दशाओं में सम्पत्ति में, विपत्ति में भी परस्पर अनुसरण-शील है, अनुगुण है। अनुकूल इसी प्रेम में हृदय का विश्राम है अर्थात् सांसारिक व्यवहार-भार से परिश्रान्त होने पर यह प्रेम ही श्रम का अपनोदन (अप + नुद् ल्युट = खण्डन, दूरीकरण) करता है। दाम्पत्य में स्थित यह रस (प्रीति वृद्धत्व प्राप्त होने पर भी (जरसा) नष्ट नहीं होती, यौवन में कौन कहे यह प्रेम ऐसा है जो समय से अर्थात् आवरण (वरण = विवाह से लेकर अत्ययात् (मरणपर्यन्त) परिपक्व और उत्कृष्ट प्रेम के रूप में स्थिति रहता है। पूर्वोक्त दम्पति का (सुमानुषस्य, सुमानुषं तु दाम्पत्यम्) ऐसा अविच्छे रूपी कल्याण किसी प्रकार बड़े पुण्य से प्राप्त होता है।[१]

परिस्थिति अथवा स्वभाववश एक ही नायक उपर्युक्त भेदानुसार क प्रकार के लक्षणों से युक्त भी पाया जाता है, जैसे रत्नवाली नाटिकादि नायक वत्सराजादि। किन्तु कोटि-निर्धारण काल में नायक के प्रधान ए आप्रबन्ध-समाप्ति-लक्षण ही ग्रहणीय है। रत्नावली का वत्सराजकामदेव-पू तक अनुकूल नायक है। क्योंकि इस अवधि तक वह वासबदत्ता मात्र अनुरक्त होने के कारण एक नायिका-निरत ही है। तदनन्तर रत्नाव

दृष्ट्वा कोपविधायि मण्डनमिदं प्रातश्चिरं प्रेयसो
लीलातामरसोदरे मृगदृशः श्वासा समाप्ति गता ॥

१. अद्वैतं सुखदुःखयोरनुगतं सर्वास्ववस्थासु यद्
विश्रामो हृदयस्ययत्र जरसा यस्मिन्नहार्यो रसः।
कालेनावरणात्ययत्परिणते यस्नेहसारेस्थितं
भद्रं तस्य सुमानुषस्य कथमप्येकं हि तत्प्राप्यते ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

(सागरिका) के प्रति भी आकर्षण उत्पन्न होने पर वह दक्षिण नायक का स्वरूप धारण करता है। परिस्थितियों के आग्रह से वह कभी वासवदत्ता का विप्रिय करता, गूढ़ाचरणरत भी दिखाई पड़ता है। यहाँ वह धृष्ट वा शठ का-सा आचरण करता प्रतीत होता है। किन्तु सम्पूर्ण नाटिका में वत्सराज का व्यवहार वासवदत्ता से भी समराग का है। अपनी ज्येष्टा-नायिका वासवदत्ता से भी वह समान प्रेम रखता है। अतः अन्ततोगत्वा वह दक्षिण ही ठहरता है।

अनुकूल नायकः—वह है जो एक ही नायिका में अनुरक्त रहता है जैसे उत्तरराम चरित के राम। उदाहरण देखिये—

उपर्युक्त १६ प्रकार के नायक (धीरोदात्त, धीरललित, धीरशान्त एवं धीरोद्धत तथा इनमें प्रत्येक के दक्षिण, अनुकूल, धृष्ट और शठ=४×४=१६) इन सोलहों के ज्येष्ठ, मध्यम, अधम भेद से कुल ४८ भेद हुए। दशरूपककार ने नायकों के उपर्युक्त ४८ भेदों का लक्षण-निरूपणोपरान्त नायक के सहायकों का भी उल्लेख किया है जो निम्नलिखित है—

नायकों के सहायकः—दृश्यकाव्य अथवा रूपक के तीन भेदक तत्व माने गये हैं। रूपकों का सामान्य लक्षण है अनुकरण जो रूपक के नाटक, प्रकरणादि दशों भेदों में पाया जाता है। अतः इन रूपकों के भेदक तीन तत्व कहे गये हैं। इन्हीं तत्वों के आधार पर रूपकों के दश भेद गिनाये जाते हैं जो इस प्रकार हैं—

नाटक, प्रकरण, भाण, व्यायोग, समवकार, डिम, ईहामृग, अंक, वीथी और प्रहसन। इनके भेदक तत्व हैं—वस्तु (कथानक) नेता तथा रस। वस्तु के दो प्रकार हैं—आधिकारिक और प्रासंगिक। इनमें मुख्य वस्तु आधिकारिक एवं अङ्गरूप प्रासंगिक कथा-वस्तु कही जाती है। फल पर स्वामित्व प्राप्त करना अधिकार है; उस फल (अन्तिम उद्देश्य) का स्वामी अधिकारी कहा जाता है। फल-प्राप्तिपर्यन्त नीयमान इतिवृत्त अर्थात् रूपक के अन्तिम उद्देश्य की निवृत्ति प्राप्ति के समय तक जो कथा निरन्तर चलती रहती है वह आधिकारिक कही जाती है। रामायण में राम-सीता का वृत्तान्त आधिकारिक है। आरम्भ से लेकर रावण-बध, सीता की प्राप्ति, राम-राज्याभिषेक तक की कथा आधिकारिक कथा-वस्तु है। जो कथा आधिकारिक कथा के प्रयोजन के लिए, अर्थ-सिद्धि के लिए, होती है किन्तु प्रसंगतः जिसमें स्वार्थ, अपना फल भी प्राप्त हो जाता है, अपना उद्देश्य भी सिद्ध हो जाता है वह प्रासगिक वृत्त है। प्रासंगिक वृत्त भी दो प्रकार का होता है—पताका तथा प्रकरी। जो

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रासंगिक कथा अनुबन्ध प्रयोजन सहित होती है तथा दूर तक चलती रहती है वह पताका है और केवल एक ही प्रदेश तक सीमित रहने वाली कथा प्रकरी है। सुग्रीव-विभीषण का वृत्तान्त पताका एवं शबरी आदि का वृत्तान्त प्रकरी है।

नायक का प्रधान सहायक पीठमर्दः—पताका का नायक पीठमर्द कहा जाता है। नायक के अन्यान्य सहायकों में पीठमर्द विचक्षण (वि + चक्ष, चक्ष वेद वदः कथनम्, विशेषेण चष्टे, धर्माभिमुखादिशतीति, पण्डितः, निपुण, विचक्षणः विविधं द्रष्टा) होता है। यथा रामायण में सुग्रीव। यह (पीठमर्द) नायक का अनुचर भक्त एवं गुणों की दृष्टि से नायक से कुछ ही ऊन (ऊन अवतीति, अव + नक् अव = अल्पं=हीनं) होता है।

विटः—नायक का अन्य सहायक विट है जो एकविद्य होता है। एकविद्य अर्थात् नायक के लिए उपयोगी गीत नृत्यादि विद्याओं में से एक का वेत्ता होता है।

विदूषकः—विदूषक नायक का हास्यकारी सहायक है। विदूषक अपने विकृताकार वेषादि की साधनता से हास्य उत्पन्न करता है। इसका विकृताकार वेषादित्व हास्यकारित्व के कारण ही न्याय्य एवं लभ्य (लब्धव्य) होता है। वृत्तिकार धनिक की व्याख्या—'इसका विकृताकार वेशादित्व' यदि 'हास्यकारित्व' के साधक वा कारक न हो तो वह लभ्यन्याय्य, उचित नहीं माना जा सकता।

प्रतिनायकः—नायक का इत्थंभूत (इस प्रकार घटित, नियोजित घट्संघाते, संयोगे) प्रतिपक्षी प्रतिनायक होता है।
यथा राम का रावण, युधिष्ठिर का दुर्योधन। प्रतिनायक लुब्ध (लोभी अभिलाषी तृष्णक् गृधनुः लोभ। लुभ + घञ=परद्रव्य, अभिलाषः, लिप्सा) धीरोद्धत स्तब्ध (जड़ीकृतः, घमंडी) पापकृत (पापी, 'पापं-पाति रक्षति अस्मादात्मानमिति), व्यसनी (व्यसनं = भोगासक्तिः) और नायक का रिपु (रपवाधि वदे वद कथनम्=अनिष्टं रपतीति, रिफति = अर्फोदानश्लाघा हिंसा निन्दा युद्धानि रिफकत्थनयुद्धनिन्दाहिंसादानेषु रिफति रिपफति मोचणार्थं युद्धयते हिनस्ति वा निंद्यते च सत्पुरुषैः) होता है।

नायक के सात्विक गुणः—नायक में पौरुष (पुरुषत्वयुक्त, पुरअग्रगत्याम्, पुरति अग्रे गच्छतीति पिपर्त्ति पूरयति वलं यः पुर्षुशेते य इति वा) निम्नलिखित आठ सात्विक गुण होते हैं:—शोभा (शुभ दीप्तौ=शोभन्तेऽनया = दिप्ति, छवि छ्यति, छिनत्ति, दूरीकरोति मालिन्यादि कुवेशमिति), विलास (वि + लस + घञ्, लस क्रीड़े = केलिः, शृंगार भाव चेष्टा), माधुर्य (मधुरस्य भावः, मधुरत्वं, मधु माधुर्य एतीति, दानं ग्रहणं, मिष्टरसः), गाम्भीर्य (गम्भीरस्य भावो

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

गंभीरे भवं वा, गंभीरं = गच्छति जलमत्र, गभीरकं = अगाधं, गहनं), स्थैयं (स्थिरस्य भावः, दृढ़ः, स्थिरः तिष्ठतीति), तेजसी (तेजः, तेजस् तिजशिते शत तीक्ष्णीकरणम् = तेजयति तेज्यतेऽनेनवा दीप्तिः), ललित (ललईप्से, इच्छा आप्तुमिच्छा सुन्दरः, ईप्सतः) एवं औदार्य (उदारस्य भावः, उदारः उत्कृष्टमासमनन्तात् रतिः=दाता, महान्)।

शोभाः—नीच (हीन जातिकर्मः, निकृष्टः) के प्रति घृणा, अधिक के प्रति स्पर्धा (स्पर्द्ध संहर्षे, संहर्षः परिभवेच्छा, संहर्षः सं + हृष + नव्, हृष हृष्टो, हृष्टिश्चितोत्साहः) शौर्य (शूरस्य भावः कर्म वा, शूर + ष्यञ् = शक्तिः, शूरः = शूरयति, विक्रामतीति, यद्वा शवति वीर्यं प्राप्नोतीति, शूर + अच् = शूर विक्रमे, विक्रमः = वि + क्रम + अच् विशेषेण क्रामतीति, क्रमः = शक्तिः, आक्रमणम्) एवं दक्षता (दक्ष, स्यदे, स्यद इह शीघ्रकरणम्, दक्षते=शीघ्रमुत्पादयतीत्यर्थः) शोभा नामक सात्त्विक गुण के तत्त्व हैं।

नीच के प्रति घृणा के उदाहरणः—"उत्ताल (उत् = शब्देक्तः = प्रश्नः विकल्पः, सन्देह उद्धम्, अत्यर्थम् उत् + तल + घञ् तल गतौ, प्रतिष्ठतौ = विकरालः उत्कटः = उद्गतः कटः आवरणं आवरको वा यस्य=मत्तम् विषगम्) ताड़का के उत्पात (उत्पतति अकस्मादायाति यः, अजन्यम् जन्यते - सम्पाद्यते येनापि चन्द्रदिवाग्रासादिः वज्रपात उल्कापात भूकंपादिः) को देखकर भी रामचन्द्र प्रकंपित (भयभीत) न हुए। उस (ताड़का) के प्रमाथ (प्र + मथ + भावे घञ्= प्रमथनम्=प्रमथः, प्र + मी वधे + भावे अच्=वधः निपत्यपेषणम् भूमौ प्रमाथ इति कथ्यते) में नियुक्त (संलग्न) होने पर (ताड़का के) स्त्रैण (स्त्रिया इदम्, स्त्री + नञ् = स्त्री स्वभावः) के कारण (कर्त्तव्य सम्बन्धी) विचिकित्सा (सन्देह) में पड़ गये।"[1]

गुणाधिक (जो गुणों में अधिक हो) से स्पर्धा—"आगे (विद्यमान्, पुरतः = अग्रतः) से स्थित इस स्थली को देखो जहाँ क्रीड़ा-किरात (लीलया किरात वेशधारी) हरं (हृ + अच् = हरति पाणनिति = शिव) के चूड़ान्तर (चूड़ा = चोलयति मस्तकाद्युपरि उन्नता भवतीति, चुल उन्नतौ = मस्तक) को किरीटी (किरीटो मुकटो अस्ति अस्य = अर्जुन) ने कोदण्ड (कुं शब्दे = को शब्दायमानो दण्डोऽस्य = धनुः) से सरभस (रभणामिति वेगः) ताड़ित (ताड़िभावे ल्युट् = आघात) किया। हिमविश्नि (हिमं हन्ति उष्माणामिति = शीतलवस्तु) के अद्रि (पर्वत) पर, सुभद्रापति अर्जुन की आश्चर्य-युक्त कथा

१. उत्तालताडकोत्पातदर्शनेऽप्यप्रकंपितः ।
नियुक्तस्तत्प्रमाथाय स्त्रैणेन विचिकित्सति ॥ वीरचरित

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

को सुनकर जिन शिव ने अपने दोर्दण्ड (दोः स दाम्पत्यनेनेति = बाहुः दण्डके समान बाहुः) के मण्डल (गोल, चक्र) को मन्द-मन्द सहलाया—उनकी जय हो)"[१] यहाँ महादेव के मन में अर्जुन के प्रति स्पर्धा का भाव है।

शौर्य-शोभा—नायक की अतिशय वीरता (वीरः, वीरयतीति, वीर विक्रान्तौ, यद्वा विशेषेण ईरयति दूरीकरोति शत्रून् वि + ईर वा अजति क्षिपति शत्रुन्, अज + स्फायितञ्चीत्यादिना रक्, अजेर्वी, वीर + अच् वा) को शौर्य कहते हैं। यथा—

वृत्तिकार धनिक के निम्नलिखित पद्य में आहत और मूर्च्छित नायक का, संज्ञा प्राप्त होने पर, पुनः रणांगण में आने का वर्णन है—

'यद्यपि उस वीर के चरणाग्रभाग उसकी ही आंतों से बंध गये हैं (तथापि) मूर्च्छा दूर होने पर वह स्वाधीन (खड़ा) हो जाता है। उसके व्रणयुक्त अङ्ग शस्त्रों से निचित (पूरित, व्याप्त, नि + चि + क्तः = मिचीयते स्मेति) हैं। रोमांच से शरीर वर्म्मित (कृतसन्नाह, आच्छादित, वर्म्म वृ + मनिन् = वृणोति आच्छादयति शरीरमिति) है, भग्न (भनज् + क्तः, भग्नं = पराजितम्) योद्धाओं का उद्वलन (प्रोत्साहन, सशक्तीकरण), एवं परभटों (शत्रु-सैनिकों) का तर्जन कर रहा हैं। विजयश्री का धाम (दधाति गृहस्थादिकं, धीयते द्रव्यजातमस्मिन्निति वा) वह वीर धन्य है जो उस विशाल रणस्तम्भ पर पताका के समान स्थित है।"[२]

दक्ष शोभा—नायक की दक्षता, कुशलता, क्षिप्रकारिता भी शोभा का ही अङ्ग है। उदाहरण देखें 'क्षिप्रकारी नेता सम्बन्धी।'

विलासः—नायक का द्वितीय सत्विक गुण विलास है। सधैर्य (धैर्यं = धीरस्य भावः कर्म वा, धीरः = धियं बुद्धि ईरयतीति, ईर गतौ, प्रेरणे, यद्वा धियं रातीति, रा दाने ग्रहणे) गति (गम + भावे क्तिन् = गमनकर्म) और दृष्टि (दृश् + करणे क्तिन् चक्षुः, यद्वा, दृश् भावे क्तिन् = बुद्धि) एवं स्मितसहित

---

१. एतां पश्य पुरःस्थलीमिह किल क्रीड़ाकिरातो हरः
कोदण्डेन किरीटिना सरभसं चूडान्तरे ताड़ितः।
इत्याकर्ण्य कथाद्भुतं हिमनिधावद्रौ सुभद्रापते-
र्मन्दं मन्दमकारि येन निजयोर्दोदण्डयोर्मण्डलम्॥

२. अन्त्रैः स्वैरपि सन्यताग्रचरणो मूर्च्छा विरामक्षणे
स्वाधीनव्रणिताङ्गशस्त्रनिचितो रोमोद्गमं वर्म्मयन्।
भग्नानुद्वलयन्निजान्परभटान्सन्तार्जयन्निष्ठुरं
धन्यो धाम जयश्रियः पृथुरणस्तम्भे पताकायते॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

(स्मितं = स्मि ईषद्धसनम् + क्तः = ईषद्धास्यम्) वचन को विलास कहते हैं।

उदाहरण—'इसके नेत्र लोकत्रितय (तीनों लोकों) के बलोत्कर्ष की तृण के समान अवज्ञा करनेवाले हैं। इसके दर्शन से ऐसा प्रतीत हो रहा है कि यह (कुश) तीनों लोकों को तृणवत् समझ रहा है। गाम्भीर्य और दर्प-युक्त गति पृथ्वी को अवनत कर रही है। बाल्यावस्था में ही पर्वत की भाँति गौरव को धारण करता हुआ, यह क्या वीर-रस अथवा अभिमान ही आ रहा है।[2] युद्धस्थली में कुश को विकट (विषम, विकराल, विशाल) परिक्रमण (पादविक्षेपं, क्रमुपादविक्षेपे + भावे घञ क्रीडार्थं पद्भ्यां गमनं विहारः) करते देखकर यह राम की उक्ति है।

माधुर्य:—संक्षोभ (क्षुभ्+भावे धञ् चित्तचांचल्यम्) के अवसर पर भी श्लक्ष्ण (अल्प) विकार को माधुर्य कहते हैं। यथा खर-दूषण के युद्धार्थ उपस्थित होने पर भी राम में मधुर विकारोत्पत्तिः—

करि (करी 'न्' पु० करः शुंडः यस्यास्तीति इनिः = हस्ती) के कलभ (कलेन करेण शुंडेनेति यावत् भाति कल+भा+कः=हस्तिशावकः) के दन्त की द्युति को (मुषित् मुष कर्मणिक्तः = चोरित द्रव्यम् 'मुष लुंठने) चुराने वाले (दांतों की द्युति के समान गौरवर्ण वाले) जिस जानकी के कपोल (कंमुखं पोलति वा पुलमहत्त्वे कर्मण्यम् = गाल) में स्मर (स्मरः स्मरयति उत्कंठयतीति, स्मृ+णिच्+अच् कामदेवः, कामः) से स्मेर (विकशित, प्रफुल्ल) पुलक (पुल+स्वार्थे कन्, पुल उच्छ्रितो = उच्छ्रितरुचीभाव पुलः पोलति उच्छ्रितो भवतीति= रोमांचः) रूपी उद्द्रुमर (उत् अत्यर्थम् + द्रुमरः द्रुः द्रवति उर्ध्वंगच्छति=वृक्षः द्रुमिवतेऽनेनेति=कण्टकः अर्थात् अत्यन्त कण्टकित, रोमांचित) गण्डस्थल वाले अपने कमलमुख को अथवा पाठान्तर (स्फारोड्डमर पुलकं=स्फारः प्रवृद्धः, प्रचुरः + उड्डमरः वा उड्डाभरः=अत्यर्थं अत्यन्त डभरः=डाभरः=दर्पः, आटोपः) अत्यन्त प्रवृद्धदर्प से युक्त एवं पुलकित कमलवत् (सुन्दर) मुख को बारम्बार देखते हुए, और रजनिचर (रजन्यां चरतीति चर + चरेष्टः इति टः=राक्षसः=रक्षन्त्यस्मात् रक्षः, रक्ष एव राक्षसः) की सेना (सिनोति शत्रुमिति, षिञ् बन्धने) के कलकल (कलादपि कलः तुमुल, कोलाहलः) शब्द को सुनते हुए रघुवंशियों के परिवृढ (परिवृढः परि सर्वतोभावेन वृहति वर्धते इति अधिपः, प्रभुः) श्रीरामचन्द्र अपनी जटाजूट (जटति परस्परं संलग्न भवतीति जटा तासां जूटः समूहः जटाजूटः)

---

२. दृष्टिस्तृणीकृतजगत्त्रयसत्त्वसाराधीरोद्धतानमयतीव गतिर्धरित्रीम्।
कौमारकेऽपि गिरिवद्गुरुतां दधानो वीरो रसः किमयमित्युत दर्प एव॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

की ग्रन्थि (ग्रंथ दर्भे + भावे घञ्, दर्भो=ग्रंथनम्, ग्रन्थः गुम्फः, ग्रन्थिः संदर्भे भावकरणाद्वो यथा पथं इः) को दृढ़ कर रहे है।"[१]

गाम्भीर्यः—गांभीर्य (गंभीरस्य भावो, गंभीरे भवं=गंभीरता, गंभीरं, गभीरं=गच्छति जलमत्र, गभीरकम् =अगाधम) नायक का वह गुण है, जिसके प्रभाव से, विकारोत्पत्ति का अवसर वा कारण होते हुए भी, विकार (वि + कृ + घञ् विकारः, प्रकृतेरन्यथाभावः, परिणामः विकृतिः) उपलक्षित नहीं होता। 'माधुर्य' में मृदुविकृति का अनुभव (उपलंभः=उप + लभ + घञ् = अनुभवः) होता है किन्तु गाम्भीर्य में उस (विकार) की अनुपलब्धि (अप्राप्ति) होती है, उसका सर्वथा अभाव होता है। यथा—

"जब उन्हें राम को अभिषेक (अभि+सिच् + भावे घञ्=स्नानं) के लिए बुलाया गया और वन के लिए विसृष्ट (वि + सृज् + क्तः = प्रेषितः) किया गया तब दोनों ही दशाओं में राम में अत्यल्प आकार—विभ्रम (आकारः= आकृतिः रूपं शरीरं, विभ्रमः=विपर्ययः, व्यतिक्रमः) नहीं लक्षित हुआ।[२]

स्थैर्यः—अनेक विघ्नसमूह के होने पर भी व्यवसाय (वि + अव + सो + घञ्, अवनिश्चयः=अनुष्ठानम् कार्यकरणं, अभ्यासः, अनुशीलनम्) से अचांचल्य, अभ्रमण, अकंपन को स्थैर्य कहते हैं। यथा—'मैंने आप जैसे पूज्यजनों का व्यतिक्रम (उपेक्षा) किया है अतः प्रायश्चित्त (प्रायस्य पापस्यचित्तं विशोधनम्) करूँगा शस्त्र (शसत्यनेनेति शस वधेक्त्रः) के धारण जैसे महाव्रत को दूषित नहीं करूँगा।"[३]

तेजः—अधिक्षेप (निन्दा, अपमान्) को प्राणात्यय (मृत्यु) पर्यन्त सहन न करना तेज है। यथाः

"बोलो वे कितने नये कुम्हड़े के फल की भाँति होते हैं। मनस्वी (प्रशस्तं मनोऽस्त्यस्येति) व्यक्ति अंगुली-संकेत आदि पर नहीं जीते।"[४]

---

१. कपोले जानक्याः करिकलभदन्तद्युतिमुषि
स्मरस्मेरं गण्डोद्‌ड्डमरपुलकं (स्फारोड्डमरपुलकं) वक्त्रकमलम्।
मुहुः पश्यन् शृण्वन् रजनिचरसेनाकलकलं
जटाजूटग्रन्थि द्रढयति रघूनां परिवृढः।

२. आहूतस्याभिषेकाय विसृष्टस्यवनाय वा।
न मया लक्षितस्तस्य स्वल्पोऽप्यांकार विभ्रमः॥

३. प्रायश्चित्तं चरिष्यामि पूज्यानां वो व्यतिक्रमात्।
न त्वेव दूषयिष्यामि शस्त्रग्रहमहाव्रतम्॥

४. ब्रुत नूतन कूष्मांड फलानां के भवन्त्यमी।
अंगुलीदर्शनाद्येन न जीवन्ति मनस्विनः॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

ललितः—स्वाभाविक एवं मधुर शृंगारपरक इंगितों तथा चेष्टाओं को ललित कहते हैं । स्वाभाविक शृंगार मधुर होता है। स्वाभाविक शृंगार चेष्टायें ही ललित नामक सात्विक गुण हैं। यथा धनिक का ही पद देखें—

"लावण्य एवं मन्मथ (मनो मथ्नाति विकरोतीति=कामदेवः, कामचिन्ता) के विलास (अंगभंगी, क्रीड़ा) से युक्त स्वाभाविक, सुकुमार (सुष्ठु कुमारयति नन्दति तुष्यति=कोमलः) एवं मनोहर विजृंभितो (वि+जृंभ+क्तः = चेष्टाओं, जृंभ=मुखादि विकाशः) वाले उस नायक के द्वारा मेरे ही क्या, मेरे उपदेष्टा (उपदेशः मन्त्र कथनम्=उपदेशकर्त्ता) के भी हृदय में विषम (कठिन, विकट, प्रतिकूल) ताप (तपदाहे, सन्तापे = संतापः, कृच्छं दुःखम्) क्या नहीं उत्पन्न करता अर्थात् मेरे और मेरे समान अन्य रमणियों को भी संतप्त करता है।[१]

औदार्यः—प्रियवचनों के द्वारा जीवित (जीव+भावेक्तः=जीवितं, जीवनं) तक जीवनपर्यन्त दान देना तथा सज्जनों का उपग्रह (उपयोग, आनुकूल्य) औदार्य है। प्रियवचन द्वारा जीवनदान का उदाहरण देखें 'धीरोदात्त नायक' के अन्तर्गत् हे गरुड़ अभी भी……'इत्यादि सदुपग्रह का उदाहरण— 'यह हम, यह, हमारी, पत्नी, हमारे कुल का प्राण यह लड़की, बाह्य पदार्थों में हमारी कोई आस्था अपेक्षा (आकांक्षा, अभिलाषा) नहीं है जिससे तुम्हारा काम हो, वह कहो।[२]

नायिका भेदः—नायिका भी नायक-सामान्य गुण-योगिनी होती है (नायक में मिलने वाले विनय, माधुर्यादि गुणों से युक्त होती है) वह तीन प्रकार की होती है—स्वस्त्री, परस्त्री एवं साधारण स्त्री (स्वा = स्वीया = स्वकीया=स्वस्त्री, अन्या = परकीया = परस्त्री एवं साधारण स्त्री)। 'उत्तर-रामचरितम्' की सीता स्वीया हैं, 'मृच्छकटिकम्' की वसन्तसेना सामान्या है।

स्वीयाविभाग-गवं सामान्य लक्षणः—शील (सद्वृत्तम्, वृत्तं = चरित्रम्) एवं आर्जव (ऋजुता, सरलता) लज्जा, पुरुषोपचार-निपुणता, पातिव्रत्य, अकुटिलता (कुट् वक्रीभावे) आदि गुणों से युक्त स्वीया के तीन विभाग किये गये हैं—मुग्धा, मध्या एवं प्रगल्भा। शीलवती स्वीया का उदाहरण— 'देखो (प्रेक्षध्वं प्रेक्षणं = प्रेक्षते पश्यन्त्यनेनेति, प+ईक्ष+करणे ल्युट्) कुल-

---

१. मुक्ता फलेषुच्छायायास्तरलत्वमिवान्तरा ।
प्रतिभाति यदंगेषु तल्लावण्यमिहोच्यते ॥ [उ० नीलमणिः]

२. एते वयममी दारा कन्येयं कुलजीवितम् ।
ब्रूत येनात्र वः कार्यमनास्थां बाह्यवस्तुषु ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

बालिकाओं के यौवन, लावण्य, विभ्रम (मदरागहर्षजनित विपर्यासो विभ्रमः) विलास (प्रणयक्रीड़ा) आदि (कामचेष्टायें) प्रिय के प्रवसित (प्रवासः = प्रवसन्त्यास्मिन्विति, विदेशः, प्रवसितः प्रोषितःविदेशस्थः) होने पर प्रवसित (प्रोषित् , वस+क्तः इट् = प्रकृष्ट दूरं उषितः स्थितः = दूरीभूतः) होते एवं घर आने पर आ जाते हैं।"[1] आर्जवादियुक् (आर्जवादियोगिनी, युक् युज्=युज्यते परस्परमिति, समाधत्ते) नायिका का उदाहरण—

धन्य (धन्यः=धनाय हितं=धनरवे, रवः=रूयतेस्तूयते इति, स्तू + क्तिन= स्तुतिः, स्तवः=स्तूयतेऽनेनेति=प्रशंसा, हितं=धृतं = धा धारणे=प्रशंसनीय=सुकृति पुण्यवान्) व्यक्तियों के घर के कलत्र (कडचते शिष्यते, कड्० शासवते डलयोरे- कत्वस्मरणात् डस्य लः कड् शासने बाहुलकात् अत्रन्=भार्याः) स्त्रियों के हसित (हंसी) अविचरित, मुग्ध (सुन्दर) एवं उनके भ्रमित (भ्रमण चाल) विलास (कामजक्रीड़ा) के अंश से रहित होते हैं। उनका भणित (भण शब्दे भणितं कथितं शब्दितं=भणितः, भण्यते इति। भण + क्तिन्=वाक्यम्) स्वभावतः सरल होता है।"[2]

लज्जावती नायिका का उदाहरणः—धन्य व्यक्तियों की स्त्रियाँ लज्जा (लज्जनमितिलसन् व्रीडने = लाज) के पर्याप्त (परि + आप + भावेक्तः=यथेष्टम्; परि = सर्वतोभावः व्याप्तिः, आप = व्यापने) प्रसाधन (प्रसाध्यतेऽनेनेति, प्र+ साध् + ल्युट् = वेशः, साध सिद्धौ निष्पादने = साधनं उपकरणम्) से युक्त होती है, यथेष्ट लज्जाशीला होती है। (अन्य पुरुषों के द्वारा) परितृप्ति (परिः= सर्वतोभावः, तृप्तिः = तृप प्रीणने + भावेक्तिन् प्रीणनं = प्री + स्वार्थे णिच् + ल्युट् तृप्तिकरणं, तर्पणं, अवनं अव् प्रातौ, तृप्तौ) से निष्पिपासित (नि=निषेधः, उपरमः उपरतिः, विरतिः पिपासा = पातुमिच्छेति = तृष्णा) उपरत, विरक्त रहती है। अविनय (विनयाभावः) के प्रति उनमें दुर्मेधा (दुर्मेधाः = दुर्निन्दिता मेधाधारणवती बुद्धिर्यस्य, निन्दा = निन्दनमिति जुगुप्सा, कुत्सा, गर्हणं, निन्दिता

---

१. कुलबालिआए पेच्छह जोव्वणलाअण्ण विब्भम विलासा।
पवसन्ति व्व पवसिए एन्ति व्व पियेधरं एत्ते॥
कुलवालिकायाः प्रेक्षध्वं यौवनलावण्यविभ्रमविलासाः।
प्रवसन्तीव प्रवसिते आगच्छन्तीव प्रिये गृहमागते॥]

२. हसिअमविआर मुद्धं भमिअं बिरहित अविलाससुच्छायम्।
भणिअं सहाव सरलं धण्णाणघरे कलत्ताणम्॥
[हसितमविचारमुग्धं भ्रमितं विरहितविलास सुच्छायम्।
भणित स्वभावसरल धन्यानां गृहे कलत्राणाम्॥]

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

निन्दास्य जातेति = निन्दायुक्तः धिक्कृतः, अपध्वस्तः, निर्भत्सितः) होती है अर्थात् विनयाभाव की निन्दा करती है = अविनय से उसे घृणा होती है।[१]

मुग्धास्वीयानायिकाः—'मुग्धानायिका नववयः (स्) (नवः नूयते स्तूयते नुस्तुतौ = नूतनः, नूनं वयः (स्) = वयते वेति अजतीति वा, वयगतौ, अजगतौ वा + असुन् = यौवनम्)[२] एवं नवकामा (नूतन कामेच्छायुक्त) ! रति (मैथुन, अनुराग) में प्रतिकूल, क्रोध (क्रुध् + भावे घञ्, कोपः, रोषः) में मृदु (कोमल, अतीक्ष्ण) होती है। मुग्धा नायिका में यौवन तथा संभोगेच्छा, दोनों का प्रथमाविर्भाव होता है, अतएव यह समागम से डरती है। सरलस्वभावा होने के कारण यह सरलता से प्रसन्न भी हो जाती है।

वयोमुग्धा का उदाहरणः—शैशव (शिशुता, शिशोर्भावः, शिशुः = श्यतीतिश्यते रूपम् शो निशाने, निशानमिहतीक्ष्णीकरणम् अल्पीकरणम्) और यौवन (यूनोभावः यूनी योगं मिश्रणं) के व्यतिकर (मिश्रण) के कारण नायिका की मिश्र (मिश्र युत्याम्, युतिः संयोजनम्) वयरम्य (रम + यत् = मनोज्ञ, रम क्रीड़े) है। स्तन (स्तनः स्तन्यते शब्दयते कामुकैः, स्तनयति कथयति वक्षः शोभामिति वा, स्तन् शब्दे घञ्) का भार (भ्रियते इति, भृञ भरणे, गुरुत्वञ्च, गुरुत्व गुणवद्वस्तु), उचित उन्नति (उदय, समृद्धि, समुन्नति) को नहीं प्राप्त हुए हैं। रेखाओं (लिख्यते इति, लिख विलेखने, रलयोरैक्यात् लस्यरत्वम् = चिह्नं, चिह्नलक्षणे = चिह्नयतेऽनेनेति चिह्नयते येन तत्) द्वारा उद्भासित (भास भासि दीप्तौ) यह निम्न (निकृष्टाभ्रा अभ्यासः शीलमत्र) और उन्नत (उत् + नम् = क्तः उत् उद्धं नयनं) त्रिवली (त्रिगुणितावलिस्त्वक् तरंगः) अभी स्पष्ट (स्पश्यतेस्म = स्पश + णिच + क्तः = स्पशं = ग्रन्थवाधयोः = ग्रन्थः ग्रथ्यते विरच्यते इति = विरचितं, व्यक्तं, स्फुटम्) नहीं हुई हैं। इसके मध्यमभाग में ऋजु (सरल), आयत (दीर्घ = लम्बी) और कपिश (पीतकृष्णामिश्रितवर्णः) रोम-पंक्ति बन गई है।'[३]

---

१. लज्जापज्जत्तपसाहणाइं परतित्तिणिप्पिवासाइं।
अविणअदुम्मेहाइं धण्णाणं घरे कलत्ताइं॥
[लज्जापर्याप्तप्रसाधनानि परितृप्तिनिष्पिपासानि।
अविनयदुर्मेधांसि धन्यानां गृहे कलत्राणि॥]

२. कौमारं पंचमाब्दान्तं पौगण्डं दशमावधि।
कैशोरमापंचदशात् यौवनं च ततः परम्॥ [श० कल्प० पृ० १३०]

३. विस्तारी स्तनभार एव गमितो न स्वोचितामुन्नतिं
रेखोद्भासकृतं बलित्रयमिदं न स्पष्टनिम्नोन्नतम्।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

काममुग्धा यथाः—अब उसकी दृष्टि (दृश् + करणेक्तिन् = चक्षुः) अलसता (आलस्य, क्रियामन्दता, क्रिया-जड़ता; अव्यवसाय; न लसति व्याप्रियते; लस + अच् , लस क्रीड़े, शिल्पयोगे) का पोषण वा पूरण धारण (भृ= भृतिर्भरणं भ्वादि पक्षे भृतिः पूरणम्) करती है। शिशुओं के साथ क्रीड़ा में वद्धादरा (आदरयुक्त, सम्मानयुक्त) नहीं है। बालकों के साथ खेल में मन नहीं लगाती। सम्भोग की वार्ता करती हुई सखियों की ओर श्रोत्र (कान) को प्रेषित करती है। पुरुषों के अङ्क (गोद) में आने का अत्र शंका के कारण अनादर, त्याग (अय = अनादर, त्याग एतं आगतम्) करती है अतः वह उनकी गोद में पहले के समान आरोहण नहीं करती, नहीं चढ़ती, जाती। अब यह बालिका धीरे-धीरे नवयौवन के संयोग का आश्रय, ले रही है।[१] यौवनावस्था प्राप्त करने पर नायिका बचपन में व्यवहारों का धीरे धीरे त्याग कर रही है।

रत-वामा यथाः—व्याहृत (व्याहरण=वार्तालाप, कथन) होने पर (भगवान् शंकर द्वारा) वार्तालाप के अवसर पर (पार्वती) प्रतिवचन नहीं बोलतीं. प्रतिउत्तर नहीं देतीं। अंशुक (वस्त्र) का अवलम्बन (ग्रहण) करने पर जांने की इच्छा करती हैं। शयन (शी स्वप्ने + ल्युट्=शय्या, निद्रा) का सेवन (उपभोग, आश्रयण) करते समय पराङ्मुखी (पराक् प्रतिलोमगामि मुखं यस्या, विमुखी, पराचीना=पराञ्चति, अनभिमुखी भवतीति) रहती थीं तथापि पिनाकी (पिनाकोऽस्त्यस्येति=शिवः, पिनाकः=शिवधनुः पु०क्ली०=पातिरक्षति, पनाप्यते स्तूयते वा पन् स्तुतौ वा) के लिए (पार्वती के ये व्यापार) अनुराग के कारण थे[२]। यह उदाहरण सुरतक्रीड़ा से भयभीत होने अतएव वामवृत्ति का आचरण करने वाली मुग्धा नायिका का है।

क्रोध (कोप) में मृदुः—प्रथमजनित (प्रथमोद्भूत, जन=जनौ, जनिर्जन्म, प्रादुर्भावे, स्फुटीभावे) मन्यु (मन्यते ज्ञायतेऽसौ, क्रोधः) के विकार

मध्येऽस्या ऋजुरायतार्धकपिशा रोमावली निर्मिता
रम्यं यौवनशैशवव्यतिकरोन्मिश्रं वयो वर्तते ॥

१. दृष्टिः सालसतां बिभर्ति न शिशुक्रीडासु वद्धादरा
श्रोत्रे प्रेषयति प्रवर्तितसखीसम्भोगवार्तास्वपि ।
पुंसामंकमपेतशंकमधुना नारोहति प्राग्यथा
बाला नूतनयौवनव्यतिकरावष्टभ्यमाना शनैः ॥

२. व्याहृता प्रतिवचो न सन्दधे गन्तुमैच्छदवलम्बितांशुका ।
सेवते स्म शयनं पराङ्मुखी सा तथापि रतये पिनाकिनः ॥
(कु० सं० सं० ८)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(परिणाम, विकृति) से अपरिचित, विनम्र (झुकी हुई) भुजाओं वाली नयनों से स्यन्दित (स्यन्द स्रुतौ, क्षरणे=स्रवित, प्रवाहित होते हुए) होते हुए सलिल (सलगतौ + इलच्, सलतिगच्छतीति=जलम्) से सिक्त ओष्ठ वाली, रुदन (रुद रोदे, रोदो अश्रुविमोचनम्) करती हुई भी वह बाला कितव (कित + वा + कः, कित=संशये, वा गगने, गमनमिह वायु कर्तृकमेव कितं वायति, कितेन वातिवा,=वंचकः धूर्त्तः, धूर्यति हिनस्तीति) चरित (चर आचारे, व्यवहारे (वि + अव + हृ+घञ् क्रिया) करने वाले प्रिय के द्वारा अंक (गोद) में आसंजित (सञ्ज्=मेलने=मिलना, धारण करना अथवा सज्जः=प्रभूतः, सं + भू+क्तिन् = सम्यग् धारणें, आसज्जन) की जा कर चिबुक (चीवग्रहणे, चीव्यते आदराद्यर्थं गृह्यतेऽसौ) एवं अलिक (अल्यते, भूष्यते अल + कर्मणि इकन् = ललाट) उठाया जाकर अकृत्रिम (अ + कृत्रिमः, डु्कृञ् + क्तिः ततः कृत्या कृयया निर्वृत्तः, त्रेमंप् नित्यं इति मप् = करणाज्जातः, रचितः न कृत्रिमः स्वाभाविक) विभ्रम (हाव भेदः, स्त्रीणां श्रृंगारभावज क्रियाविशेषः) युक्त वह बाला (षोडशवर्षीया वह स्त्री) चुम्बिता हुई।"[१] अपराधी नायक से मृदुस्वभावा, मुग्धा-नायिका रुष्ट है, नेत्रों में अश्रु-स्रवण हो रहा है, अधर अश्रुसिक्त है, वह रुदन कर रही है किन्तु ईर्ष्यामान-जन्य इस रोष कोप का प्रयोग कैसे हो, कैसा व्यवहार कैसा आचरण किया जाय यह उसे ज्ञात नहीं। ऐसी विभ्रम, भ्रान्ति से युक्त बाला का चिबुक एवं ललाट उठाकर अश्रुआर्द्र अधर को प्रिय ने चूम लिया।

मध्यानायिका:—स्वाया मध्या नायिका उद्यत यौवन-अनंगा (समुन्नत यौवन-काम से युक्त) एवं मोहः (मोहनमिति मुह भावे घञ्, मुह वैचित्त्ये, वैचित्त्ये ज्ञानरहितो भावः मोहनं मुह्यतेऽनेनेति = सुरतं = सुष्ठं रतं रममं यत्र = सम्भोग) के अन्तिम क्षण तक सुरतक्षमा (रतिक्रीड़ा में समर्थ) रहती है।

उद्यत् यौवना (यौवनवती) मुग्धा का उदाहरण:—नायिका के भ्रू विलासों ने उसके आलाप (आङ् + लप् + घञ् , लप भावे, भाषः कथनम् = संभाषण) को विरल (अल्प) कर दिये हैं। चलते समय (यातं) उसके बाहुओं की विक्षिप्ति (प्रेरण, हिलने, फेकने की क्रिया) लस रही (विराज

---

१. क्रोधः स्मितं च कुसुमाभरणादियांचनातद्वर्ज्जनं च सहसैव विमुण्डनञ्च।
आक्षिप्य कान्तवचनं लपनं सखीभिर्निष्कारणोत्थितगतं वद विभ्रमं तत्॥
वा—वल्लभप्राप्तिवेलायां मदनावेशसंभ्रमात्।
विभ्रमो हारमाल्यादिभूषास्थानविपर्ययः। [३० नील० उ० क०]

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

रही, शोभा दे रही) है। उसके नितम्ब अपनी प्रथिमा (पृथुत्व, पृथुलता) से मनाक् (अल्प) मध्य (कटि) में स्थित नीवीग्रन्थि (कटिभाग, कटी=कटयते आव्रियते वस्त्रादिना कटी के वंध की गांठ) को प्रतनु (अल्प, कृश=तनिष्ठ अतिशयेन तनुः) बना रही है। उसका उत्पुष्पित (उत् अतिशयेन पुष्यत् विकसित प्रफुल्लित होता हुआ) पार्श्व कुचों (कुचति संकुचतीति, कुचसंकोचे = स्तनः) के शिखरों एवं उर तक (अन्तः निकट तक) मूर्छित (मूर्त वाधित) हो रहा है अथवा उरपट उसके पार्श्व उत्पुष्पित एवं उसके कुचशिखर मूर्छित हो रहे है। निश्चय ही उस हरिण शिशुदृश् नायिका की यौवनश्री स्मर की कोटि (अग्रभाग) से छू दिया गया है।[1]

मध्या उद्यत अनंगा का उदाहरणः—'स्मर (कामदेव) की नवीना नदी के पूर से वहित पुनः गुरु (महान्) सेतु से, यद्यपि विधृत (विशेषेण धृत धृ स्थितो) होकर उनके अपूर्ण मनोरथ प्रान्तभाग में तट के समीप स्थित है, मनोरथों को नियन्त्रित किया गया है तथापि लिखित (गतिहीन, चित्र लिखित) प्रख्य, चित्रलिखित के समान, अपने अङ्गों से परस्पर उन्मुख होकर (मध्याकामावती प्रियायें) नयनरूपी नलिनी के नाल से प्रिय के दर्शन रूप रस को आकर्षित कर पी रही है।[2]

मध्याकामावती नायिकायें, यद्यपि स्त्रीसुलभ लज्जा के कारण, स्पष्टतः (खुलकर) अपनी कामनाओं की तृप्ति नहीं कर पातीं, तथापि एक दूसरे के अंग-दर्शनमात्र से वे रसानुभूति करती हुई सन्तुष्ट हो जाती हैं।

मोहान्तसुरतक्षमामध्याः—'रति (सम्भोगः, रतं=रमणमिति। रम् + भावेक्तः = मैथुनम्) के समय, तब तक ही, महिलाओं के विभ्रम विराजते (सुशोभित होते) है, जब तक कुवलय दल के समान स्वच्छ आभा वाले उनके नेत्र मुकूलित नही हो जाते।'[3] अतिशय रत्यानन्द के कारण, जब तक,

१. आलापान्भ्रूविलासो विरलयति लसद्बाहुविक्षिप्तियातं
नीवीग्रन्थि प्रथिम्ना प्रतनयति मनाङ्मध्यनिम्नो नितम्बः।
उत्पुष्पत्पार्श्वमूर्च्छत्कुचशिरमुरो नूनमन्तः स्मरेण
स्पृष्टा कोदण्डकोट्या हरिणशिशुदृशो दृश्यते यौवनश्रीः॥

२. स्मरनवनदीपूरेणोढाः पुनर्गुरुसेतुभिर्यदपिविधृतास्तिष्ठन्त्याराद पूर्णमनोरथाः॥ तदपिलिखित प्रख्यैरङ्गैः परस्परमुन्मुखाः नयननलिनी नालाकृष्टं पिबन्ति रसं प्रियाः॥

३. तावच्चिअ अरइसमए महिलाणं विब्भमा विराअन्ति।
जाव ण कुवलयदलसच्छहाइं मउलन्ति णअणाइं॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

महिलायें संज्ञाशून्य वा निद्राविभूत नहीं हो जाती तब तक वे सुरतोचित क्रीड़ाये करती रहती हैं। मध्या नायिकाओं की मानवृत्ति की दृष्टि से धनंजय ने उनके तीन भेद माने हैं—धीरा, अधीरा और धीराधीरा नायक को अन्य नायिका-सम्भोगरत पाकर मध्यधीरा सोत्प्रास[1] वक्रोक्तियों से नायक को खिन्न बनाती है, पीड़ित करती है, धीरा-धीरा रोती हुई भी कृतापराध नायक को ताने मारती है और अधीरा कोपयुक्त परुषाक्षर (कठोर शब्द) सुनाती है।

मध्याधीरा द्वारा कृतापराध प्रिय को सोत्प्रास वक्रोक्ति से खेदित करने का उदाहरण:—"हम लोग इस (विटप:=पल्लव) के दान के योग्य नहीं हैं। जो पूर्वोक्त परामर्शक नायिका रहः (स्) (एकान्त, निर्जन स्थान में) में तुमको पीती है (तुम्हारे अधर का पान कराती है, चुम्बन लेती है,) तुम्हारा पालन (रक्षण) भी करती है, जाओ यह विटप उसीको दो जिससे सदृश (पदार्थों) का सर्वदा के लिए योग (मिलन, संयोग) हो जाय।"[2] यहां श्लिष्ट 'विटप' शब्द में विटप (वह नायिका जो नायकरूपी विट अर्थात् कामतन्त्र-कलाको विद का पालन, रक्षण करती है) तथा 'विटप' (पल्लव शाखासमुदाय) का उपमानोपमेय भाव स्पष्ट है। कृतापराध नायक अन्य संभोग-दुखिता ज्येष्ठा मध्याधीरा नायिका के तुष्टीकरणार्थं उक्त शाखा-पल्लव-समुदाय प्रसाधनार्थं अर्पित करना चाहता है। अतएव यह नायिका की सोत्प्रास वक्रोक्ति है।

धीराधीरा मध्या की साश्रु सोत्प्रास वक्रोक्तिः—'हे बाले (मुग्धे), 'नाथ, 'हे मानिनि ! रोष का त्याग करो,' 'रोष से मैंने (आप का) क्या कर लिया ?', 'मुझे खेदित किया (मुझमें खेद उत्पन्न किया)', 'आप ने मेरे प्रति कोई अपराध नहीं किया है। सब अपराध मेरे हैं', 'तब क्यों गद्गद (स्खलित) वचन बोलती बोलती हुई रोती हो ?' 'मैं किसके आगे रोती हूँ ?' 'निश्चय ही यह मेरे

[तावदेव रतिसमये महिलानां विभ्रमा विराजन्ते।
यावन्न कुवलयदलस्वच्छाभानि मुकुलयन्ति नयनानि ॥]

१. सोल्लुण्ठनन्तु सोत्प्रासं चटुचाटुप्रियोदितम् ॥ श० क० ४१५ ॥
"सोत्प्रास आच्छुरितकमवच्छुरितकं तथा।
अट्टहासो महाहासो हासः प्रहास इत्यपि ॥
दुर्वादः स्यादुपालम्भस्तत्र यः स्तुतिपूर्वकः।
सोल्लुठनं सनिन्दस्तु यस्तत्र परिभाषणम् ॥

२. न खलु वयममुष्यदानयोग्याः पिबति च पाति च यासको रहस्त्वाम्।
व्रज विटपममुं ददस्व तस्यै भवतु यतः सदृशोश्चिराय योगः ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

आगे', 'मैं तुम्हारी क्या हूँ ?' 'दयिता (प्रिया) हो', (तुम्हारी दयिता) नहीं हूँ इसी लिए रोती हूँ ।"[१]

यह उदाहरण मानिनी धीराधीरा मध्या का है । वाक्योपवाक्य-अलंकार-युक्त सोत्प्रास वक्रोक्तियों से युक्त है । नायिका मध्या, कुछ विद्वानों के अनुसार, प्रगल्भा है । मध्या वा प्रगल्भा नायिका को 'बाला' कहना उपचार वक्रता है, वक्रोक्ति है । रुष्टा नायिका के रंजनार्थ असत्य भाषण है । मुग्धाबाला और मध्या वा प्रगल्भा नायिकाओं में स्वभाव की भिन्नता होते हुए भी दोनों में अभेद स्थापित करना भी उपचार है । अन्यार्थक वाक्यों की अन्यथायोजना वक्रोक्ति है । प्रिय को नाथ कहना प्रियत्वाभाव का व्यंजक है । 'न मेऽपराध्यति' 'आपने अपराध नहीं किया है' में विपरीत लक्षणा से सापराधता सिद्ध है । 'मैं तुम्हारी कौन हूँ ?' 'तुम्हारी दयिता नहीं हूँ' आदि में नायक की परकीया-रति व्यंग्य है ।

अधीरा साश्रु परुषाक्षराः—'(यह) चला जाए, इसके रहने से क्या लाभ ? इसे छोड़ दो, छोड़ दो, हे सखि ! इसका आदर करना व्यर्थ है । (अन्य नायिका द्वारा) खंडित, दष्ट क्षत अधरों वाले प्रिय को नेत्रों से मैं देख नहीं सकती ।"[२] अपराधी नायक को अन्य संभोग दुःखिता नायिका की सखियाँ रोकना एवं दोनों में सन्धि कराना चाहती हैं । कुपिता ज्येष्ठा मध्या नायिका ईर्ष्यामानातिशय के कारण शठनायक की सम्मुख उपस्थिति भी सहन नहीं कर सकती एवं अनादरपूर्वक उसे दृष्टिपथ से दूर कर देने को कटिबद्ध प्रतीत होती है ।

मध्यानायिका की काम-वासना, रति-क्रीड़ा, कामोद्दीपनजन्य सात्विक भाव एवं स्त्रियोचित श्रृंगारिक चेष्टाओं के विविध चित्रकाव्यों में उपनिबद्ध होते एवं प्राप्त होते हैं ! मध्यानायिका मुग्धावस्था को पार कर प्रौढ़ता, प्रगल्भता की ओर प्रवण रहती है । मुग्धा-सुलभ व्रीडा से उसके काम-व्यवहार प्रायः उपहित (युक्त, लक्षित, उपाधियुक्त) नहीं रहते । तथापि अतीत मुग्धात्व के अभ्यासों से वह पूर्णतः मुक्त भी नहीं हो पाती । मुग्धात्व एवं प्रागल्भ्य

---

१. बाले नाथ विमुञ्च मानिनि रुषं रोषान्मया किं कृतं
खेदोऽस्मासु न मेऽपराध्यति भवान्सर्वेऽपराधा मयि ।
तत्किं रोदिषि गद्गदेन वचसा कस्याग्रतो रुद्यते
नन्वेतन्मम का तवास्मि दयिता नास्मीत्यतो रुद्यते ॥

२. यातु यातु किमनेन तिष्ठता मुञ्च मुञ्च सखि मादरं कृथाः ।
खण्डिताधरकलंकितं प्रियं सक्नुमो न नयनैर्निरीक्षितुम् ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

के मध्य में स्थित होने के कारण एक ओर रति-क्रीड़ा में झिझक एवं सक्रियता का अभाव तो दूसरी ओर कामुकता का प्रच्छन्न किन्तु उद्दाम वेग भी मिलता है। एक उदाहरण नायिका की स्वयमनभियोगकारिता (रति में प्रथमतः सक्रियभाग न लेने की प्रवृत्ति) एवं व्रीड़ानुपहित सात्विक अनुभावों का देखिये—'स्वेद के अंग (अश्रु-जल) की कणिकाओं से वदन (मुख) के अंचित (पूजित, सुन्दर) हो जाने, रोमांच (रोमहर्षण, रोमोद्भेद) गुरु (महान्) विश्रम्भ (प्रेम, प्रणय) पयोधरभरोत्कम्प (स्तनों में अतिशय कंपन) की वृद्धि हृदय में निर्भर (अत्यन्त) दुर्वार (दुर्निवार = जिसको सहसा रोकना कठिन हो) स्मर (काम) का वेग होने पर भी तन्वंगी (कृश शरीरवाली) नायिका प्रिय के साथ सुरत में इसलिए प्रवृत्त नहीं हुई (नैवाभियुक्तः) कि उसे प्रिय के द्वारा बलात् केशकर्षण (हठपूर्वक बालों को खींचने की क्रिया) एवं घनाश्लेष (दृढ़, गाढ़ आलिंगन) रूपी अमृत का लोभ था"।[१] उपर्युक्त कामजन्य सात्विक अनुभावों का प्रकट होना नायिका की कामातुरता का स्पष्ट प्रमाण है तथापि प्रिय द्वारा बलात् केशकर्षण एवं गाढ़ालिङ्गन के लोभ से नायिका स्वयमेव प्रथम आलिङ्गन प्रवृत्त नहीं हुई।

प्रगल्भा नायिका:—प्रगल्भा नायिका यौवनान्धा (यौवनावेश के कारण कर्त्तव्यान्ध), स्मरोन्मत्ता (अत्यन्त कामुका,) प्रगल्भा (ढीठ, निर्लज्ज), दयित (प्रिय) के आंगक (कोमलअंग) विलीयमान-सी (घनश्लेष से अंगों में समा जाने के समान), आनन्दतिरेक से संभोगारम्भ में ही वह अचेतना (संज्ञाहीन, चेतनाहीन) हो जाती है।

गाढ़यौवना प्रगल्भा:—इस नायिका के उर (वक्षस्थल) में स्तन अत्यन्त उन्नत (उठे हुए) हैं, दोनों नयन दीर्घ हैं, भ्रू-द्वय अत्यन्त वक्र हैं, एवं उसके वचन (उक्ति) तो उन (भृकुटी-द्वय) से भी वक्रतर हैं। उसका मध्य (कटि-प्रदेश) तनु (अल्प, पतला) है, नितम्ब गुरु (विशाल) हैं। इस अद्भुत यौवनवाली नायिका की गति मन्द (सालस, मन्थर) है।[२]

स्मरोन्मत्ता प्रगल्भा:—'मैं नहीं जानती कि प्रिय के मेरे सम्मुख आकर

---

१. स्वेदाम्भःकणिकाञ्चितेऽपि वदने जातेऽपि रोमोद्गमे
विश्रम्भेऽपि गुरौ पयोधरभरोत्कम्पेऽपि वृद्धिगते
दुर्वारस्मरनिर्भरेऽपि हृदये नैवाभियुक्तः प्रिय—
स्तन्वंग्या हठकेशकर्षणघनाश्लेषामृते लुब्धया ॥

२. अभ्युन्नतस्तनमुरो नयने च दीर्घे वक्रे भ्रुवावतितरां वचनं ततोऽपि ।
मध्येऽधिकं तनुरतीवगुरुर्नितम्बो मन्दा गतिः किमपि चाद्भुतयौवनायाः ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रिय बातें करते समय, क्या मेरे सारे अङ्ग नेत्रता वा कर्णता को प्राप्त हो जाते हैं ? (क्या मेरे सब नेत्र वा कान ही हों जाते हैं) ।[१] भावार्थ यह कि कामातुरतावश नायिका प्रिय के रूपदर्शन तथा वचनश्रवण से मानों तृप्त ही नहीं होती ।

सुरत (रति-क्रीड़ा) प्रगल्भा:—"कान्त (प्रिय) के तल्प (शय्या) पर आने से मेरी नीवी (कटि'वस्त्रबन्ध) की ग्रन्थि स्वयं (प्रिय के कर्तृत्व बिना) ही विगलित (स्खलित) हो जाती है । प्रश्लथमेखला (ढीली करधनी) के गुण (डोरे) से धृत (उलझ कर) मेरा वस्त्र (साड़ी आदि) नितम्बों पर आकर स्थित हो (टिक) जाता है । हे सखि । उस (प्रिय) के अंगो में सग (संगम, मेलन स्पर्श) होने पर मै केवल इतना (उक्त बातें) ही जानती हूँ । वह (प्रिय) कौन है, मैं कौन हूँ, रति क्रीड़ा क्या है, किस प्रकार की है (इन सारी बातों का) मुझे कुछ भी स्मरण नहीं"[२] यह अवस्था सुरतकालीन मोह वा सुधि-विभोरता की है जो प्रगल्भकामुकताजन्य है।

प्रगल्भा की कोप चेष्टा:—कृतापराध नायक के प्रति अन्य सम्भोग दुःखिता प्रगल्भा नायिका द्वारा की गई कोप-चेष्टाओं के आधार पर प्रगल्भा नायिकाओं के ये तीन भेद किये गये हैं—धीरा, अधीरा और धीराधीरा ।

धीरा—प्रगल्भा प्रिय से कुपित होने पर या तो सावहित्था (आकार अंगविकारों, चेष्टाओं का गोपन करते हुए) उसका आदर करती है अथवा सुरत (रतिक्रीडा) में उदासीनता, उपेक्षा वा अन्यमनस्कता व्यक्त करती हुई नायक को खेदित करती है । धीरेतरा (अधीरा) प्रगल्भा क्रुद्ध हो कर नायक की संतर्जना एवं ताड़ना (डांटना, फटकारना, एवं पीटना) करती है । मध्य (अंतर्वर्तिनी धीरा एवं अधीरा के बीच की अर्थात् प्रगल्भा धीराधीरा) मध्या धीरा नायिका के समान व्यवहार करती है (ताने मारकर नायक को झिड़कती है) ।

सावहित्थादराप्रगल्भा का उदाहरण:—दूर से ही प्रत्युद्गम (प्रत्युथान) करके नायिका ने कृतापराध प्रिय के एकत्रासन—संस्थि

---

१. न जाने सम्मुखायाते प्रियाणि वदति प्रिये ।
सर्वाण्यंगानि किं यान्ति नेत्रतामुतकर्णताम् ॥

२. कान्ते तल्पमुपागते विगलिता नीवी स्वयं बन्धना—
द्वासः प्रश्लथमेखलागुणधृतं किञ्चिन्नितम्बे स्थितम् ।
एतावत्सखि वेद्मि केवलमहं तस्यांगसंगे पुनः
कोऽसौ कास्मि रतं नु किं कथमिति स्वल्पापि मे न स्मृतिः ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(एक ही पीठादि, आसन पर आसीन होकर प्रिया की सङ्गति, मेलन) के अवसर का नायिका ने परिहरण, परिवर्जन (निषेध) कर दिया। ताम्बूलाहरण (ताम्बूल का आनयन, पान लाने की क्रिया) के छल से (व्याज बहाने से) रभसाश्लेष (हठात् आलिगन) को भी संविघ्नित (बाधित) कर दिया। (नायक के) अंतिक (समीप) में परिजनों को व्यापारित (नियोजित, प्रेरित) करके नायिका ने नायक को संभाषण भी संयोजित करने का अवसर नहीं दिया। इस प्रकार उपचारों (व्यवहारों) द्वारा नायिका ने प्रिय के प्रति अपने कोप (ईर्ष्यामान) को कृतार्थ कर लिया[१]। दूर से ही प्रिय के सम्मानार्थं अभ्युत्थान (उठ कर खड़ा होना) करना, ताम्बूलनयनार्थं, गमन एवं सेवकों को प्रिय की सेवा में उसके समीप प्रेषित करना आदि व्यापारों से नायिका का आदर के आवरण में भावगोपन, कोप की अवहित्था (आकार गुप्ति) आदि द्योतित होती हैं। इस प्रकार चतुरता से व्यापार करना नायिका के प्रगल्भत्व को प्रमाणित करता है। रति में उदासीन होने पर नायिका रति क्रीड़ा में कोई सक्रिय सहयोग नहीं देती। केशग्रह, वस्त्रमोचन, शिथिलीकरण हठपूर्वक आलिङ्गनादि के समय वह कलह, भ्रूकुंचन, अधरदशन विरोधादि नहीं करती।

मुग्धानायिका के, जो केवल एक ही प्रकार की होती है, अतिरिक्त मध्या और प्रगल्भा (धीरा, अधीरा और धीराधीरा ये) तीन-तीन प्रकार की होती हैं। इनके पुनरपि ज्येष्ठा एवं कनिष्ठा दो-दो भेद किये गये हैं। अतयेव मुग्धासहित इनके १३ भेद हैं। इनके उदाहरण-वासवदत्ता, रत्नावली आदि में पाये जा सकते हैं।

परकीया वा अन्य स्त्री के दो भेद होते हैं:—कन्यका और ऊढा (विवाहिता) नाटकादि में ऊढा (अन्यपरिणीता) परकीया अङ्गी (प्रधान) रस का अलंबन नहीं बनाई जाती। कन्यानुराग अङ्गी तथा अङ्ग रस वर्णन में विहित है।

नायकान्तर सम्बन्धी अन्योढ़ा का उदाहरण:—"हे प्रतिवेशिनि (पड़ोसिन) कुछ क्षणों के लिए अपनी दृष्टि इस (मेरे) घर पर भी रखना। प्रायः (मेरे) शिशु के पिता विरस (स्वादहीन) कूप का जल नहीं पीते अतः मैं

---

१. एकत्रासन संस्थितिः परिहृता प्रत्युद्गमाद्दूरत--
स्ताम्बूलानयनच्छलेन रभसा श्लेषोऽपि संविघ्नितः।
आलापोऽपि न मिश्रितः परिजनं व्यापारयन्त्यान्तिके
कान्तं प्रत्युपचारतश्चतुरया कोपः कृतार्थीकृतः ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अकेली ही, तमालवृक्षों से आवृत, उस स्रोत पर जा रही हूँ। चाहे जरठ (पुराने) नलों (नरकटों) की धारदार गांठे मेरे शरीर को खरोंच ही क्यों न डाले।"

वृत्तिकार धनिक के मतानुसार परकीया (ऊढा) नायिका का प्रधान रस में कहीं निबन्धन नहीं होता इस लिए इस (विषय) को प्रपंचित, विस्तृत नहीं कियागया। पितादि के आयतत्व (अधीनत्व) के कारण कन्यका अपरीणिता भी अन्यस्त्री कही जाती है। पितादि के वशीभूत होने के कारण अलभ्यमाना होती हुई भी प्रणयव्यापार के लिए वह सुलभ होती है। परोपरोध (अन्य द्वारा बाधा वा उपरोध) एवं स्वकान्ता (अपनी विवाहिता स्त्री) के भय के कारण कन्यका के साथ प्रच्छन्न कामित्व (छिप कर किया गया कामव्यापार) ही प्रवर्तित (व्यवहृत) हो सकता है जैसे 'मालतीमाधव' में माधव का मालती के साथ प्रच्छन्न कामित्व) एवं 'रत्नावली नाटिका' में (सागरिका के साथ) वत्सराज का। कन्यानुराग। कन्या के साथ किया गया रति-व्यापार स्वेच्छानुसार प्रधान वा अप्रधान रस के समाश्रय (अधीनता) में निबन्धनीय है। यथा 'रत्नावली' में सागरिका प्रेमप्रधान रस में तथा 'नागानन्द' में मलयवती का प्रेम अप्रधान (अंगभूत) रस निबद्ध है। इसमें प्रधान रस जीमूतवाहन का दयावीर है।

साधारण स्त्री:—साधारण स्त्री गणिका एवं कलाप्रगल्भता तथा धौर्त्य युक्त (धूर्त्त) होती है। छन्न काम, (छिपकर कामतृप्ति करने वाले) जैसे श्रोत्रिय (वेदाध्ययनकर्त्ता), वणिक्, लिंगी (धर्मध्वजी संन्यासी, ढोंगी, आडम्बरी) आदि सुखार्थ (जिनको वा जिनसे सुखपूर्वक, सरलता से, अनायास धन प्राप्त हो), अज्ञ (मूर्ख), स्वतंत्र-निरंकुश), अहंयु (अहंकारवान्, अहंकार युक्त), पण्डक (नपुंसक) आदि का रञ्जन (तोषण) रक्त (अनुरक्त, आसक्त) के सदृश (इस प्रकार मानो वह गणिका इन पर अनुरक्त हो) करती है। ऐसा पाखण्डपूर्ण व्यवहार गणिका अर्थार्थं (धन के लिए) ही करती है। उनसे धन ग्रहण करके कुटनियों वा अपनी माता आदि के द्वारा गृह से निष्कासित कर देती है तथा पुनः किसी अन्य का प्रतिसंधान (खोज-उपाय) करने में संलग्न हो जाती है। यह उनका औत्सर्गिक (सामान्य) लक्षण है। प्रहसन के अतिरिक्त अन्य-रूपकों में गणिका नायक के प्रति अनुरक्त सी चित्रित होती

---

१. दृष्टिं हे प्रतिवेशिनि क्षणमिहाप्यस्मिन्गृहे दास्यसि
प्रायेणास्य शिशोः पिता न विरसाः कौपीरपापास्यति।
एकाकिन्यपि यामि सत्वरमितः स्रोत्रस्तमालाकुलं
नीरन्ध्रास्तनुमालिखन्तु जरठच्छेदानलग्रन्थयः ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

है। प्रहसन में वह हास्य का आलंबन होती है। अतः वहाँ अनुरक्त सी चित्रित हो सकती है। नायक यदि नृप वा दिव्य हो तो गणिका का निबन्धन नहीं होना चाहिए। अवस्थाभेद से उपयुक्त नायिकायें आठ प्रकार की होती हैं। ये हैं— स्वाधीनपतिका, वासकसज्जा, विरहोत्कंठिता, खण्डिता, कलहान्तरिता, विप्रलब्धा, प्रोषित-प्रिया तथा अभिसारिका। स्वाधीनपतिकादि नायिकाओं का वासकसज्जादि नायिकाओं में अन्तर्भाव नहीं हो सकता। वासकसज्जा नायिका का प्रिय उसके आसन्न (निकट) नहीं होता, जब कि स्वाधीनपतिका का प्रिय पति उसके अधीन, समीप होता है। वासकसज्जा प्रियसमागम की आशा में सुसज्जित होकर उसकी प्रतीक्षा करती रहती है (वासके प्रियसमागमावसरे सज्जतीति), अथवा प्रियागम की आशा में वासक (वासवेश्म, रहने का घर) सुसज्जित कर उसकी प्रतीक्षा करती है। अनासन्न-प्रियत्व इस नायिका का भेदकलक्षण है। अतएव उसमें स्वाधीनपतिकात्व का समावेश नहीं हो सकता। वह प्राप्तपतिका (आपन्नपतिका) न होकर एष्यत्पतिका मात्र होती है। उसका पति उसे प्राप्त नहीं अप्राप्त होता है, प्राप्ति की सम्भावना अवश्य रहती है। अब एष्यत्पतिकात्व को भी स्वाधीनपतिकात्व मान लें तब तो प्रोषित्पतिका (जिसका पति विदेशस्थ हो उसका आगमन अपेक्षित हो) नायिका भी स्वाधीनपतिका मानी जा सकती है। यदि कहा जाय कि वासकसज्जा एवं प्रोषित्पतिका में देश काल की इयत्ता (इयंतोभाव, सीमा, परिणाम) का भेद होता है, वासकसज्जा का प्रिय निकटतर देश में रहता है, प्रायः प्रिया के समीप ही रहता है, तथा उसके प्रिय के आगमन का समय भी समीप होता है, परन्तु प्रोषित्प्रिया के प्रिय के आगमन में, तुलनात्मकतया, देशकाल दोनों की दूरी होती है उसका प्रिय रहता भी दूरतर देश में है, एवं उसके आने का समय भी दूरतर है अतः दोनों के एक मानने में देश-काल की इयत्ता का व्यवधान है तो यह भी ठीक नहीं क्योंकि इयत्ता का व्यवधान मान कर आसत्ति (समीपता) का नियंत्रण नहीं किया जा सकता। दूरी और समीपता की सीमीरेखा का सूक्ष्म भेद नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार खण्डिता नायिका का भी अन्तर्भाव इनमें से किसी में नहीं हो सकता। खण्डिता नायिका को, अन्योपभोगचिह्नित प्रिय का अन्यस्त्री सम्भोग रूप (व्यलीक) कामज अपराध विदित होता है। वह विदित-प्रिय-व्यालीका होती है जब कि कलहान्तरिता के अतिरिक्त अन्य नायिकायें प्रिय के व्यलीकव्यलीक भाव से निरपेक्ष होती हैं। अतएव उनमें खण्डितात्व का लक्षण नहीं मिलता। अब प्रोषित प्रिया के प्रोषित् प्रियात्व पर भी विचार किया जाय। यह नायिका भी अपनी विशेषता के कारण अन्य-भिन्न, स्वायत्तलक्षणा होती है। प्रोषित् प्रिया दूरदेशान्तरस्थ

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रिय की चिन्ता में इस प्रकार निमग्न रहती है कि उसकी भोगेच्छा नितान्त लुप्त हो जाती है। रति में प्रवृत्त होंने का उसके लिए कोई अवसर ही नहीं होता। अन्य नायिकायें रति-प्रवृत्ति एवं भोगेच्छा के कारण प्रोषित् प्रिया से भिन्न होती हैं। अभिसारिका नायिका का अभिसारकात्व भी एक स्वतन्त्र लक्षण है जो अन्य किसी नायिकाभेद में नहीं मिलता। अन्य प्रकार की नायिकायें न तो प्रिय के समीप गमन ही करती हैं न नायक के समागम के प्रयोजन से वे उसके पास भृत्यादिकों को प्रेरित ही करती हैं। अतएव स्वयमगमन (स्वयम् + अगमन = स्वयं न जाने का कार्य) तथा नायक के प्रति प्रयोजकत्व (समागम के आयोजनार्थ भृत्यादि प्रेषण) के अभाव के कारण अन्य नायिकाओं का अन्तर्भाव अभिसारिका में भी नहीं हो सकता। उत्कण्ठिता नायिका भी इनसे भिन्न एकान्त-लक्षणा है। प्रिय के आगमन के उचित समय की अतिवृत्ति (अतिक्रमण) से विधुरा (विकला) विरहोत्कंठिता नायिका वासकसज्जा से भिन्न है। विप्रलब्धा भी वासकसज्जावत् अन्य नायिकाओं से भिन्न है। कह कर भी प्रिय के न आने के कारण विप्रलब्धा के विषय में प्रतारणा (छल) का आधिक्य पाया जाता है। अतएव विप्रलब्धा नायिका वासकसज्जा एवं उत्कंठिता दोनों से भिन्न है। कलहान्तरिता भी यद्यपि विदितव्यलीका होती है तथापि पहले प्रिय के अनुनय विनय को ग्रहण न करने (न मानने) किन्तु प्रिय के चले जाने के पश्चात् पश्चात्ताप एवं प्रसाद (प्रसन्नता) के प्रकाशन के कारण (प्रसन्न हो जाने के कारण) वह खण्डिता से भिन्न है। इसलिए पूर्वोक्त सब नायिकाओं के भिन्न लक्षण-युक्त होने, तथा किसी में किसी के अन्तर्भुक्त न होने के कारण इनकी आठ अवस्थायें मानी गई हैं।

स्वाधीन भर्तृका नायिका:—स्वाधीन भर्तृका नायिका आसन्नायत्तरमणा (जिसका रमण = पति आसन्न = समीप एवं आयत्त अधीन रहता है) एवं (इन कारणों से ही) हृष्टा (प्रसन्न) रहती है—

"यह जान कर गर्व मत करो कि मेरे कपोलतल पर कान्त स्वहस्तलिखिता (स्वयं प्रिय के अपने हाथ से ही चित्रित) मञ्जरी (वल्लरी = लता, पत्र-बल्लरी, पत्रभंग, पत्र पत्ते की आकृति वाली लता) चकासित (दीप्त) हो रही है। हे सखि ! क्या अन्य नायिकायें भी (तुम्हारी भांति) प्रिय के (पत्रावली चर्चारूप में) प्रदर्शित प्रेम का भाजन नहीं हो सकती, यदि वेपथु (कम्प) रूपी अन्तराय वैरी न बन जाय ?"[1] यहाँ स्वाधीनपतिका की सखी

---

१. मा गर्वमुद्वह कपोलतले चकास्ति कान्तस्वहस्तलिखितामम मञ्जरीति। अन्यापि किं न सखि भाजनमीदृशानां वैरी न चेद्भवति वेपथुरन्तरायः ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

के व्यंग्य वचन से ध्वनि यही निकलती है कि नायिका की तुलना में उसका पति-प्रेम घनतर गाढ़तर है क्योंकि पति द्वारा अंगस्पर्श मात्र से उसका शरीर कम्पित होने लगता है जिसके कारण नायिका के कपोलों पर चर्चित पत्रावली के समान उसके कपोलों पर भी चित्र बन नहीं पाता।

वासकसज्जा नायिका:—वासकसज्जा नायिका आगन्तुक प्रिय के स्वागतार्थ, प्रसन्न होकर वासक (शयन-कक्ष) एवं स्वयं अपने शरीर को सुसज्जित करती है। यथा—"मुखरूपी कमल की वास (सुगन्ध) के संसर्ग से निर्गत श्वास की, जो उसके पल्लवसदृश पाणि के तट (किनारे) से स्खलित होती (टकरा कर निकलती) हुई नासिका के विवरों (छिद्रों) के अभिमुख (ओर) उत्पतित हो रही, उठ रही है शनैः शनैः परीक्षा करके अपरा (अन्य = वह) नायिका मुदित हुई"[1] यहाँ प्रियागम में नायिका ने मुख, पाणि को सुगन्धि से सुसज्जित किया है।

विरहोत्कंठिता:—प्रिय के अव्यलीक होने पर भी उसके कालात्ययन (चिरयन, चिरता, चिरस्यता) के कारण, आगमन में विलम्बन के कारण जो उन्मना (उद्विग्न, उत्कंठित) हो वह विरहोत्कंठिता है यथा—

"हे सखि! वह (मेरा प्रिय) किसी दूसरी स्त्री के वीणावादन से जीत लिया गया है। निश्चय उन दोनों में रात भर रति-क्रीड़ा करने का पणित (व्यवहार, बाजी) हो गया है। (अन्यथा) शेफाली (हरशृंगार) के कुसुमों के स्खलित हो जाने तथा आकाश के मध्य में चन्द्रमा की किरणों के प्रसृत हो जाने पर भी प्रिय क्यों बिलम्ब कर रहे हैं।"[2] रात्रि के पिछले प्रहर में हरशृंगार के फूल झड़ जाते हैं एवं अस्तप्राय चन्द्र की किरणें आकाश के मध्य भाग में फैल जाती हैं। रात्रि के उत्तरार्ध में भी प्रिय के न आने से नायिका की उद्विग्नता बढ़ती जा रही है।

खण्डिता नायिका:—अन्यस्त्री आसक्ति एवं सम्भोगरूपी प्रिय के अपराध से अवगत हो जाने से उत्तेजित (क्षुब्ध) हो जाने से ईर्ष्या से कलुषित हुई नायिका खण्डिता कही गई है—"(अन्य नायिका कृत) नवीन नख

१. निजपाणिपल्लवतटस्खलनादभिनासिका विवरमुत्पतितैः।
अपरा परीक्ष्य शनकैर्मुमुदे मुखवासमास्यकमलश्वसनैः॥

२. सखि स विजितो वीणावाद्यैः कयाप्यपरस्त्रिया
पणितमभवत्ताभ्यां तत्र क्षपाललितं ध्रुवम्।
कथमितरथा शेफालीषु स्खलत्कुसुमास्वपि
प्रसरति नभोमध्येऽपीन्दौ प्रियेण विलम्ब्यते॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

के पदों (चिह्नों) से चिह्नित, क्षत अङ्गों को तुम अंशुक (सूक्ष्मवस्त्र, उत्तरीय) से छिपा रहे हो, दांतों से दष्ट क्षत (काटे गये) ओष्ठ का हाथ से स्थगन (आवृति, छदन, छिपाने की क्रिया) कर रहे हो। (किन्तु) प्रत्येक दिशा में विसर्पण (प्रसार, फैलने की क्रिया) करने, फैलने वाली परस्त्री -संग-शंसी (अन्य नारी के संगम, मिलन की प्रशंसित करने, कहने वाली) नवीन परिमल (स्त्री-प्रसङ्ग) की गन्ध की वृत्ति (गोपन, वेष्टन) कौन कर सकता है"[१] अन्यस्त्री सम्भोगजन्य सुवास का प्रसार नायक के अपराध की सूचना दे देता है जिससे नायिका ईर्ष्या-कषायिता एवं खण्डिता प्रतीत होती है।

कलहान्तरिता नायिका:--कलहान्तरिता नायिका अमर्ष (असहिष्णुता, क्षोभ) के कारण पहले तो प्रिय की विधूति (तिरस्कार) करती, पुन: (उसके हट जाने के पश्चात्) अनुशय (पश्चात्ताप) करती है। यथा—"मेरे (मुख से निकलने वाले) नि:श्वास मेरे वदन (मुख) को जला रहे हैं, हृदय का मन्थन उसे निमूल (पूर्णत: नष्ट) कर रहा है। निद्रा नहीं आती, प्रिय का मुख दिखाई नहीं पड़ता, रात-दिन रोना पड़ रहा है अंगों में शोष (शुष्कता) आ रही है, चरणों पर गिरे हुए प्रिय (प्रेयान्) का मैंने तिरस्कार कर दिया। हे सखियों ! तुमने किस गुण को (कौन-सा लाभ) आकलित कर (सोच समझ कर) दयित (प्रिय पति) के प्रति मुझसे मान करवाया"[२] कलहजन्य अमर्श के कारण नायिका पादपतित प्रिय की उपेक्षा करके पश्चात् अनुताप कर रही है।

विप्रलब्धा नायिका:—वह है जो उक्त (निश्चित्, दत्तसंकेत) समय पर प्रिय के (द्वारा) प्राप्त (उपस्थित) न होने पर अपने को अति विमानित (अवज्ञात, अपमानित) मानती है। यथा—"हे दूति ! उठो चलें याम (प्रहर) बीत गया तथापि (प्रिय) नहीं आया। यो (या) इसके (इतनी प्रतीक्षा एवं अपमान) उपरान्त भी जीवित रहे उसी (स्त्री) का वह (नायक) जीवितनाथ होवे।"[३]

---

१. नवनखपदमङ्गं गोपयस्यंशुकेन स्थगयसि पुनरोष्ठं पाणिना दन्तदष्टम्।
प्रतिदेशमपरस्त्री संगशंसी विसर्पन् नवपरिमलगन्धः केनशक्यो वरीतुम्॥

२. नि:श्वासा वदनं दहन्ति हृदयं निर्मूलमुन्मथ्यते
निद्रा नैति न दृश्यते प्रियमुखं नक्तं दिवं रुद्यते।
अङ्गं शोषमुपैति पादपतितः प्रेयांस्तथोपेक्षितः
सख्यः कं गुणमाकलय्य दयिते मानं वयं कारिताः॥

३. उत्तिष्ठ दूति यामो यामोयातस्तथापि नायातः।
याऽतः परमपि जीवेज्जीवितनाथो भवेत्तस्याः॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रोषित प्रिया:—नायक का पति कार्यतः (कार्यवश) दुरदेशान्तरस्थ (दूर विदेश में विद्यमान) रहता है। यथा—"जहाँ तक दृष्टि का प्रसार है (जहाँ तक देख पाती है) प्रिय की पदवी (पन्थ, मार्ग) का उद्वीक्षण (अवलोकन, देखने की क्रिया) करके निर्विण्ण (खिन्न) होकर, पथों (मार्गों, पथिकों) को विश्रान्त (शान्त, समाप्त, विश्रामयुक्त) होने पर, अर्थात् संध्या समय आवागमन स्थगित हो जाने पर अह (न्) अर्थात् दिन के परिणत (समाप्त) हो जाने तथा ध्वान्त (अन्धकार) के समुत्सर्पण (भली भाँति फैलने की क्रिया) के उपरान्त, सशुचा (शोक सहित) घर की ओर एक पग देकर, वह पान्थ स्त्री (पथिक प्रिय की प्रिया) इसी क्षण (समय) अमन्द वलितग्रीव (गर्दन भली भाँति झुका कर) पुनः देखती है कि कहीं (प्रिय) आ न गये हों।"[1]. प्रोषित प्रिया नायिका की समुत्कंठा का सुन्दर चित्रण है।

अभिसारिका नायिका:—या तो कामार्त (कामपीड़ित) हो कर स्वयं कान्त (प्रिय) के समीप अभिसरण (संकेत स्थान पर गमन) करे अथवा प्रिय को ही सारित करती (चालित चला कर बुलाती) है। प्रिय के समीप स्वयं अभिसार करने वाली नायिका:—"हे मुग्धे ! तूने अपने उर (वक्ष) पर तार (निर्मल) हार (मुक्ताहार) निहित (विन्यस्त) किया है। घन (विपुल) जघन (कटिप्रदेश) में कलकलवती काञ्ची (मेखला) की रचना की है, निबद्ध किया है, तथा पदों (चरणों) में रणत्कृत (झनझनाते हुए) मणिमय नूपुर धारण किये हैं। मूढ़े ! यदि तू आहत-डिण्डिमा (बाजे बजाती हुई) प्रिय के समीप अभिसरण कर रही है (निर्मल हार के प्रकाश एवं चन्द्रिका, अथवा ज्योत्स्ना के समान मुक्ताहार के प्रकाश से, तथा भूषणादि की झंकृति से आत्म-प्रकाशन करती हुई जा रही है) तो अत्यर्थ त्रासोत्कम्पा (देख लिए जाने के भय से उत्पन्न उत्कम्पन से युक्त) क्यों दिशाओं की ओर (इधर-उधर) देख रही है ?"[2] अभिसरण करती हुई नायिका से यदृच्छया समागता सखी की यह प्रतिषेधात्मक उक्ति है।

---

१. अदृष्टिप्रसरात्प्रियस्य पदवीमुद्वीक्ष्य निर्विण्णया
विश्रान्तेषु पथिष्वहःपरिणतौ ध्वान्ते समुत्सर्पति।
दत्त्वैकं सशुचा गृहप्रतिपदं पान्थस्त्रियास्मिन्क्षणे
मा भूदागत इत्यमन्दवलितग्रीवं पुनर्वीक्षितम्।

२. उरसि निहितस्तारोहारः कृता जघने घने
कलकलवती काञ्ची पादौ रणन्मणिनूपुरौ।
प्रियामभिसरस्येवं मुग्धेत्वमाहतडिण्डिमा
यदि किमधिकत्रासोत्कम्पं दिशः समुदीक्षते॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रिय को अपने समीप बुलाने, सारण करने वाली नायिका:—"हे अभिदूति (श्रेष्ठ दूति) ! तुम (प्रिय के) समीप जाकर इस प्रकार से (नम्रतापूर्वक) निपुणता से कहना कि वह अपनी लघुता न समझे (अपनी हीनता का अवगमन न करे) और मेरे प्रति करुणा (दया) करे।"[१] कोई नायिका किसी दूती से ऐसा संदेश दे रही है।

उक्त नायिकाओं के आभूषण:—अन्तिम छः (विरहोत्कंठिता, खण्डिता कलहान्तरिता, विप्रलब्धा, प्रोषितप्रिया तथा अभिसारिका) के अलंकार हैं :— चिन्ता, निःश्वास, खेद, अश्रु, वैवर्ण्य तथा ग्लानि। प्रथम दो (स्वाधीनपतिका तथा वासकसज्जा) के अलंकार, क्रीड़ा, उज्ज्वलता तथा हर्ष हैं।

परकीया नायिकाओं की, वृत्तिकार धनिक के अनुसार, केवल तीन ही अवस्थायें हो सकती हैं। वेहैं विरहोत्कंठिता अभिसारिका तथा विप्रलब्धा। संकेत-पूर्व (संकेत-स्थल पर प्रिय से मिलने के पूर्व) वह विरहोत्कंठिता होती है। पश्चात् विदूषकादि (विदूषक, दूती, सखी आदि) के साथ अभिसार (प्रिय के समीप गमन) करने के कारण वह अभिसारिका की कोटि में आ जाती है। कभी-कभी संकेत-स्थल पर प्रिय के अप्राप्त होने के कारण वह विप्रलब्धा कही जाती है। परकीया (कन्या वा विवाहिता) की अन्य अवस्थायें सम्भव नहीं हैं क्योंकि उसका प्रिय अस्वाधीन होता (नायिका के अधीन नहीं होता) हैं। अनायत्त्व-प्रियत्व (प्रिय की अस्वाधीनता) के ही कारण यदि परकीया का प्रिय देशान्तरस्थ हो तब भी नायिका प्रोषित प्रिया न होकर केवल उत्कंठिता ही होगी।

नायिकाओं की सहायिनी:—नायक-समागम में साहाय्य देने वाली नायिकाओं की सहायिकायें होती हैं। ये है दूती, दासी, सखी, कारू (कारक, शिल्पी, रजकी आदि) धात्रेयी (उपमातृ सुता), प्रतिवेशिका (पड़ोसिन, समीप रहने वाली), लिङ्गिनी (भिक्षुकी, सन्यासिनी,), शिल्पिनी (चित्रकारिणी आदि) तथा स्वयमेव नायिका (स्वयं दूती के रूप में)। ये सब नेतृभिन्न-गुणान्वित (नेता, नायक के मित्रों—पीठमर्द, विदूषकादि के गुणों से युक्त) होती हैं।

सखी का उदाहरण:—"मृगशिशु के समान नेत्रों वाली (उस) विरहिणी के ताप को तुमसे कैसे कहूं ? दहनपतिता (आग में गिरी हुई) वैधवी मूर्त्ति (विधु, चन्द्रमा की मूर्त्ति), (मैंने देखी नहीं अर्थात् वह चन्द्रमुखी नायिका तेरी

---

१. न च मेऽवगच्छति यथा लघुतां करुणां यथा च कुरुते स मयि।
निपुणं तदीयमुपगम्य वदेरभिदूति स काचिदिति संदिदिशे।'

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

विरहाग्नि में दग्ध हो रही है, उसकी दशा आग में जलते हुए चन्द्रमा के समान है) इतना मैं जानती हूँ कि उसका नारीरूप लोक के नेत्रों के लिए सुधा है (उसका दर्शन अमृत के समान जीवनदाता, आनन्ददायक है)। तेरी शठता (धूर्तता) विधि (ब्रह्मा) के इस शिल्पोत्कर्ष (सुन्दर कृति) को विघटित (नष्ट) कर देगी ।"[1] स्वयं दूती का उदाहरणः—हे वायु ! तुम बार-बार आकर (शीतोष्मादि के) निवारक (निवारण करने वाले) जो भी मेरे वस्त्र हैं उनका क्यों हरण कर रहे हो ? हे सुन्दर ! कष्ट सहन कर रही हूँ, गाँव दूर है मैं अकेली हूँ"[2] यहाँ स्वयं दूती नायिका वायु के व्याज से किसी पथिक को संभोगेच्छा का संकेत दे रही है ।

यौवन में स्त्रियों के अलंकारः—यौवन में स्त्रियों के बीस सत्वज अलंकार माने गये हैं। इनमें से भाव, हाव तथा हेला शरीरज हैं । शोभा, कान्ति, दीप्ति, माधुर्य, प्रगल्भता, औदार्य, धैर्य—ये सात अयत्नज हैं। लीला, विलास, विच्छित्ति, विभ्रम, किलकिंचित, मोट्टायित, कुट्टमित, विब्बोक, ललित, विहृत—ये दश स्वभावज हं । भाव :—निर्विकारात्मक सत्व से उद्भूत आदि विक्रिया (प्रथम विकार) है । विकार का हेतु वर्तमान होते हुए भी चित्त में विकार का न उत्पन्न होना सत्व है । जैसे 'कुमारसम्भव' में अप्सराओं के संगीत सुन कर भी महादेव का समाधि में स्थित हो जाना उनके सत्व, जितेन्द्रियता एवं जितात्मता का प्रमाण है ।

उस अविकार रूप सत्व से जो प्रथम अन्तःपरिवर्ती विकार बीज स्फीतिवत् उत्पन्न होता है वह भाव है। अंकुरोद्भेद के पूर्व जैसे बीज भीतर ही भीतर उच्छून (स्फीत, प्रवृद्ध) होता हैं, स्वरूप परिवर्तन करता है वैसे ही सचेतस् हृदय में शृंगार के विकार हृदय में भाव रूप ग्रहण करते हैं।

भाव का उदाहरण :—देखें काममुग्धा का उदाहरण पृष्ठ १३० ।" अब उसकी दृष्टि···ले रही है ।"

---

१. मृगशिशुदृशस्तस्यास्तापं कथं कथयामि ते
दहनपतिता दृष्टा मूर्त्तिर्मया नहि वैधवी ।
इति तु विदितं नारीरूपः स लोकदृशां सुधा
तव शठतया शिल्पोत्कर्षो विधेर्विघटिष्यते ॥

२. मुहु एहि किं णिवालअ हरसि णिअं वाउ जइवि मे सिचअम् ।
साहेमि कस्स सुन्दर दूरे गामो अहं एक्का ॥
[मुहुरेहि किं निवारक हरसि निजं वायो यद्यपि मे सिचयम् ।
साधयामि कस्य सुन्दर दूरे ग्रामोहऽमेका ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हाव की परिभाषा:-अक्षि भ्रू विकारकृत (आंखों एवं भौंहों की भंगिमा से युक्त) अल्पालाप हाव है। प्रतिनियत (पूर्वनिश्चित) अंगविकारकारी (अंगों में परिवर्तन उपस्थित करने वाला) शृंगार स्वभावविशिष्ट (स्वाभाविक) हाव कहा जाता है। यथा--

"अरी! जो कुछ भी उसके देखने वा बोलने में (विकार) पाया जाता है वह वास्तविक (सत्य, स्वाभाविक) है। निरीक्षण करने पर या तो वह स्नेह-मुग्धा या वचन-मुग्धा देखी वा पाई जाती है।"[१] यहाँ दृष्टि और वाणी दोनों के विकार शृंगारज हाव के सूचक हैं।

हेला :—हाव ही 'सुव्यक्त शृंगाररससूचक' (शृंगाररसोत्पत्ति की स्पष्ट सूचना देने वाला) होने पर हेला कहा जाता है। स्पष्ट और भूयश: (बार-म्बार, अतिशय) विकारोत्पत्ति शृंगार रस सूचक हो तो हेला माना जाएगा। यथा—"स्तनोद्भेद होते समय उस नायिका के सर्वाङ्ग में झट से विभ्रम विलास निर्दिष्ट होने लगे। (इन विभ्रमादि के अचानक आरम्भ हो जाने से) सखियों को भी नायिका के बालभाव के सम्बन्ध में दीर्घकालस्थायी संशय होने लगा[२]" यहाँ नायिका के शृंगारज विभ्रम सुव्यक्त होने लगे हैं अत: हेला नामक अलंकार स्पष्ट परिलक्षित हो रहा है।

शोभा :—अयत्नज शृंगार है। रूप, उपभोग तथा तारुण्य से अंगों का विभूषित होना शोभा अलंकार है। उदाहरण के लिए 'अभिलाष' का उदाहरण—"यह वह फूल है...बनाएगा पृ० २६।"

कान्ति :—मन्मथ की छाया (कामज आभा) से अवापित (रोपित, स्थापित) शोभा ही कान्ति है। शोभा में कामुकता दृष्टिगोचर नहीं होती किन्तु कान्ति में कामाविर्भाव, कामविकार स्पष्ट लक्षित होने लगता है। धनिक के अनुसार रागावतार से घनीकृत शोभा ही कान्ति है। यथा—

---

१. जं किंपि पेच्छमाणं भणमाणं रे जहातहच्चेअ।
णिज्झाय णेहमुद्धं वयस्समुद्धं णिअच्छिअ॥
[यत्किमपि प्रेक्ष्यमाणां भणमानां रे यथातथैव।
निध्यात स्नेहमुग्धां वयस्य मुग्धां पश्य॥]

२. तह झत्ति से पअत्ता सव्वंगं विब्भमा थणुब्भेए।
संसइअबालभावा होइ चिरं जह सहीणं पि॥
[तथा झटित्यस्या: प्रवृत्ता सर्वाङ्गं विभ्रमा: स्तनोद्भेदे।
संशयितबालभावा भवति चिरं यथा सखीनामपि॥]

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

"उन्मीलित (विकसित) इन्दु की दीप्ति (प्रकाश) के विसर (विसरण, प्रसार) से दूर समुत्सारित करती (भगाती), पीन (स्थूल, मोटा) कुचस्थल की रुचि (प्रकाश, दीप्ति) से भेदन करती, भिन्न (खंडित) करती, हस्तप्रभा (हाथों की ज्योति) से निहत करती (मार कर नष्ट करती) कलविङ्क (कोकिल)-कंठी तथा कदली कल्प (केले के वृक्ष के समान मसृण, कोमल) नायिका से, जिसके अङ्ग स्पर्श का सुख उसे (अंधकार को) प्राप्त नहीं हुआ था, मिलने के कौतुक (उत्सुकता) से अंधकार सरोष, उस नायिका के केशों से चिपट गया"[१]

'उन्मीलद्वदनेन्दुदीप्ति', 'पीनकुचस्थल-रुचि' आदि से नायिका की कान्ति-वृद्धि का परिचय मिलता है।

'केशलग्न-तम' नायिका के तमवत् काले केशों की सूचना देता है।

माधुर्य :—अनुल्वणत्व, उग्रता का अभाव माधुर्य कहा जाता है। यथा- "शैवाल (सेवार) से अनुविद्ध (संयुक्त) भी कमल सुन्दर होता है; चन्द्रमा का काला कलङ्क भी लक्ष्मी (शोभा) का तान (विस्तार) करता है। यह तन्वी (कृशांगी) वल्कल-संवीत (पेड़ की छाल का वस्त्र धारण किये हुए) भी मनोज्ञा (सुन्दरी) लगती है। मधुर (सुन्दर) व्यक्तियों की कौन सी वस्तु मण्डन (शोभावृद्धि) नहीं करती।"[२]

दीप्ति:—कान्ति के विस्तारको कहते हैं। यथा हे देवि (नायिके)! प्रसन्न हो जाओ तुम्हारे मुखरूपी शशि की निर्यात (निकलती हुई) ज्योत्स्ना से तम-निवह (अंधकार-समूह) विलुप्त हो रहा है। हे मार्गोन्मुखी! तुम अन्यान्य नायिकाओं का (जो कृष्णाभिसारिका हैं) भी विघ्न कर रही हो।"[३] यहाँ नायिका की संवर्धित (विस्तृत) कान्ति (दीप्ति) का वर्णन है जो अंधेरी रात्रि में अभिसार करनेवाली नायिकाओं के मार्ग में बाधा उपस्थितकर रही है।

---

१. उन्मीलद्वदनेन्दुदीप्तिविसरैर्दूरे समुत्सारितम्
भिन्नं पीनकुचस्थलस्य च रुचा हस्तप्रभाभिर्हतम्।
एतस्याः कलविंककंठकदलीकल्पं मिलत्कौतुका-
दप्राप्तांगसुखं रुषेव सहसा केशेषु लग्नं तमः॥

२. सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति।
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी किमिव हि मधुराणां मंडनं नाकृतीनाम्॥

३. देवा पसिअ णिअन्तसुमुहससिजोण्हविलुत्ततमणिवहे।
अहसरिआणं विग्घं करोसि अण्णाणं विहआसे॥
[देवि! प्रसीद निर्यातस्तुमखशशिज्योत्स्ना विलुप्ततमोनिवहे।
अभिसारिकाणां विघ्नं करोष्यन्यासां विहताशे]

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रागल्भ्यः—निस्साध्वसत्व को कहते हैं। मनक्षोभपूर्वक अंगों के साद (वलान्ति) को साध्वस कहते हैं। अतः प्रागल्भ्य (प्रगल्भता) का अर्थ हुआ मन में क्षोभादिका न पाया जाना। यथा—"यद्यपि वह सुन्दरी उस प्रकार (उतनी) व्रीड़ाविधेया (लज्जा को प्रदर्शित करने वाली) तथा उसी प्रकार (उतनी ही) मुग्धा (भोली) भी है; किन्तु (श्रृंगार की) कलाओं के प्रयोग की चातुरी में तो सभा में, वह आचार्यत्व प्राप्त कर चुकी है।'[1] कलाचातुरी उसकी प्रगल्भता की द्योतिका है।

औदार्यः—सदा बने रहने वाली विनय (प्रीति) को कहते हैं। यथा—"दिन भर गृह के सब व्यापार (कार्य) करने से दुःखिता नायिका (भार्या) सत्त (आक्रोशित, क्रोधपात्र नायक) के प्रति किये गये समस्त क्रोध एवं तज्जन्य दुःख को पी गई है।"[2] नायक के प्रति किये गये क्रोध तथा ईर्ष्या को पी जाना, शान्त कर देना विनय-औदार्य है।

धैर्यः—चापल (चंचलता) से अविहता (अबाधिता, अनुपहता) एवं अविकत्थना (अनाख्यायिका) चित्त-वृत्ति (चित्त या मन का व्यापार, उसकी अवस्थादि) को धैर्य कहते हैं। चंचलता तथा आत्मश्लाघा का अभाव धैर्य का लक्षण है। यथा—

"प्रतिरात्रि अखण्डकल-शशी (पूर्ण चन्द्र) गगन (आकाश) मे जले, मदन दग्ध करे; वह मृत्यु से पर (अन्य, उत्तर, अधिक) क्या विघात (विनाश) करेगा। मेरा तो दयित (पति, प्रिय), तात (पिता), अमलान्वया (मल से असंयुक्त, निर्मल) जननी, अमलिन कुल ही श्लाघ्य (प्रशस्त) हैं, यह जन (स्वयं मैं) तथा यह जीवित (जीवन) नहीं।"[3]

---

१. तथा व्रीड़ाविधेयापि तथा मुग्धापि सुन्दरी।
कलाप्रयोग चातुर्यं सभास्वाचार्यकं गता॥

२. दिअहं खु दुक्खिआए सअलं काऊण गेहवावारम्।
गरुएवि मण्णुदुक्खे भरिआ पिअन्त सत्तस्स॥
[दिवसं खलु दुःखितायाः सकलं कृत्वा गृहव्यापारम्।
गुरुण्यपि मन्यु दुःखेभार्या पिबति शप्तस्य॥]

३. ज्वलतु गगने रात्रौ रात्रावखण्डकलः शशी
दहतु मदनः किंवा मृत्योः परेण विधास्यति।
मम दयितः श्लाघ्यस्तातो जनन्यमलान्वया
कुलममलिनं न त्वेवायं जनो न च जीवितम्॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

लीला :—शृंगारिणी (शृंगार से युक्त) नारी के द्वारा मधुर अङ्गों की चेष्टाओं से प्रियकृत (प्रिय की) वाग्वेष चेष्टाओं के अनुकरण को लीला कहते हैं। यथा—"उस नायिका का वैसा ही (नायक के समान ही) प्रेक्षण (देखने की क्रिया), भाषण, वह ही निगदन (बोलना), वैसा ही बैठने का ढंग है। उस नायिका की सपत्नियों के द्वारा (उसके) उपर्युक्त अनुकरण (लीला) सतृष्णा (स्पृहा के साथ) एवं विभ्रम (भ्रान्ति) के साथ देखे जाते हैं। नायिका के उपर्युक्त गुण देखकर सपत्नियों की इच्छा होती है कि वे गुण हमें भी प्राप्त हों। उसके अनुकरणों को देखकर सुनकर उन सौतों को नायक का भ्रम हो जाता है।"[१]

विलास:—दयित का अवलोकन करते समय (अथवा दयिता, प्रिया के द्वारा प्रिय को देखने के समय) नायिका के अङ्गों, क्रियाओं और उक्तियों में सुव्यक्त होने वाली तात्कालिक (उसी समय तुरन्त उत्पन्न या लक्षित होने वाली) विशेषता को विलास कहते हैं यथा—"इस अंतर (अवधि) में उस आयताक्षि (विस्तृत दीर्घ नेत्रों वाली) नायिका का, अतिवृत्त (प्रवृद्ध, बढ़ा हुआ) विभव (विकास, महत्ता) की विचित्रता (असाधारणता, सुन्दरता) एवं उल्लसित (प्रकाशित) विभ्रम से युक्त, प्रचुर सात्विक (स्वाभाविक) विकारों (परिवर्तनों) के कारण विशेष रमणीय, मान्मथ (काम द्वारा प्रदत्त) आचार्यक (आचार्य से प्राप्त उपदेश) आवि (प्रकट) हो गया।"[२] दयिता के विशिष्ट विभ्रम सात्विकविकारादि की सातिशय विशेषोत्पत्ति उसके विलास के सूचक हैं।

विच्छित्ति :—आकल्प (वेषभूषा) की अल्परचना भी, जो कान्ति का पोषण (वर्द्धन) करती है, विच्छित्ति है। यथा—"लोध्र (वृक्ष विशेष) के रुक्ष (अचिक्कण परुष, अस्निग्ध), कषाय (विलेपन, अंगराग) एवं गोरोचना (पीतवर्ण द्रव्य) के आक्षेप (विन्यास) से युक्त कपोल पर झूलता हुआ कर्णार्पित (कानों में सुशोभित, धारण किया गया) यव का प्ररोह (अङ्कुर) परम

१. तह दिट्ठं तह भणिअं ताअ णिअदं तहातहासणं ।
अवलोइअं सइण्हं सविब्भमं जह सवत्तीहिं ॥
[तथा दृष्टं तथा भणितं तथा निगदितं तथातथासनम् ।
अवलोकितं सतृष्णं सविभ्रमं यथा सपत्नीभिः ॥]

२. अत्रान्तरे किमपि वा विभवातिवृत्तवैचित्र्यमुल्लसितविभ्रममायताक्ष्याः ।
तद्भूरिसात्विकविकारविशेषरम्यमाचार्यकं विजयि मान्मथमाविरासीत्।।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सौभाग्य का लाभ करके, नेत्रों को बांध लेता (आकर्षित कर लेता) था।"[1] यहाँ लोध्र निर्मित अंगराग एवं गोरोचना के सामान्य प्रसाधन भी पार्वती की सहज कान्ति से स्वयं भी अलंकृत हो कर, उस (कान्ति) का पोषण करते बताये गये हैं। यही विच्छित्ति है।

विभ्रम :—त्वरा (शीघ्रता, आवेग) के कारण समय पर भूषास्थान-विपर्यय (भूषणों का अनुपयुक्त स्थान पर धारण करना) विभ्रम है। यथा—

"कान्त को बाहर आया हुआ सुन कर असमाप्त विभूषा (जिसने अपना श्रृंगारण समाप्त नहीं किया है) नायिका ने भालपर अंजन, आँखों में लाक्षारस (अलक्तक) तथा कपोल पर तिलक लगा लिया।"[2]

किलकिंचित :—नायिका में क्रोध, अश्रु, हर्ष, भय इत्यादि के संकर (मिश्र भाव) को किलकिंचित कहते हैं। यथा—

'रतिक्रीड़ाकालीन द्यूत में किसी प्रकार समय का आसादन (प्राप्ति, संयोग) कर, अवसर प्राप्त कर, कल (कोमल) एवं अर्ध-क्वणित (शब्दध्वनि) युक्त कण्ठ वाली नायिका के अधर को उपलब्ध कर लेने पर अर्थात् जूये में जीत लेने पर, भ्रूभंगी करती हुई, लज्जित, अर्धरुदित, स्मित (मधुरमन्दहास) तथा क्रोध से उद्भ्रान्त (उद्विग्न भ्रमित चित्त) हो कर, उसने मेरी ओर मुख को धारण किया (कर दिया)"[3]। यहाँ रुदित, स्मित क्रोधादि कई भावों का संकर है।

मोट्टायित:—इष्टकथादि (प्रियतमकथानुकरणादि) के अवसर पर तद्भावभावन (प्रियानुराग से भावितान्तःकरणत्व) को मोट्टायित कहते हैं। प्रिय की कथा को सुन कर प्रिय के भाव (सत्ता, अस्तित्व) में भावित (मिश्रित, एकीभूत) हो जाना मोट्टायित है। यथा—

---

१. कर्णार्पितो रोध्रकषायरुक्षे गोरोचनाक्षेपनितान्तगौरे ।
तस्याः कपोले परभागलाभाद्बबन्ध चक्षूंषि यवप्ररोहः ॥

२. श्रुत्वाऽऽयातं बहिः कान्तमसमाप्तविभूषया ।
भालेऽञ्जनं दृशोर्लाक्षा कपोले तिलकः कृतः ॥

३. रतिक्रीड़ाद्यूते कथमपि समासाद्य समयं
मया लब्धे तस्याः क्वणितकलकण्ठार्धमधरे ।
कृतभ्रूभंगासौ प्रकटितविलक्षार्धरुदित-
स्मितक्रोधोद्भ्रान्तं पुनरपि विदध्यान्मयि मुखम् ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सखी द्वारा नायक से नायिका की दशा-वर्णन में—हे सुभग! (उस नायिका के) स्मर-दवथु (कामज-परिताप) का उन्नयन (निश्चयात्मक ज्ञान, अवगमन) प्राप्त करने के निमित्त तुम्हारी कथा सखियों द्वारा प्रस्तुत की जाने पर वह (नायिका) जम्हाई तथा अंगभंगियों से युक्त वितत-पृष्ठा (झुकी हुई पीठ वाली), उदस्त-पीनस्तनाग्रा (उठाये गये पीन स्तनों के अग्रभागवाली, उन्नत कुचों के अग्रभागों वाली।) एवं तत-वलयित-बाहु (फैले हुए पुनः गोलाई में मुड़े हुए बाहु वाली) हो जाती है।"[१] उपर्युक्त शरीरचेष्टाय मोट्टायित के लक्षण हैं।

कुट्टमित :—नायकद्वारा केशाधरग्रह (केश, अधरादि के ग्रहण किये जाने पर) के समय पर सानन्दान्त (अन्त वा अन्तः-करण में आनन्दित होती हुई) भी नायिका का कुपित होना कुट्टमित है। यथा—'प्रणयी (प्रेमी) नायक द्वारा अधर के दष्ट होने या किये जाने पर (दाँतों से काटे जाने पर) पाणि के अग्रभाग को कंपित करती, हिलाती हुई नायिका के सीत्कार (पीड़ा के कारण 'सी......सी' करना) तथा शुष्करुदित (निरश्रु रुदन, बिना आँसू बहाये रोना) से, जो, रति रूपी नाटक के विभ्रमों (शृंगारिक क्रीड़ाओं) के नान्दी-पद (मंगलाचरण) हैं, अथवा स्मर (कामदेव) के परम (मुख्य, आद्य) आज्ञाक्षर (आज्ञासूचक शब्द) हैं, युक्त नारियाँ विजयिनी (सबको वश में करने वाली) होती हैं।"[२]

विब्वोक :—गर्व और अभिमानपूर्वक किये गये इष्ट (प्रिय) के अनादर को विब्वोक कहते हैं। यथा—"हे कान्ते (प्रिये) तुम्हारे तिल के समान (मुख को विभूषित करने वाले) काले (भंगियुत = कुटिल) केशों का चञ्चल अंगुलियों से सव्याज (कपटपूर्वक) विरलित (पृथक्कृत) करते समय संस्पर्श करते हुए, नीले अंचल को भली भांति उछाल कर, उठाकर बारम्बर

---

१. स्मर दवथु निमित्तं गूढ़मुन्नेतुमस्याः
सुभग तव कथायां प्रस्तुतायां सखीभिः।
भवति विततपृष्ठोदस्तपीनस्तनाग्रा
ततवलयितबाहुर्जृम्भितैः सांगभंगैः॥

२. नान्दीपदानि रतिनाटकविभ्रमाणा-
माज्ञाक्षराणि परमाण्यथवा स्मरस्य।
दष्टेऽधरे प्रणयिना विधुताग्रपाणेः
सीत्कारशुष्करुदितानि जयन्ति नार्याः॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

तुम्हारे कुचों को उठाते हुए (समय), तरंगित (लहराती, कंपित) भौंहों की भंगि से युक्त, अंचित (कुटिल) नेत्रों से, जो तुमने मुझे सावज्ञ (तिरस्कार से) देखा (मेरी ओर आँखे फेरीं), तुम्हारे उस गर्व (युक्त व्यवहार से) मैं अवधीरित (तिरस्कृत) न होकर कृतार्थीकृत (पूर्ण मनोरथ) हो गया हूं।"[१] नायिका द्वारा नायक का सगर्व अवधीरण विव्वोक है।

ललित:—सुकुमार (भली भाँति आनन्दप्रद) अङ्गों के स्निग्ध (अकर्कश, अरुक्ष) विन्यास (स्थापन) को ललित कहते हैं। यथा—"भ्रूभंगिमा के सहित, कर-किसलय (नवपल्लव के समान हाथ) को घुमा कर बातें करती, सुन्दर-सुन्दर नेत्रों के अञ्चल (कोरों, किनारों) से देखती, स्वैर (धीरे-धीरे) चलते समय कमल के समान चरणों को लीला (सुन्दरता) से विन्यस्त (स्थापित) करती हुई वह नायिका प्रथम वयस (नवीन अवस्था, नवयौवन) के द्वारा बिना संगीत के ही नचाई गई।"[२] उभरते हुए यौवन के कारण नायिका कोमल करों को घुमा-घुमाकर सुन्दर कटाक्ष करती हुई इस प्रकार से पद-विन्यास कर रही है मानो नृत्य कर रही हो। यहाँ ललित नामक अलंकार है।

विहृत :—प्राप्त काल (उपयुक्त समय) पर भी व्रीड़ा (लज्जा) के कारण यदि नायिका न बोले तो उस भाव को विहृत कहते हैं—"नवपल्लव के समान सुन्दर चरणों के अँगूठे से भूमि को किसी अपदेश (ब्याज, बहाना) से लिखती (चिह्नित करती) हुई, बार-बार अपने चमकीले (सित) कर्व्बुर (कई वर्णवाले) चञ्चल नेत्रों की पुतलियों को मेरी ओर फेंकती हुई, एवं वक्रलज्जा (ह्री) के कारण नम्र तथा वाक्यगर्भ (कुछ कहने का भाव छिपाये) किंचित स्फुरित अधरपुट (अधररूपी आच्छादन) को धारण करती हुई उसने जो अपने हृदयस्थ भाव (बात) को भी मुझ से नहीं कहा वही विचार मेरे मानस को

---

१. सव्याजं तिलकालकान्विरलयंल्लोलाङ्गुलिः संस्पृशन्
वारंवारमुदञ्चयन्कुचयुगप्रोदञ्चनीलाञ्चलम् ।
यद्भ्रूभङ्ग-तरंगिताञ्चितदृशा सावज्ञमालोकितं
तद्गर्वादवधीरितोऽस्मि न पुनः कान्ते कृतार्थीकृतः ॥

२. सभ्रूभंगं करकिसलयावर्तनैरालपन्ती
सा पश्यन्ती ललितललितं लोचनस्याञ्चलेन ।
विन्यस्यन्ती चरणकमले लीलया स्वैरयातै-
निःसङ्गीतं प्रथमवयसा नर्तिता पङ्कजाक्षी ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पीड़ित कर रहा है।"[1] यहाँ प्राप्त अवसर (नायक के समीप एवं सम्मुख होने) पर भी, लज्जावश वाक्य का अवचन विहृत है।

नायक के व्यापार की चार वृत्तियाँ:—नायक के व्यापार की चार तरह की वृत्तियां होती है—कैशिकी, सात्वती, आरभटी तथा भारती। इनमें से कैशिकी वृत्ति गीत, नृत्य, विलासादि शृंगार-चेष्टितों के कारण मृदु होती है। शृङ्गार से सम्बद्ध होने के कारण कैशिकी वृत्ति का वर्णन यहाँ प्रसक्त है।

कैशिकी वृत्ति चतुरंगिका होती है। इसके चार अङ्ग हैं—नर्म, नर्मस्फिज, नर्मस्फोट और नर्मगर्भ। प्रियोपच्छन्दनात्मक (प्रिय को लुब्ध तथा तुष्ट करने वाला) वैदग्ध्य-क्रीड़ित (रसिकतापूर्ण क्रीड़ा, हास्य-विनोदादि) को नर्म कहते हैं। धनिक के अनुसार 'अग्राम्य एवं इष्टजनावर्जनरूप परिहास नर्म है। नर्म अग्राम्य (शिष्ट) तथा इष्टजनावर्जक (प्रियजन को आकृष्ट, प्रसन्न करने वाला) होना चाहिए। नर्म तीन प्रकारसे विहित वा रचित होता है—शद्ध हास्यरचित, सशृङ्गारहास्यरचित एवं सभयहास्यरचित। प्रथम अर्थात् हास्य नर्म केवल हास्य युक्त होता है। शृङ्गारयुक्त नर्म तीन प्रकार का होता है—(१) आत्मोपक्षेपक अर्थात् स्वानुराग-निवेदक (२) सम्भोगेच्छाप्रकाशक तथा (३) मानपरक (सापराध प्रिय-प्रतिभेदक = प्रियके गुप्ताचरणके रहस्य का भेदन, उद्घाटन करने वाला)। भययुक्त नर्म द्वेधा (दो प्रकार का) होता है—शुद्ध तथा अङ्ग (दूसरे रस के अङ्गवत्। ये छः प्रकार के नर्म वाक्, वेष तथा चेष्टा के व्यतिकर (संयोग, सम्बन्ध) से अष्टादशधा (१८ प्रकार के) हो जाते हैं। इन सब नर्मों में हास्य समाविष्ट रहता है। वाणी, वेषभूषा तथा चेष्टा के द्वारा इन नर्मों का प्रकाशन होता है।

वचोहासनर्म का उदाहरण :—सखी ने जब पार्वती के चरणों को रंजित कर (अलक्तक लगाकर) तथा परिहासपूर्ण यह आशीष देकर कि इस (अलक्तक से रंजित चरण) से पति (शिव) के शिरस्थ चन्द्रकला को छूना तो (पार्वती ने) उस (सखी) को, माल्य से, निर्वचन पीट दिया (ताड़ित कर दिया)"[2] सखी का उक्त वचन वाग्नर्म है।

---

१. पादाङ्गुष्ठेन भूमिं किसलयरुचिना सापदेशं लिखन्ती
भूयोभूयः क्षिपन्ती मयि सितशबले लोचने लोलतारे।
वक्त्रं ह्री नम्रमीषत्स्फुरदधरपुटं वाक्यगर्भं दधाना
यन्मां नोवाच किञ्चित्स्थितमपि हृदये मानसं तद्दुनोति ॥

२. पत्युः शिरश्चन्द्रकलामनेन स्पृशेति सख्या परिहासपूर्वम्।
CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection
सा रञ्जयित्वा चरणौ कृताशीर्माल्येन तां निर्वचनं जघान ॥

शृंगारवदात्मोपक्षेपक नर्मः--"हे पथिक मध्याह्न (दुपहरी) विता लो, श्रमजल का त्याग कर दो (दूर कर दो, सुखा दो), यहाँ ठहर कर जल पी लो। इस शीत (ठंढे) प्रपामण्डप (जल पिलाने का मण्डप) को शून्य जानकर, विवश होकर, छोड़ो मत (यहाँ से जाओ मत)। हे पथिक ! घस्मर (भक्षक, पेटू) स्मर (कामदेव) के बाणों से त्रस्त (भयभीत) अपनी प्रेयसी का ही स्मरण करो (क्योंकि) तुम्हारे चित्त को प्रपापालिकायें (प्याऊ पर रहनेवाली स्त्रियाँ) प्रसन्न नहीं कर सकतीं।"[1] प्रपापालिका के उक्त वचन शृङ्गारयुक्त आत्मोपक्षेप (स्वानुराग निवेदन) के व्यञ्जक हैं।

सम्भोग-नर्म--सूर्य के सालोक (आलोकयुक्त, प्रकाशमान्) रहते हुए भी (दिन रहते हुए भी) अनिच्छित एवं हँसते हुए गृहस्वामी के चरणों को पकड़ कर हँसती हुई हिला रही है।[2] यहाँ हँसते हुए एवं अनिच्छित (सम्भोग की इच्छा न रखते हुए) गृहस्वामी के चरणों को हिलाना संभोगेच्छा-प्रकाशक-संभोग नर्म है।

माननर्म :—"तुमने जो मुझ से (मेरे लिए) कहा था कि तुम (मैं नायिका) मेरी (नायक की) प्रिया हो वह अवितथ (सत्य) है, क्योंकि प्रिया के द्वारा धारण किया गया दुकूल (रेशमी वस्त्र) पहन कर मेरे घर आये हो। (ठीक है) कामीजनों के शृंगार की शोभा (मण्डनश्री) वल्लभा (प्रिया) के द्वारा (मेरे द्वारा, तुम्हारे उक्त कथनानुसार मैं तुम्हारी प्रिया हूं) देखे जाने पर (अवलोकन से) सफलत्व को प्राप्त होता है।"[3] यहाँ नायक

---

१. मध्याह्नं गमय त्यज श्रमजलं स्थित्वा पयः पीयताम्
मा शून्येति विमुञ्च पांथ विवशः शीतः प्रपामण्डपः।
तामेव स्मर घस्मरस्मरशरत्रस्तां निजप्रेयसीं
त्वच्चित्तं तु न रञ्जयति पथिक प्रायः प्रपापालिकाः॥

२. सालोए च्चिअ सूरे घरिणी घरसामिअस्स घेत्तूण।
णेच्छन्तस्स वि पाए धुअइ हसन्ती हसन्तस्स॥
[सालोके एव सूर्ये गृहिणी गृहस्वामिकस्य गृहीत्वा।
अनिच्छतोऽपि पादौ धुनोति हसन्ती हसतः॥]

३. तदवितथमवादीर्यन्मम त्वं प्रियेति
प्रियजनपरिभुक्तं यद्दुकूलं दधानः।
मदधिवसतिभागाः कामिनां मण्डनश्री-
व्रजति हि सफलत्वं वल्लभालोकनेन॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

भूल से, रात में सम्भुक्त कनिष्ठा नायिका वा परस्त्री का दुकूल पहन कर प्रातःकाल ज्येष्ठा नायिका के पास आया है। परस्त्री सम्भोगदुःखिता ज्येष्ठा नायिका अपराधी नायक को मान-नर्म (शिष्ट परिहास) द्वारा लज्जित कर रही हैं। यह मान-नर्म व्यंजना-गर्भ है।

शृंगाराङ्गभयनर्म :— भयहर्षादि के द्वारा रसान्तर से कोपभ्रंश का उदाहरण, पृ० १०८ 'अभिव्यक्तालीकः—वधूम्' द्रष्टव्य है।

नर्मस्फिञ्ज :--नवसंगमकाल में नववधू को पहले, जो सुख प्राप्त होता है किन्तु अन्त में भय होता है, उसे नर्मस्फिञ्ज कहते हैं। यथा—

"हे सुन्दरि! सङ्गम-साध्वस (संभोगकालीन उद्वेग, भय) का त्याग कर दो। मैं बहुत समय से प्रणयोन्मुख (तुम्हारे प्रेम के लिए उत्सुक) हूँ। सहकारता को प्राप्त (आम्रस्वरूपधारी, आम का वृक्ष बना हुआ) मेरे प्रति तुम अतिमुक्तलता (माधवीलता) का आचरण करो।"[1] जिस प्रकार अतिमुक्तलता आम्रवृक्ष से आलिंगित, लिपटी हुई, रहती है उसी प्रकार तुम भी मेरा आलिंगन करो। 'मालविकाग्निमित्र' नाटक में संकेतस्थल पर आई हुई मालविका से अग्निमित्र की उक्ति है। सुखारम्भ किन्तु भयान्त नवसंगम लक्षणयुक्त नर्मस्फिज का यह सुन्दर उदाहरण है।

नर्मस्फोटः--यह उस कैशिकीवृत्ति का अङ्ग है जो भावों के लव (लेश) मात्र से (अत्यल्प भाव से) रस की अल्पसूचना देता है। यथा 'मालतीमाधव' में मकरन्द के निम्नोक्त कथन के अनुसार माधव की सालसगति मात्र (केवल मन्दमन्थर चलने का ढंग मात्र) मालती के प्रति उसके (माधव के) यौवनज कामविकारयुक्त अनुराग को (रति को, शृंगाररस को) प्रकट करते हैं।

नर्मगर्भः—किसी अर्थ के हेतु के लिए अर्थात् किसी प्रयोजन से नेता का छन्नप्रतीचार (गुप्तप्रवेश) नर्मगर्भ है। इस (नर्मगर्भ नामक) कैशिकी (वृत्ति) के सहास्य और निर्हास्य दो अंग होते हैं। यथा—दोनों (ज्येष्ठा तथा कनिष्ठा) नायिकाओं को एक ही आसन पर बैठा देखकर, आदरपूर्वक उनके पीछे आकर एक के (ज्येष्ठा के) दोनों नेत्र निमीलित (मूँद) कर, विहित (उचित नियम वा शृंगारिक आचार से अनुमोदित) शृंगारिक क्रीड़ा

१. विसृज सुन्दरि सङ्गमसाध्वसं ननु चिरात्प्रभृति प्रणयोन्मुखे।
परिगृहाण गते सहकारतां त्वमतिमुक्तलताचरितं मयि॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

के उद्देश्य के छल से, ईषत् (थोड़ी) वक्रित-कंधर (झुकी, टेढ़ी ग्रीवायुक्त) एवं सपुलक (रोमांचयुक्त) होकर प्रेम से उल्लासित (हर्षयुक्त) मानस तथा अन्तर्हास से लसित कपोल फलकों (गालों के स्थान) वाली दूसरी (कनिष्ठा) नायिका को धूर्त (नायक) चूम लेता है।"[१]

यहाँ कनिष्ठा नायिका को ज्येष्ठा नायिका के जाने बिना, उसकी ओट में, चूमने के अर्थ-हेतु से (प्रयोजन के कारण से) नर्मगर्भ अर्थात् नायक के छन्नप्रतीचार (गुप्तप्रवेश, रहस्यमय आचरण) का चित्रण है।

---

१. दृष्ट्वैकासनसंस्थिते प्रियतमे पश्चादुपेत्यादरा
देकस्या नयने निमील्य विहितक्रीड़ानुबन्धच्छलः।
ईषद् वक्रितकन्धरः सपुलकः प्रेमोल्लसन्मानसा-
मन्तर्हासलसत्कपोलफलकां धूर्तोऽपरां चुम्बति ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पंचम अध्याय

विश्वनाथ कृत साहित्यदर्पण में श्रृंगार रस का विवेचनः

साहित्यदर्पण में विश्वनाथ कविराज ने रस एवं उसके व्यंजक विभाव, अनुभाव, व्यभिचारीआदि नायक-नायिकादिका विशद एवं विस्तृत विवेचन किया है। तद-नुसार उन्होंने श्रृंगार, हास, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, .वीभत्स, अद्भुत, तथा शान्त--ये नौ रस-भेद माने हैं। आगे चलकर उन्होंने वात्सल्य को भी उसके स्फुट चमत्कार के कारण दसवां स्वतंत्र रस माना है[1]। इसके अतिरिक्त उन्होंने उसकी महत्ता का भी प्रतिपादन बड़े सामर्थ्य से किया है।

श्रृंगाररसः—उनके अनुसार श्रृंगार रस की परिभाषा एवं विवेचना इस प्रकार है—मन्मथ के उद्भेद (अंकुरण) को श्रृंग कहते हैं। इस मन्मथोद्-भेद रूप श्रृंग के आगमन (उत्पत्ति) का हेतु उत्तम-प्रकृतिप्राय श्रृङ्गाररस कहा जाता है। परोढ़ा (अन्य की विवाहिता स्त्री) एवं अननुरागिणी वेश्या के वर्जन (निषेध) पूर्वक अर्थात् इनके अतिरिक्त, अन्य नायिकायें तथा दक्षिणादि नायक श्रृंगार रस के आलम्बन विभाव माने जाते हैं"। चन्द्र, चन्दन, रोलम्ब (भ्रमर) रुत् (पशु-पक्षियों के शब्द वाशित) आदि इस श्रृंगार रस के उद्दी-पन विभाव है।[2] उग्रता, मरण, आलस्य, एवं जुगुप्सा को छोड़ कर शेष इसके व्यभिचारीभाव हैं[3] तथा रति स्थायी भाव है।[4] इस रस का वर्ण श्याम तथा

---

१. श्रृङ्गारहासकरुणरौद्रवीरभयानकाः।
वीभत्सोऽद्भुत इत्यष्टौ रसाः शान्तस्तथा मतः॥
स्फुटं चमत्कारितया वत्सलं च रसं विदुः।

२. उद्बुद्धं कारणैः स्वैः स्वैर्बहिर्भावं प्रकाशयन्
लोके यः कार्यरूपः सोऽनुभावः काव्यनाट्ययोः॥
उद्दीपनविभावास्ते रसमुद्दीपयन्ति ये।
आलम्बनस्य चेष्टाद्या देश कालादयस्तथा॥
चेष्टाद्या इत्याद्यशब्दाद्रूपभूषादयः।
कलादीत्यादिशब्दाच्चन्द्रचन्दनकोकिलालापभ्रमरझंकारादयः॥

३. निर्वेदावेगदैन्यश्रममदजड़ता औग्र्यमोहौ विबोधः
स्वप्नापस्मारगर्वा मरणमलसतामर्षनिद्राऽवहित्थाः।
औत्सुक्योन्मादशंकाः स्मृतिमतिसहिता व्याधिसंत्रासलज्जा
हर्षासूयाविषादाः सधृति चपलता ग्लानिचिन्तावितर्काः॥ ३.१४९

४. अविरुद्धाविरुद्धा वा यं तिरोधातुमक्षमाः।
आस्वादाङ्कुरकन्दोऽसौ भावः स्थायीति संमतः॥ ३.१७४

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

विष्णु इसके दैवत हैं। विप्रलम्भ एवं सम्भोग ये दो शृंगार रस के भेद हैं। जहाँ रति (अनुराग) तो प्रकृष्ट है किन्तु अभीष्ट (प्रिय) प्राप्त नहीं होता वहाँ विप्रलम्भ होता है। यह विप्रलम्भ चार प्रकार का होता है—पूर्वराग, मान, प्रवास तथा करुणात्मक विप्रलम्भ।

पूर्वरागः—समागम के पूर्व श्रवण एवं दर्शन से जब नायक-नायिका परस्पर संरूढ-राग (प्रेमोन्मुख) हो कर दशा विशेष को प्राप्त होते हैं तब उस (दशा) को पूर्वराग कहते है। दूत, वन्दी एवं सखी के मुख से (प्रिय सम्बन्धी) श्रवण सम्पन्न होता है तथा इन्द्रजाल में, चित्र मे, स्वप्न में, तथा साक्षात् प्रिय का दर्शन हो जाता है। पूर्वराग की दश कामदशायें होती हैं—अभिलाष, चिन्ता, स्मृति, गुणकथन, उद्वेग, संप्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मृति। स्पृहा को अभिलाष कहते हैं, प्राप्त्युपायादि (प्रिय की प्राप्ति के उपाय) चिन्तन हैं, उन्माद चेतनाचेतन में अपरिच्छेद (अविवेक, अन्तर का अज्ञान) को कहते हैं, चित्त के भृश भ्रमण (अतिशय अस्थिरता) के कारण अलक्ष्य वाक्यों का प्रयोग (निरुद्देश्य, असम्बद्ध बातें करना) प्रलाप है; पाण्डुता (शरीर का पीला पड़ जाना), कृशता (क्षीणता, तनुता), एवं दीर्घ निःश्वास आदि व्याधि के लक्षण हैं, तथा अङ्गों एवं मन के हीनचेष्टत्व को जड़ता कहते हैं। उदाहरण—

अभिलाषः—प्रेम से आर्द्र (सिक्त, तरल), प्रणयस्पृश (प्रणयको छूने वाली, उसे उत्तेजित करने वाली), परिचय प्राप्त होने पर प्रगाढ़ राग का उदय (उत्पत्ति, सृष्टि) करने वाली वे भोली (सुन्दर) दृष्टियां तथा उनकी स्वभाव से मृदुल वे चेष्टायें क्या मेरी होंगी, जिनका क्षणिक आशंसा-परिकल्पन (इच्छा की रचना वा प्रस्तुतीकरण, प्राप्त्याभिलाष) भी वाह्यकरणों (बाहरी इन्द्रियादि, आंख, कान आदि) के क्रियाव्यापारादि को अवरुद्ध कर (उनको मुग्ध, स्तब्ध कर) अन्तःकरण (मन, वुद्धि, चित्त, अहंकार, अन्तःकरणचतुष्टय) के सान्द्र (अतिशय स्निग्ध) आनन्द का लय (तल्लीनीकरण, विश्रान्ति) कर देता है।[१] यहाँ प्राप्ति की इच्छामात्र से बाह्येन्द्रियों एवं अन्तःकरण के मुग्ध एवं

स्वकसूत्रवृत्त्या भावानामन्येषामनुगामकः।
न तिरोधीयते स्थायी तैरसौ पुष्यते परम् ॥ वही

१. प्रेमार्द्राः प्रणयस्पृशः परिचयादुद्गाढरागोदया—
स्तास्ता मुग्धदृशो निसर्गमधुराश्चेष्टा भवेयुर्मयि।
यास्वन्तःकरणस्य बाह्यकरण व्यापाररोधी क्षणा—
दाशंसापरिकल्पितास्वपि भवत्यानन्दसान्द्रो लयः ॥ ३.१९२.

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

तल्लीन, तन्मय हो जाने का वर्णन है। मालती के साक्षाद्दर्शन से प्ररूढ़राग माधव का अभिलाष व्यंजित है।

इन्द्रजाल-प्ररूढ़राग नायक की चिन्ता :—'मनोभव (कामदेव) की साक्षात लक्ष्मी के समान उस कुरङ्गाक्षी (मृगनयनी) को मैं कैसे देखूंगा ? इस प्रकार चिन्ताकुल कान्त (नायक) को निशीथ (रात्रि) में निद्रा नहीं आती।'[१] यहां किसी नायक ने इन्द्रजाल (माया) में नायिका को देखा है। उसकी प्राप्ति के लिए नायक चिन्तित है।

स्मृति:—'मुझको, सकपट (छल से), कहीं किंचित प्रणीतविलोचन (दृष्टि डालता) देखकर, उस (नायिका) ने तिर्यंक (वक्र), विजृंभित (संकुचित) पुतलियों से मेरी ओर दृष्टिपात किया। अपनी सखी को आया देख कर उसने अपने सलज्ज आनन (मुख) को नीचे कर लिया (अवांचित-मुखयुक्त, अवाङ्मुखी हो गई) उस विकसित सुन्दरमुख को मैं बारबार स्मरण करता हूँ।"[२] यहाँ बारम्बार स्मरण करना स्मृति है।

गुणकथन :—"उसके दोनों नेत्र खंजन (के नेत्रों) का गंजन (अवज्ञा) करने वाले अर्थात् खंजन पक्षी के चंचल नेत्रों से अधिक चंचल हैं, दोनों पाणि सरसिज (कमल) के प्रत्यर्थी (प्रतिस्पर्धी) हैं वक्षोज (वक्ष से उत्पन्न होने वाले, कुच, स्तन) करि (गज) के कुंभ (गंडस्थल) का विभ्रम (भ्रान्ति) उत्पन्न करने वाले, अथवा करिकुम्भ का विभ्रम (सौन्दर्य) उत्पन्न करने वाले (करि-कुंभवत् सुन्दर, विशाल) एवं अत्यन्त उन्नत (उठे हुए) हैं, उसकी कान्ति स्वर्ण एवं चम्पक पुष्प की प्रतिनिधि (स्थानापन्न) है (स्वर्ण तथा चंपकवत् वर्ण वाली है). उसकी वाणी अमृत का निर्झरण करने वाली है, स्मेर (विकसित) नीलकमल की माला के समान (सोदर) वपु (सौन्दर्य) वाली उसके कटाक्षों की छटा है।"[3]

---

१. कथमीक्षे कुरङ्गाक्षी साक्षाल्लक्ष्मीं मनोभुवः।
इति चिन्ताकुलः कान्तो निद्रां नैति निशीथिनीम्॥

२. मयिसकपटं किञ्चित्क्वापि प्रणीत विलोचने
किमपि नयनं प्राप्ते तिर्यग्विजृम्भिततारकम्।
स्मितमुपगतामालीं दृष्ट्वा सलज्जमवाञ्चितं
कुवलयदृशः स्मेरं स्मेरं स्मरामि तदाननम्॥ ३.१६२

३. नेत्रे खंजनगंजने सरसिजप्रत्यर्थी पाणिद्वयं
वक्षोजौ करिकुम्भविभ्रमकरीमत्युन्नतिं गच्छतः।
कान्तिः कांचनचंपकप्रतिनिधिर्वाणी सुधास्यन्दिनी
स्मेरेन्दीवरदामसोदरवपुस्तस्याः कटाक्षछटाः॥ ३.५९

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उद्वेगः—दूती नायक से कहती है, "तुम्हारे वियोग में वह नायिका श्वास मुंचन करती है, भूतल पर लुण्ठन करती (लोटती) तुम्हारा मार्ग देखती, दीर्घ रोदन करती (बहुत समय तक रोती रहती), क्षाम (दुर्बल, क्षीण) भुजा-वल्लरी को (लताके समान कोमल, क्षीण भुजाओं को) इधर-उधर फेंकती रहती (उस नायिका के) प्राण के समान प्रिय तुम्हारे संगम (मिलन) की स्वप्न में कांक्षा (इच्छा) करती रहती (यह अभिलाषा करती हुई कि प्रत्यक्ष नहीं तो स्वप्न में ही तुम्हारा दर्शन हो जाय) वह चाहती है कि (किसी प्रकार) निद्रा ही आ जाय (जिससे स्वप्न में तुमसे मिलन हो जाय)। किन्तु उसका दग्ध (तुच्छ, निकृष्ट) भाग्य (उसे) वह (निद्रा) भी नहीं देता।"[१] यहाँ, नायिका के कामोद्वेगजन्यताप का वर्णन सखी ने नायक से किया है।

प्रलापः—"त्रिभागशेष (तीन भाग बीत चुके हैं—जिनके ऐसी) रजनी (प्रायः रात्रि के तीसरे प्रहर, पिछले प्रहर) के क्षण (समय) नेत्रों को मूँदकर (किंचिन्मात्रशयन कर) वह (पार्वती) "हे नीलकण्ठ! (शंकर) कहाँ जा रहे हो ठहरो? ऐसे अलक्ष्य वाक् बोलती (निरुद्देश्य कथन, प्रलाप करती) हुई असत्य (कल्पित) कण्ठ (शिव के कण्ठ) मे बाहुओं की बन्धना अर्पित करती हुई (अवास्तविक, स्वप्न में देखे गये शिव के गले में भुजायें बाँधती हुई) जाग जाती है।"[२] शंकर के वियोग में पार्वती की प्रलापावस्था का वर्णन है।

उन्मादः—"हे भाई द्विरेफ (भ्रमर) समन्त (सार्वत्रिक, सब ओर) आप के भ्रमण करते (समय) क्या मेरी प्राणाधिका प्रियतमा (तुमसे) देखी गई (क्या चारो तरफ घूमते समय तुमने मेरी, प्राण से भी अधिक प्रिया को देखा)? झंकार की अनुभूति करके नायक पुनः सानन्द कहता है "हे मित्र! क्या तुम ओम् (हाँ) कह रहे हो? तब मुझे शीघ्र बताओ कि वह (मेरी प्रिया) क्या-क्या करती है? कहाँ है? और कैसी है?"[१] चिन्ता, संमोह व उन्माद का यहाँ अच्छा वर्णन है।

---

१. श्वासान्मुंचति, भूतले विलुंठति त्वन्मार्गमालोकते,
दीर्घं रोदिति, विक्षिपत्यत इतः क्षामां भुजावल्लरीम्।
किं च प्राणसमान, कांक्षितवती स्वप्नेऽपि ते संगमं
निद्रां वाञ्छति, न प्रयच्छति पुनर्दग्धो विधिस्तामपि ३।१०६

२. त्रिभागशेषासु निशासु च क्षणं निमील्य नेत्रे सहसा व्यबुध्यत।
क्व नीलकण्ठ, व्रजसीत्यलक्ष्यवागसत्यकण्ठार्पितबाहुबन्धना॥ ३।१९३

१. भ्रातर्द्विरेफ, भवता भ्रमता समन्तात्
प्राणाधिका प्रियतमा मम वीक्षिता किम्।
ब्रूषे किमोमिति सखे, कथमाशु तन्मे
[illegible] ॥ ३।१६०

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

व्याधिः—"हे सखि ! तुम्हारा पाण्डुर (पीला) एवं क्षाम (क्षीण) मुखमण्डल, सानुराग (सरस) हृदय, आलस्यपूर्ण वपु (शरीर) तुम्हारे हृदन्त (हृदयस्थ) क्षेत्रियरोग को व्यावेदित (सूचित) कर रहा है ।"[१]

जड़ताः—अङ्गों तथा मन के चेष्टाशून्यत्व को जड़ता कहते हैं—"कमल की शय्या पर पड़ा हुआ देह तो एक दम निश्चल है । हाँ, दीर्घ निःश्वास से यह अवश्य सिद्ध होता है कि अभी जीती है ।"[२] यहां जड़ता है ।

मरणः—रस के विच्छेद (नाश) का हेतु होने के कारण मरण का वर्णन नहीं किया जाता किन्तु जातप्रायमरण (घटित हुए के समान, मृत्यु तुल्य) दशा और चेतस (चित्त) से आकांक्षित मात्र मृत्यु (केवल मृत्यु की इच्छा) वाच्य है (वर्णित हो सकती है) । यदि अदूरतः शीघ्र प्रत्युज्जीवन (का निश्चय हो) तो मरण का भी वर्णन कर दिया जाता है । यथा—जातप्रायमरण—"वह तन्वी (कृशकाया नायिका) विदलिता (खिलती हुई) शेफालिका को देखकर किसी प्रकार प्राण-धारण कर सकी है । संप्रति (इस समय) चरणायुध (कुक्कुट) का रुत (ध्वनि) सुनकर, मैं नहीं जानती, वह तपस्विनी (अभीष्ट की सिद्धि, तुम्हारे मिलन के लिए, कष्ट उठाने वाली) क्या हो जायेगी (पता नहीं वह मर जाएगी अथवा जीवित रहेगी) ।"[३] यहाँ नायिका के जातप्रायमरण का वर्णन है । सखी के कहने का आशय यह है कि नायिका जीवन-मरण के सन्धि-स्तूप पर स्थित होती हुई भी मरण-प्राया है ।

आकांक्षित मरणः—"भ्रमर अपनी झंकार (गुंजन) के कोलाहल सामूहिक रव) से हरित (दिशाओं) को परिपूर्ण कर दें, चन्दन-वनी जात (चन्दन के वन से उत्पन्न) नभस्वान् (वायु) मन्द-मन्द बहे, हर्षित होते हुए केलीपिक (काम-क्रीड़ा करने वाली कोयल) पंचम स्वर में कल-ध्वनि (अस्पष्ट

---

१. पाण्डुक्षामं वदनं हृदयं सरसं तवालसं च वपुः ।
आवेदयति नितान्तं क्षेत्रियरोगं सखि हृदन्तः ॥ ३।१९३ ॥

२. भिसिणीअलसअणीए निहिअं सव्वं सुणिच्चलं अङ्गम् ।
दीहो णीसासहरो एसो साहेइ जीअइत्ति परम् ॥ ३।१९३ ॥
[बिसिनीदलशयनीये निहितं सर्वं सुनिश्चलमङ्गम् ।
दीर्घो निःश्वासभर एष साधयति जीवतीति परम् ॥]

३. शेफालिकां विदलितामवलोक्य तन्वी
प्राणान् कथंचिदपि धारयितुं प्रभूता ।
आकर्ण्य सम्प्रति रुतं चरणायुधानां
किं वा भविष्यति न वेद्मि तपस्विनी सा ॥ ३।१९४ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

मधुर ध्वनि) करें, अश्मसार (पत्थर तथा लोह) के समान कठोर यह प्राण भी चला जाय"[1] यहाँ नायिका द्वारा मरण की आकांक्षा प्रकट की गई है।

अदूरतः पुनरुज्जीवन-लक्षणमरण:—इसका उदाहरण 'कादम्बरी' में 'महाश्वेता-पुण्डरीक' के वृत्तान्त में प्राप्त होता है। वहाँ पुण्डरीक के मरणानन्तर आकाश-सरस्वती-भाषानन्तर (आकाश-वाणी के द्वारा) पुण्डरीक के पुनरुज्जीवन की आशा होने से महाश्वेता के हृदय में रति का भाव पुनः अंकुरित होता है। संगम की प्रत्याशा रति का पुनरुद्भावन करती है, अतः वहां शृंगार रस ही सिद्ध होता है। आकाशवाणी से पूर्व स्थायी भाव शोक होने से वहाँ करुण-रस की स्थिति विद्वानों ने मानी है।

उक्त कामदशा सम्बन्धी अन्य मत:— कुछ विद्वानों ने अन्य दश कामदशायें मानी हैं—

प्रथम-नयन-प्रीति, चित्तासंग (चित्त की आसक्ति), संकल्प, निद्राच्छेद (निद्रा का नाश), तनुता (कृशता), विषय-निवृत्ति, त्रपा-नाश, उन्माद, मूर्च्छा और मृति (मृत्यु।[2])

पूर्वराग के सम्बन्ध में साहित्यदर्पणकार ने स्त्रियों के, तदनन्तर पुरुषों के राग (अनुराग) की स्थापना का औचित्य बताकर उनका विवरण दिया है। उनके अनुसार रागान्विता स्त्री को रागयुक्त चेष्टाओं तथा उनके इंगितों को देखकर ही पुरुषों में रागोत्पत्ति होती है। इसके अतिरिक्त स्त्रियों का अनुराग अधिक हृदयंगम भी होता है।

पूर्वराग विप्रलम्भ के भेद:—पूर्वराग के तीन भेद होते हैं—नीली पूर्वराग, कुसुम्भ पूर्वराग एवं मंजिष्ठा पूर्वराग। जो रोग बहुत शोभित तो नहीं होता (किन्तु) मनोगत होकर (मन, हृदय में पहुँचकर) फिर अपेत (अपगत, तिरोहित) नहीं होता वह नीली राग है। जैसे श्रीराम और सीता का प्रेम। कुसुम्भराग वह (राग) है जो शोभित होता है (किन्तु) तिरोहित हो जाता

---

१. रोलम्बाः परिपूरयन्तु हरितो झङ्कारकोलाहलै-
मन्दं मन्दमुपैति चन्दनवनीजातो नभस्वानपि।
माद्यन्तः कलयन्तु चूतशिखरे केलीपिकाः पञ्चमं
प्राणाः सत्वरमश्मसारकठिना गच्छन्तु गच्छन्त्वमी॥

२. निद्राप्रीतिः प्रथमं चित्तासंगः ततोऽथ संकल्पः।
निद्राच्छेदस्तनुता विषयनिवृत्तिस्त्रपानाशः।
उन्मादो मूर्च्छा मृतिरित्येताः स्मरदशा दशैव स्युः॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

है। मंजिष्ठाराग उसे कहते हैं जो अपगमन भी नहीं करता तथा शोभित भी बहुत होता है। आशय यह कि नीलीराग आडम्बर-हीन किन्तु स्थायी, कुसुम्भराग आडम्बरपूर्ण किन्तु अस्थायी, तथा मंजिष्ठाराग आडम्बरपूर्ण तथा स्थायी (भी) होता है।[१]

मानविप्रलम्भः—मान कोप को कहते हैं। वह दो प्रकार का होता है—प्रणय (समुद्भूत) मान एवं ईर्ष्या (समुद्भूत)—मान। नायक तथा नायिका दोनों में महान् प्रमोद (हर्ष, प्रीति) विद्यमान होते हुए भी, प्रेम की कुटिल-गामिता (वक्र-गति-शीलता) के कारण, विना कारण ही, जो, कोप (काम भाव) होता है, उसे प्रणयमान कहते हैं। यथा—नायक का प्रणयमान—'हे अलीक प्रसुप्त (मिथ्याप्रसुप्त). अनिमीलिताक्ष (व्याजतः निमीलित आँखों वाले) सुभग! (सुन्दर), मुझे अवकाश (शय्या पर सोने का स्थान) दो, हे गंड (कपोल-फलक) के चुम्बन से रोमांचित अंगों वाला मैं पुनः चिरकारिता (विलम्ब) नहीं करूंगी'[२]।

यहाँ नायिका के विलम्ब से आने के कारण, नायक ने प्रणय-मान किया है। वह आँखें मूंदने का एवं सो जाने का व्याज, आडम्बर कर शय्या पर, शय्या के अधिकांश में हाथ-पाव फैलाकर, पड़ा हुआ है। नायिका ने परीक्षणार्थ चुम्बन लेने पर नायक रोमांचित हो जाता है। नायिका के व्यंग्य वचनों द्वारा नायक का प्रणयमान सुचित होता है।

नायक-नायिका दोनों में प्रणयमान:—"प्रणय-कुपित, अलीक-प्रसुप्त, निश्चल-शरीरांग (शरीर के अङ्गों को गतिहीन बनाये हुए) चपचाप दोनों, एक दूसरे के निःश्वासों पर दत्तकर्ण, श्रवणोन्मुख पड़े हैं। देखें इन दोनों में कौन मल्ल है (कौन बली है!"[३]

१. नीली कुसुम्भं मंजिष्ठा पूर्वरागोऽपि च त्रिधा ॥ ३।१९५ ॥
न चाति शोभते यन्नापैति प्रेम मनोगतम्।
तन्नीलीरागमाख्यातं यथा श्रीरामसीतयोः ॥ ३।१९६ ॥
कुसुम्भरागं तत्प्राहुर्यदपैति च शोभते।
मंजिष्ठारागमाहुस्तद् यन्नापैत्यतिशोभते ॥ ३।१९७ ॥

२. अलिअ पसुत्त अणिमीलिअ अच्छदेसुसुइ अमज्झओआसम्।
गंडपरिउम्बण पुलइ अंगण उण्णोचिराइस्स म ॥
[अलीकप्रसुप्त मिथ्यानिमिलिताक्ष, देहि सुभग ममावकाशम्।
गण्डचुम्बनपुलकिताङ्ग न पुनश्चिरयिष्यामि ॥] वही।

३. पणअकुविआणदोण्णं वि अलि सुत्ताणं माणइण्णाणम्।
णिच्चल णिरुद्ध णीसास दिण्ण अण्णाण को मल्लो ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अनुनयपर्यन्तासहत्व (विनय, प्रणिपात, क्रोधापनयपर्यन्त न टिकने) की दशा में इस (प्रणय-मान) की विप्रलम्भ भेदता (विप्रलम्भ शृंगार का भेद होने का भाव) नहीं रह जाती। यह विप्रलम्भ का एक भेद नहीं माना जाता) वरन् इसमें मात्र संभोग-संचार्याख्यभावत्व (संभोग संचारी नामक भाव की स्थिति) ही रह जाता है। इससे स्पष्ट है कि प्रणय-मान में, न्यूनातिन्यून इतना स्थायित्व तो होना ही चाहिए कि वह अनुनय-विनय की दीर्घकालिक अवधि तक टिक सके। यदि वह मान इतना अल्पकालिक हो कि अनुनयादि की आवश्यकता ही न पड़े, वा उसके पूर्व ही शान्त हो जाय तो उसे सम्भोग-संचारी भाव ही कहा जाएगा। यथा—

"एक ही शयन (शय्या) पर पराङ्मुख (असम्मुख) हो कर लेटे हुए वीतोत्तर (निर्वचन, बद्धमौन) होने के कारण ताम (ग्लानि, उद्वेग)—युक्त, अनुनय (सान्त्वना मानने-मनाने की अभिलाषा) से युक्त हृदय के होते हुए भी गौरव-रक्षा की इच्छा से अभिभूत, धीरे-धीरे अपांग-वलन (आँखों के कोरों के घूमने) से सम्मीलित दृष्टि होते ही (आंखें मिलते ही), दम्पति का मानकलि (प्रणय-मान-जन्य कलह) भग्न हो गया तथा वे सहास (हँसते हुए), सरभस (त्वरा के साथ) अपने कंठ व्यावृत्त (वलित) करके (घुमाकर) आलिङ्गन-रत हो गये"[१] यहां, यद्यपि, नायक-नायिका पराङ्मुख (मुंह फेरे हुए) एक ही शय्या पर, वीत्तोत्तर (बिना किसी बात के चुपचाप) लेटे हुए हैं। दोनों के हृदय को यह आडम्बरपूर्ण व्याज-मान पीड़ित कर रहा है। दोनों ही अनुनय-विनय से इस मान को ध्वस्त करने के इच्छुक हैं। उधर अपने-अपने गौरव की रक्षा भी आवश्यक है। पहले अनुनय करके अपनी मान-हानि कोई नहीं करना चाहता। यह आडम्बर कब तक टिकता ? आखें चार होते ही भावावेश तथा प्रेमोत्साह में हँसते हुए, दोनो, एक दूसरे के गले मिलते गाढ़ालिङ्गन करने लगे। यह भाव-शान्ति एवं अनुनय-पर्यन्तासहत्व, प्रणयमान के अस्थायित्व का उदाहरण है।

ईर्ष्यामान की उत्पत्ति के कारण:—ईर्ष्यामान तीन प्रकार से उत्पन्न होता

[प्रणयकुपितयोर्द्वयोरलीकप्रसुप्तयोर्मानिनोः ।
निश्चलनिरुद्धनिःश्वासदत्तकर्णयोः को मल्लः ॥]

१. एकस्मिन्शयने पराङ्मुखतया वीतोत्तरं ताम्यतो-
रन्योन्यस्य हृदि स्थितेऽप्यनुनये संरक्षतो गौरवम् ।
दम्पत्योः शनकैरपाङ्गवलनान्मिश्रीभवच्चक्षुषो-
भंग्नो मानकलिः सहासरभसव्यासक्तकण्ठग्रहः ॥ ३. १९९

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

है—(१) दृष्ट अन्य प्रियासक्ति (पति की अन्य प्रिया में आसक्ति देख कर), (२) अनुमित अन्य प्रियासक्ति (पति की अन्यासक्ति का अनुमान लगाकर), (३) श्रुत अन्य प्रियासक्ति (प्रिय के अन्य प्रियासक्ति के सम्बन्ध में सुन कर)। अनुमिति (प्रत्यक्ष से अप्रत्यक्ष का ज्ञान) भी तीन प्रकार का होता है—

(१) उत्स्वप्नायितसंभवा (स्वप्न में अन्यनायिका के सम्बन्ध में बकने से उत्पन्न) (२) भोगाङ्कसम्भवा (दन्तक्षतादि अन्यनायिका संभोग-चिह्न देखने से उद्‌भूत) (३) गोत्रस्खलनसंभवा (अकस्मात् नायक के मुख से अन्य नायिका के नामोच्चारण से उत्पन्न ।)[१]

दृष्ट अन्यासक्तिः—'(नायक द्वारा) प्रणयिनी (प्रिया) सुदृक् (सुन्दर नेत्रों वाली नायिका) की आँखों के (में पड़े हुए) कौसुम (कुसुम से संभूत, उत्पन्न) पराग (कुसुमरज) का आनन के अनिल से (मुख की वायु) विनयन (पृथक्करण) पर (हटाया जाना देख कर) उस (प्रथमोक्त नायिका) की अहित (विरोधिनी, नायक की स्वीया, परिणीता) युवती स्त्री ने अपनी दोनों आँखों को रोष-रज (क्रोध के तेज) से पूर्ण कर दिया ।[२] यहाँ स्वकीया नायिका, नायक का अन्यनायिकासंग प्रत्यक्षतः देख लेती है। नायक द्वारा अन्य स्त्री की आखों में पड़े पुष्परज को मुख से फूंककर उड़ाने का प्रयत्न नायक का अपराध प्रमाणित कर देता है। अतः स्वीया नायिका का ईर्ष्यामान दृष्ट अन्याशक्ति दोष पर आधारित है।

अनुमितिअन्यासक्तिः—'खण्डिता नायिका' का उदाहरण' नवीननख के पदों···कौन कर सकता है।" द्रष्टव्य है।

मानभंग के उपायः—मानिनी नायिका का मानभंग करने के लिए नायक साम, भेद, दान, नति (प्रणाम), उपेक्षा और रसान्तर इन छः उपायों से काम ले। प्रिय वचन को साम कहते हैं, नायिका की सखी का उपार्जन (अपने अनुकू मा लेना) भेद, व्याज (बहाना) से भूषादि नायिका को देना दान, चरणों पर गिरना नति, उक्त सामादि उपायों के परिक्षीण (निष्फल) होने पर नायिका अथवा उक्त उपायों का अवधीरण (अनादर, तिरस्कार) उपेक्षा

१. पत्युरन्यप्रियासङ्गे ऽथानुमिते श्रुते ॥ ३. १९९
ईर्ष्यामानो भवेत्स्त्रीणां तत्र त्वनुमितिस्त्रिधा ।
उत्स्वप्नायितभोगाङ्कगोत्रस्खलनसंभवा ॥ ३. २००

२. विनयति सुदृशोः दृशोः परागं प्रणयिनि कौसुममाननानिलेन ।
तदहितयुवतेरभीक्ष्णमक्ष्णोर्द्वयमपि रोषरजोभिरापूरे ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

तथा त्रास हर्षादि के प्रकाशन से रभस (वेगपूर्वक) कोप-भ्रंश (क्रोध को ध्वस्त करना) रसान्तर कहा जाता है। सबका क्रमशः उदाहरण—"(प्रिय के) चाटु (प्रियवचन) को मैंने सुना नहीं (अनसुना कर दिया), आन्तिक (समीप) रखे हुए (प्रिय प्रदत्त) हार (मेरे द्वारा देखा नहीं गया) मैंने उस पर दृष्टि नहीं डाली, कान्त (प्रियपति) के हेतु कहे गये अपनी सखी के वचनों को दूर कर दिया (उसकी उपेक्षा की)। खेद है चरणों पर गिर कर जाता हुआ वह (प्रिय) उस समय मूढ़ द्वारा, हाथों द्वारा रोका जा कर, कंठ में क्यों नहीं डाल लिया गया (मैंने उसे गले से क्यों नहीं लगा लिया)"?[१]

इस एक ही उदाहरण में साम, भेद दान, नति और उपेक्षा—ये पांच उपाय सूचित हैं। प्रिय की चाटूक्तियां साम हैं, प्रिय प्रदत्त हार दान है, नायिका को प्रसन्न करने के लिए सखी के कहे गये वचन भेद द्वारा सख्युपार्जन के सूचक हैं। नायक ने नायिका की सखी को मिला लिया है, तभी तो वह नायक के पक्ष का समर्थन करती दिखाई गई है। नायक का नायिका के चरणों पर गिरने का वृत्तान्त नति का व्यंजक हैं। तथा, उक्त उपायों के निष्फल होने पर नायक के चले जाने का कार्य उपेक्षा नामक उपाय है। रसान्तर द्वारा (भय हर्षादि के रभस प्रयोग द्वारा) कोप-भ्रंश का 'दर्पणकार' ने नहीं दिया है। उक्त उदाहरण देकर वृत्ति में उन्होंने लिख दिया हैं—"अत्र सामादयः पञ्चसूचिताः रसान्तरमूह्यम्" अर्थात् यहाँ सामादि पाँच (उपाय) सूचित (कर दिये गये) हैं, रसान्तर (नामक उपाय) की ऊहा कर लेनी चाहिए।'

प्रवासविप्रलम्भः—'कार्यवश, शापवश, अथवा सम्भ्रम (भय)—वश भिन्न देशित्व (अन्य देशगमन) को प्रवास कहते हैं। प्रवास-काल में (प्रोषित प्रिया) नायिका की निम्नलिखित सामान्य दशा दृष्टि गोचर होती है—अङ्गों तथा चेल (वस्त्र) का मालिन्य, शिर में एक वेणी का धारण, निःश्वास एवं उच्छ्वास की उत्पत्ति रोदन एवं भूमिपतन आदि। स्पष्ट है कि ये दशायें प्रिय-प्रवास-जन्य खेद की प्रारम्भिक, पृष्ठभूमि-स्वरूपा दशायें हैं। दिनों के साथ-साथ संभोगकालीन वासनायें उग्रतर होती है। तत्कालिक पीड़ायें दीर्घस्थायिनी कामदशाओं में परिणत हो जाती हैं। ये प्रवास जात कामदशायें हैं—अंगों मे असौन्दर्य, ताप, पाण्डुता, कृशता, अरुचि, अधृति, अनालम्ब, तन्मयोन्माद (तन्मयता के कारण उत्पन्न उन्माद), मूर्च्छना एवं मृति (मृत्यु)।

---

१. नो चाटु श्रवणं कृतं न च दृशा हारोऽन्तिके वीक्षितः
कान्तस्य प्रियहेतवो निजसखी वाचोऽपि दूरीकृताः।
पादान्ते विनिपत्य तत्क्षणमसौ गच्छन्मया मूढया
पाणिभ्यावरुध्य हन्त सहसा कण्ठे कथं नार्पितः॥ ३.८१

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

मलिनता की प्राप्ति असौष्ठव है, विरह के कारण उद्भूत ज्वर ताप है, वस्तु-जात से विरक्ति को अरुचि, सर्वत्रारागिता (सार्वत्रिक रागहीनता) को अधृति, मन की शून्यता (भाव-हीनता) अनालम्बनता तथा बाहर भीतर सर्वत्र प्रिय की व्यापकता, झलक, तन्मयता है।[१]

कामदशाओं का उदाहरण:—तथा—'चिन्ताओं से उसका मन स्तिमित (निश्चल, निश्चेष्ट) हो गया है, कपोलस्थली करतल में लीन है (गाल हथेली में मग्न (सा) हो गया है), मुख प्रत्यूष (प्रात:काल के) क्षणदेश (चन्द्रमा) के सदृश पीले (पाण्डुर) रंग का हो गया है, अधर श्वासों के (निःश्वासों) निर्गमन सम्पर्क में आने के कारण एक (केवल, कृत्स्न, समस्त) खिन्न (उदास) हो गया है। इसका बाह्यान्तर ताप (दाह) अम्भ के शीकरों (कणों) अथवा कमलिनी के किसलयों (कोमल नवदलों) से भी शम शान्ति, समाप्ति) को नहीं प्राप्त होता (शमित, नष्ट नहीं होता)। इसका प्रार्थित (अभिलषित) वह कौन दुर्लभ व्यक्ति है (जिसके कारण यह नायिका) इस प्रकार की दीन दशा का सहन कर रही है।"[२] यह उदाहरण एकदेश (जो सर्वत्र न घटित हो) है। इस उदाहरण में उक्त कुछ दशायें ही सूचित हैं सब नहीं। चिन्ता से मन का स्तिमित होना अनालम्बनता, शून्यता है, करतल में कपोलस्थली का लीन होना तन्मयता का सूचक है, वदन का पाण्डु होना पाण्डुता है, निःश्वास-खिन्न अधर असौष्ठव के सूचक हैं, ताप का शमित न

---

१. प्रवासो भिन्नदेशित्वं कार्याच्छापाच्च संभ्रमात् ।
तत्राङ्गं चेलमालिन्यमेकवेणीधरः शिरः ।। ३।२०४
निःश्वासोच्छ्वासरुदितभूमिपातादि जायते ।
अङ्गेष्वसौष्ठवं तापः पाण्डुता कृशतारुचिः ।। ३।२०५
अधृतिः स्यादनालम्बस्तन्मयोन्मादमूर्च्छना ।
मृतिश्चेति क्रमाज्ज्ञेया दश स्मरदशा इह ।। ३।२०६
असौष्ठवं मलापत्तिस्तापस्तु विरहज्वरः ।
अरुचिर्वस्तु वैराग्यं सर्वत्रारागिता धृतिः ।। ३।२०७
अनालम्बनता चापि शून्यता मनसः स्मृता ।
तन्मयं तत्प्रकाशो हि बाह्याभ्यन्तरस्तथा ।। ३।२०८

२. चिन्ताभिः स्तिमितं मनः करतले लीना कपोलस्थली,
प्रत्यूषक्षणदेशपाण्डुवदनं श्वासैकखिन्नोऽधरः ।
अम्भःशीकरपद्मिनीकिसलयैर्नापैति तापः शमं
कोऽस्याः प्रार्थितदुर्लभोऽस्ति सहते दीनां दशामीदृशम् ।।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

होना ताप वा विरहज्वर का लक्षण है, एवं उसकी दीनदशा प्रायः सभी लक्षणों का कुपरिपाक है।

ऊपर बताये गये प्रवास के, कार्यंज, शापज एवं सम्भ्रमज, तीनों भेदों में से प्रथम (कार्यज) के पुनः तीन प्रभेद हैं—भूतप्रवास, वर्तमानप्रवास एवं भावी प्रवास, भावी प्रवास यथा—हे सुन्दरि। हम जाते हैं, "जाओ पान्थ (पथिक) "प्रिये! व्यर्थ शोक मत करना", 'तुम्हारे गमन में मेरा शोक कैसा (क्यों करे)?" (यदि शोक नहीं है) तो अश्रु (वाष्प) मोचन क्यों कर रही है?" "(क्योंकि) तुम शीघ्र नहीं जा रहे हो" "मुझे भेजने को तुम्हारी यह शीघ्रता कैसी"? "तुम्हारे साथ जाने की इच्छा रखने वाले मेरे इस जीव (प्राण) का अत्यन्त सम्भ्रम है।[1]" प्रिय के प्रवास की भावी विपत्ति की चिन्ता में प्रिया का आकुलता व्यंग्य है।

भवत् (वर्त्तमान) प्रवासः—"वलयों (कंकणों) ने (मणिबन्ध कलाइयों) से प्रस्थान कर दिया (स्रस्त हो गये, सरक पड़े), प्रिय मित्र अस्र (आँसू) अजस्र (निरन्तर) प्रवाहित (गत) हो रहे हैं, धृति (धैर्य) क्षण भर भी टिकी नहीं, चित्त पुनः (आगे आगे) जाने को व्यवसित (उद्यत) है। (तुम्हारा 'प्रिय का' प्रवास-गमन निश्चित जान कर) उक्त सब तत्व आँसू, धैर्य, चिन्तादि) प्रियतम के साथ ही चल पड़े हैं। हे जीवित (प्राण) यदि तुमको जाना ही है (तुम गन्तव्य ही हो) तो उक्त (आँसू धैर्यादि)! सुहृदों (मित्रों) का साथ क्यों छोड़ रहे हो?"[2] यहाँ प्रिय के अश्रु, धैर्य, चित्त सब प्रस्थित हो चुके हैं। प्राण का भी प्रस्थानार्थ आह्वान किया जा रहा है।

भूतप्रवास—उदाहरणार्थ कामदशाओं का उदाहरण—'चिन्ताओं से उसका मन·········सहन कर रही है' द्रष्टव्य है।

शापजप्रवास—'प्रवास में उपसर्गार्थ व्याविद्ध अनुराग रूप काल हरण' का उदाहरण उदाहरणार्थ दर्शनीय है।

---

१. यामः सुन्दरि, याहि पान्थ दयिते शोकं वृथा मा कृथाः,
शोकस्ते गमने कुतो मम, ततो वाष्पं कथं मुञ्चसि।
शीघ्रं न व्रजसीति, मां गमयितुं कस्मादियं ते त्वरा,
भूयानस्य सह त्वया जिगमिषोर्जीवस्य मे सम्भ्रमः॥

२. प्रस्थानं वलयैः कृतं प्रियसखैरस्रैरजस्रं गतं
धृत्या न क्षणमासितं व्यवसितं चित्तेन गन्तुं पुरः।
यतुं निश्चित चेतसि प्रियतमे सर्वे समं प्रास्थता
गन्तव्ये सति जीवित प्रियसुहृत्सार्थः किमु त्यज्यते॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

संभ्रमजप्रवास—'विक्रमोर्वशी' में उर्वशी पुरूरवा सम्बन्धी दिव्यमानुष निर्घातोत्पातादिज संभ्रम का उदाहरण देखने योग्य है।

करुणविप्रलम्भः—युवक-युवती में से एक के लोकोत्तर (परलोक)-गमन करने (मृत हो जाने) पर, जब उनमें से एक विमन (शोकाकुल) हो जाता है, (किन्तु) उस (मृत) व्यक्ति के पुनर्लभ्य (पुनः उसी शरीर से जीवित) हो जाने पर, करुण-विप्रलम्भ नामक (विप्रलम्भ) श्रृंगार होता है।[1] उक्त पुनर्लाभ (पुनरुज्जीवन) यदि शरीरान्तर (दूसरे शरीर) से हो तो वह करुण-विप्रलम्भ नहीं वरन् करुण-विप्रलम्भ के लिए उसी शरीर से पुनरुज्जीवन आवश्यक है। बाणभट्ट की 'कादम्बरी' में 'पुण्डरीक-महाश्वेतावृत्तान्त' एतदर्थ द्रष्टव्य है। कामसंतप्त विरही पुण्डरीक की मृत्यु हो जाने पर दिव्य स्वरूपधारी अलौकिक पुरुष का, महाश्वेता को सम्बोधित करते हुए यह आकाश वाणी—"पुत्रि महाश्वेते! तुम प्राणपरित्याग मत करना, इस (पुण्डरीक) के साथ तुम्हारा समागम पुनः होगा।[2]—करुण-विप्रलम्भ का उदाहरण है। उक्त आकाश-सरस्वती-भाषा (आकाश-वाणी) के अनन्तर यहाँ करुण-विप्रलम्भ श्रृंगार की स्थापना हो जाती है, क्योंकि पुनः संगम की आशा से महाश्वेता का शोक-स्थायी नष्ट होकर रति-स्थायी में परिणत हो जाता है। इस आकाश-भाषित के पूर्व की परिस्थिति को अभियुक्त जन (विद्वज्जन) करुणात्मिका ही मानते हैं। संगम प्रत्याशानन्तर उक्त स्थल पर कुछ विद्वान् प्रवासाख्य विप्रलम्भ श्रृंगार मानते हैं। किन्तु मरण की अन्तरवर्तिनी घटना-विशेष के कारण अन्य सुधी इसे प्रवास भिन्न विप्रलम्भ श्रृंगार मानते हैं।

सम्भोग श्रृंगारः—जहां अन्योन्यानुरक्तविलासी नायक तथा नायिका परस्पर दर्शन स्पर्शनादिका सेवन करते हैं वहां संभोगश्रृंगार होता है।[3] यथा—"केलिभवन (वासगृह) को शून्य देखकर, शयन (शय्या) से किंचित् उठकर शनैः (धीरे से) बाला ने निद्रा के व्याज (सोने के बहाने) लेटे हुए प्रिय पति के मुख का दीर्घकाल तक निर्वर्णन (ध्यान पूर्वक अवलोकन) कर विस्रब्ध (निःशंक) चुंबन कर लिया (किन्तु) पति के जातपुलक (उत्पन्न रोमाञ्च)

---

१. यूनोरेकतरस्मिन्गतवति लोकान्तरं पुनर्लभ्ये।
विमनायते यदैकस्तदा भवेत्करुणविप्रलम्भाख्यः॥ ३।२०९॥

२. "वत्से, महाश्वेते! न परित्याज्याः त्वया प्राणः,
पुनरपि तवानेन सह भविष्यति समागमः" कादम्बरी

३. दर्शनस्पर्शनादीनि निषेवेते विलासिनौ।
यत्रानुरक्तावन्योन्यं सम्भोगोऽयमुदाहृतः॥ ३।२१०

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

गंडस्थली (कपोलफलक) को देखकर (तथा यह जानकर कि छद्म सुप्त पति जाग रहा है—क्योंकि यदि वह सोता हुआ रहता तो चुंम्बनोत्तर रोमांच उसको कभी न होता) वह (नवोढ़ा, छली गई बाला) लज्जा से नम्रमुखी (व्रीड़ावनतवदना) हो गई (इस प्रकार से) लज्जित नायिका का. हँसते हुए प्रिय ने चिरकाल तक चुम्बन किया"[1]

चुम्बन परिरम्भणादि बहुत भेदों के कारण इसको धीर (विद्वान्) एक मात्र संभोग-शृंगार ही कहते हैं। वहाँ (शृंगार-रस में) ऋतु-षटक् (छः ऋतुयें) चन्द्रादित्य (चन्द्र, सूर्य) तथा उनके उदयास्त, जलकेलि वन-विहार, प्रभात, मधुपान (मद्य-पान,) यामिनी प्रभृति, अनुलेपन (चन्दनादि का लेपन) भूषादि (का धारण,) तथा अन्य भी जो कुछ शुचि (शुद्ध, निर्दोष), तथा मेध्य (पवित्र) है एवं अन्य (इस प्रकार के पदार्थ) भी वाच्य (ग्रहणीय, कथनीय) हैं। पूर्वराग, मान, प्रवास, एवं करुणात्मक-विप्रलम्भ के अनन्तर, पुनः मिलन होने तथा रति के पुनः-उद्भव होने पर, संभोग-शृंगार भी पुनर्वार स्थापित हो जाता है अतएव इस (संभोग-शृंगार) के चार-भेद माने गये हैं—पूर्वरागानन्तर सम्भोग, मानानन्तर-संभोग, प्रवासानन्तर-संभोग तथा करुणानन्तर-सम्भोग। कहा भी गया है 'विना विप्रलम्भ के संभोग पुष्ट नहीं होता। वस्त्रादि के कषायित होने (कषाय-रंग, बहेड़ादिक के रंग में रंगे जाने) पर अन्य प्रचार का रंग गाढ़ा चढता है।[2] पूर्वरागानन्तर-सम्भोग का उदाहरण 'कुमारसम्भव' में 'पार्वती परमेश्वर' का है। प्रवासानन्तर सम्भोग यथा—"हे सुन्दर बरौनियों से युक्त आखों वाली तुम्हारा क्षेम (कुशल) तो है ?—यह मेरा दुर्बल शरीर कुशल और दृढ़ है, इतनी कृशता (तनुता, क्षीणता) क्यों ? क्योंकि तुम्हारा शरीर पुष्ट है इसी लिए। मैं किससे (क्यों) मोटा हूँ प्रिये ! प्रणयिनी के देह के सम्मीलन (आलिंगन) से, हे सुन्दर भौहों वाली ! (तुमसे बढ़कर, तुम्हारे अतिरिक्त) मेरी और कोई (प्रिया) नहीं—यदि यह (बात) है तो क्षेम क्यों पूछते हो" ?[3]

---

१. शून्यं वासगृहं विलोक्यशयनादुत्थाय किंचिच्छनै-
निद्राव्याजमुपागतस्य सुचिरं निर्वर्ण्य पत्युर्मुखम्।
विस्रब्धं परिचुम्ब्य जातपुलकामालोक्य गण्डस्थलीं
लज्जानम्रमुखी प्रियेण हसता बाला चिरं चुम्बिता॥

२. न विना विप्रलम्भेन सम्भोगः पुष्टिमश्नुते।
कषायिते हि वस्त्रादौ भूयान्रागो विवर्धते॥ ३।२१३॥

३. क्षेमं ते ननु पक्ष्मलाक्षि—किसअं खेमं महङ्गं दिढं,
एतादृक्कृशता कुतः-तुह पुणो पुट्ठं सरीरं जदो।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

शेष भेदों का उदाहरण विश्वनाथ कविराज ने 'एवमन्यत्राप्यूह्यम्—'इसी प्रकार अन्यत्र ऊहा (विचार, परीक्षण) कर लेनी चाहिए।'—कह कर पाठकों द्वारा ऊह्य (विचार पूर्वक अन्वेषणीय एवं निर्णय) मान लिया है। संभोग श्रृंगार सम्बन्धी यही मत 'श्रृंगार-प्रकाशकार' भी कहते हैं।

नायक भेदः—त्यागी (परहित साधनार्थं स्वार्थ-त्यागी), कृती (पुण्य-धान, प्रशस्तकर्मा) कुलीन, सुश्रीक (सुन्दर) रूपयौवन तथा उत्साह से युक्त दक्ष (क्षिप्रकारी, निपुण), अनुरक्त-लोक (लोक के अनुराग का पात्र) तेज, विदग्धता एवं शील से युक्त नेता को नायक कहते हैं। नायक सामान्यतः चार प्रकार के होते हैं—धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीरललित एवं धीरप्रशान्त। श्रृंगारादि रूप से (श्रृंगार से सम्बद्ध) नेता (नायक) के भेद—उक्त धीरो-दात्तादि नेताओं में से प्रत्येक श्रृंगार की दृष्टि से, दक्षिण, धृष्ट, अनुकूल और शठ होता है। इस प्रकार इनके सोलह भेद हुए।

दक्षिण नायकः—अनेक महिलाओं पर समान अनुराग रखता है। यथा—"अन्तःपुर की सुन्दरियों के सम्बन्ध में समाचार जान कर, जब मैंने महाराज से निवेदन किया कि कुन्तलेश्वर की पुत्री (ऋतु) स्थान करके बैठी है, आज का वार (दिन तथा रात) अङ्गराज की बहिन का है एवं कमला (नामक रानी) ने यह रात (आप से) द्यूत में जीत ली है, और (रूठी हुई) देवी (पटरानी, राजमहिषी) का आज ही प्रसादन करना (मनुहार करना) है तो देव (स्वामी) प्रतिपत्ति-विमूढ़ होकर दो या तीन नाड़िका (घड़ी) स्थिर रहे (बैठे रहे[1] यहाँ कई नायिकाओं पर तुल्य अनुराग व्यक्त है।

धृष्टनायकः—'जो अपराध करके भी निःशंक रहे, तर्जित हो (झिड़िका जाकर) कर भी लज्जित न हो, दोष दीख जाने पर भी झूठ बोलता रहे वह धृष्टनायक है।[2] यथा—

केनाहं पृथुलः प्रिये-पणइणीदेहस्स संमीलणात्,
त्वत्तः सुभ्रू न कापिमे-जइ इदं खेमं कुदो पुच्छसि ॥ ३।२१३ ॥

१. स्नाता तिष्ठति कुन्तलेश्वरसुता, वारोऽङ्गराजस्वसु-
द्यूंते रात्रिरियं जिता कमलया, देवी प्रसाद्याद्य च।
इत्यन्तःपुरसुन्दरीः प्रति मया विज्ञाय विज्ञापिते
देवेनाप्रतिपत्तिमूढमनसा द्वित्राः स्थितं नाडिकाः ॥ ३।३५

२. कृतागा अपि निःशङ्कस्तर्जितोऽपि न लज्जितः।
दृष्टदोषोऽपि मिथ्यावाक्कथितो धृष्टनायकः ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

"(नायिका के क्रोध से) लाल (नेत्रों को) देखकर, (उसके मुख का) चुम्बन लेने के लिए, मैं समीप गया, तो, उसने, मुझे लात से मारा। मैं उसका पैर पकड़ कर हंसने लगा। हे मित्र ! (पैर पकड़ लेने पर) कुछ कर सकने में असमर्थ, वाष्प-सृजन करती हुई उस वामभ्रू (कुटिल भौंहों वाली नायिका) का क्रोध भी स्मरण करने पर कौतुक, (कुतूहल, हर्ष का ही विस्तार करता (उत्पन्न करता) है।[१] यहाँ नायक धृष्ट एवं नायिका अधीराप्रगल्भा है।

अनुकूल नायकः—एक नारी निरत (एक ही नायिका में आसक्त होता है) यथा—

'हे सखि ! न तो मेरे (दोनों) वस्त्र ही सुन्दर हैं, न मेरा ग्रैवेयक (गले का हार) ही उज्ज्वल (स्वच्छ) है। मेरी गति भी (कामोन्मत्ता सुन्दरी नायिकाओं की भांति) वक्र (टेढ़ी) नहीं है, न उद्धत (गर्व-युक्त, अविनीत) हास है, न मद है। अन्य लोग कहते हैं कि सुन्दर होते हुए भी इसका प्रिय किसी अन्य स्त्री पर दृष्टि नहीं डालता। मैं तो (ऐसे एक निरत प्रिय को पाकर, अपने अतिरिक्त) इयत (इतने बड़े) विश्व (की सब स्त्रियों) को दुःस्थित (दुर्गत, निर्धन) मानती हूँ।"[२] यहाँ नायक अनुकूल, नायिका स्वाधीन भर्तृका है।

शठनायक—यह नायक बद्धभाव (अनुरक्त, आसक्त) तो एकत्र (एक स्थान पर, एक नायिका से) रहता है किन्तु अन्यत्र (दूसरी नायिका से, दूसरे स्थान पर) बहिरनुराग (बाहरी आडम्बरपूर्ण प्रेम) प्रदर्शित करता हुआ दोनों नायिकाओं के प्रति मूढ़ (प्रच्छन्न) विप्रिय (अप्रिय, सापराध) आचरण करता है। यथाः—

"हे शठ ! (अन्य नायिका की) कांची (मेखला) की मणियों का रणत्कार (झंकर) सुन कर, तुमने, सहसा, (मेरी सखी- .ायिका) का आश्लेष (आलिङ्गन) करते हुए अपनी भुज-ग्रन्थि (बाहु-पाश) को जो शिथिल कर दिया था, उसका क्या चक्षण (कथन) करूँ ? तुम्हारी घृत-मधुमय (घृतमः के

---

१. शोणं वीक्ष्य मुखं विचुम्बितुमहं यातः समीपं, ततः
पादेन प्रहृतं तया, सपदि तं धृत्वा सहासे मयि।
किंचित्तत्र विधातुमक्षमतया वाष्पं सृजन्त्याः सखे,
ध्यातश्चेतसि कौतुकं वितनुते कोपोऽपि वामभ्रुवः॥ ३।२६.

२. अस्माकं सखि वाससी न रुचिरे, ग्रैवेयकं नोज्ज्वलं
नो वक्रागतिमुद्धतं न हसितं, नैवास्ति कश्चिन्मदः।
किं त्वन्येऽपि जना वदन्ति सुभगोऽप्यस्याः प्रियोनान्यतो
दृष्टिं निक्षिपतीति विश्वमियता मन्यामहे दुःस्थितम्॥ ३।२७.

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

मिश्रण के समान विषाक्त), बहुत सी बातों (बहु वचस) के विष से घूर्णित (चक्कर खाती हुई) मेरी सखी तुम्हारे वाक्छल का गणन (समझना) न कर पाई (तुम्हारी चाटूक्तियों का आशय समझ न पाई) ।"[१] कांचीमणि-रणित, अन्य नायिका के आगमन का सूचक है। उसके आगमन के अवगम ('ज्ञान) मात्र से, आलिंगन-बद्ध प्रथम-नायिका की आश्लेषग्रन्थि का शिथिल करना, दर्शित बहिरानुराग एवं विप्रियाकारी, नायक के गूढ़ आचरण तथा उसकी शठता का द्योतक हैं।

उक्त सोलह प्रकार नायकों के, पुनरपि तीन-तीन भेद (उत्तम, मध्यम और अधम) मिला कर कुल ४८ भेद होते हैं (उक्त सोलह में से पुनः, उत्तम, तथा अधम होता है।

नायक के सहायक —नायक के दूरानुवर्ती (बहुत दूर तक चलने वाले) प्रासंगिक इतिवृत्त में उससे किञ्चित् गुण-हीन सहायक पीठ-मर्द कहा जाता है जैसे सुग्रीव रामचन्द्र (के पीठ-मर्द सहायक) हैं।

नायक के शृंगार सहाय —स्वामिभक्त, नर्म (विनोद, परिहास) में निपुण, कुपित-वधू-मान-भंजन एवं शुद्ध (सच्चरित्र) विट, विदूषकादि नायक के शृंगार में सहायक हैं। 'आदि' शब्द से मालाकार, रजक, ताम्बूलिक और गन्धिक आदि हैं।

विट :—संभोग-हीन-सम्पद् (भोग-विलास में सम्पत्ति नष्ट कर देने वाला) धूर्त, कलैकदेशज्ञ (नृत्य गीत आदि किसी एक कला का ज्ञाता), वेशोपचार कुशल (वेश्या के प्रति व्यवहार में कुशल), वाग्मी (भाषण-पटु) मधुर तथा गोष्ठी (सभा) में बहुमत (अतिसम्मानित) नायक का सहायक विट कहा जाता है।

चेट —दास को कहते हैं।

विदूषक —नायक का वह सहायक है जिसका, नाम, कुसुम, वसन्त आदि से सम्बन्ध होता है, जो कर्म, वपु (शरीर), वेष, भाषादि से हास्य कर (हसाने वाला), कलह-रति (कलह, झगड़ा करने में रुचि रखने वाला) और स्वकर्मज्ञ (अपने भोजनार्थ काम में चतुर) होता है।

नायिका भेद :—नायिकाओं के तीन भेद हैं—स्वा (स्वकीया), अन्या

---

१. शठान्यस्याः काञ्चीमणिरणितमाकर्ण्य सहसा
यदाश्लिष्यन्नेव प्रशिथिलभुजग्रन्थिरभवः।
यदेतत्त्वाचक्षे, घृतमधुमयत्वाद् बहुवचो
विषेणाघूर्णन्ती किमपि न सखी मे गणयति ॥ ३।१७

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(परकीया, अन्य की स्त्री) और साधारणी । यथासम्भव नायिका भी नायक के सामान्य गुणों से युक्त होती है ।

स्वा (स्वकीया)—स्वस्त्री विनय, आर्जव (ऋजुता, सरलता) से युक्त, गृहकर्मपरा (घर के काम में तत्पर) एवं पतिव्रता होती है ।'[1] यथा—

-लज्जापर्याप्त प्रसाधना (लज्जा ही जिसका यथेष्ट भूषण है), परभर्तृ-निष्पिपासा (दूसरी स्त्री के पति की लिप्सा से विहीन, पर-पुरुष के सम्भोग से विरत), अविनय-दुर्मेधा अविनय में मन्द बुद्धिवाली, अविनय कठिनाई से करने वाली) स्त्रियाँ धन्य पुरुषों के ही घर में होती हैं ।[2] स्वीया के तीन भेद हैं—मुग्धा, मध्या और प्रगल्भा ।

मुग्धा के लक्षण :—मुग्धा नायिका प्रथमावतीर्णयौवन (जिसमें प्रथम बार यौवन का आविर्भाव हो), प्रथमावतीर्ण-मदन विकारा, तथा रति-वामा (जो सम्भोग-क्रीड़ा की विरोधिनी) मान में मृदु एवं समधिक लज्जावती (अत्यन्त लज्जाशीला) होती है ।[3]

(क) प्रथमावतीर्णयौवन (मुग्धा) यथा—"नूतन मनोराज्य (नवीन-भावजगत) में कामदेव को अभिषिक्त देख कर (भावों के कामानुभूतियों से प्रवाहित होने पर), क्षण भर में (यौवनागम होते ही) मध्य (कटि) की प्रथिमा (पृथुलता, स्थूलता) जघन (कटि के पुरोभाग, जांघों और कमर के बीच के सामने वाले भाग) में आ गई है अर्थात् कटि पतली हो गई तथा जघन मोटा हो चला) वक्षोजों (स्तनों) की मन्दता (लघुता) उदर में चली गई है (बाल्यकाल में स्तन लघु थे, अब वे स्थूल हो रहे हैं, और उदर बाल्यकाल में स्थूल था अब लघु हो गया है) नेत्रों का आर्जव (सरलता, सीधापन) अब रोमावली (वक्षभाग के नीचे से नाभि तक जाने वाली रोम-पंक्ति) ने ले लिया (बाल्यकाल में नेत्रों में सरलता थी अब वह रोमावली आ गई, रोम रेखा सीधी हो गई और नेत्रों में कटाक्षों के रूप कुटिलता आ

---

१. विनयार्जवादियुक्ता गृहकर्मपरा पतिव्रता स्वीया ।
साऽपि कथिता त्रिभेदा मुग्धा, मध्या प्रगल्भेति ॥

२. लज्जापज्जत्तपसाहणई परमत्तिणिप्पिवासाइं ।
अविणअदुम्मेधाइं धण्णाणं घरे कलत्ताइं
[लज्जापर्याप्तप्रसाधनानि परभर्तृनिष्पिपासानि ।
अविनयदुर्मेधांसि धन्यानां गृहे कलत्राणि ॥]

३. प्रथमावतीर्णयौवनमदनविकारा रतौ वामा ।
कथिता मृदुश्च माने समधिकलज्जावती मुग्धा ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

गई है।"[1]) यौवन के आगमन काल में अङ्गों के परस्पर गुण विनिमय का वर्णन है।

(ख) प्रथमावतीर्ण मदनविकारा (मुग्धा):— "(वह मुग्ध नायिका) पृथ्वी पर मन्थर (मन्द, गम्भीर) तथा सालस (आलस्य से युक्त) चरण-निक्षेप कर रही है। (धीरे-धीरे चल रही है), अन्तःपुर (गृहान्तर) से बाहर नहीं निकलती, उद्दाम (उग्र, अनियन्त्रित) हास भी नहीं करती, कभी ह्री (लज्जा) के कारण अपने भावों को नियंत्रित करती हुई शान्त हो जाती है, कभी किंचित् गम्भीर-भाव-युक्त कुछ वक्रोक्तियाँ कहती है तथा प्रिय की कथा कहती हुई सखी की ओर भ्रूभंगिमायुक्त दृष्टिपात करती है।"[2] सालस मंथर गमनादि उक्त व्यापार कामविकारोपत्ति सूचित करत हैं।

(ग) प्रथमावत्तीर्ण यौवनादियुक्तरति-वामा (मुग्धा):—"दृष्टिपात करने पर (नायिका की ओर मेरे द्वारा दृष्टि डालने पर) वह अपनी दृष्टि नीचे कर लेती है, आभाषिता (उसके साथ वार्तालाप किये जाने पर, जब मैं उससे कुछ बातें करता हूँ तो, वह नायिका) आलाप (संभाषण, बातचीत) नहीं करती, शय्या पर परिवृत्त (मुख फेर कर) बैठती वा रहती है, बलपूर्वक आलिङ्गन किये जाने पर वेपन (कंपन) करने लगती है (काँपने लगती है), वास-भवन (रात्रि-निवास कक्ष) से निर्गमन करती हुई (बाहर जाती हुई सखियों के साथ (स्वयं भी) निर्गमन करने की ईहा (इच्छा) करती है। अपनी इन वामताओं (मुग्धात्वज-शृंगारयुक्त-विपरीतव्यापारों) से वह नव विवाहिता नायिका, संप्रति, मेरी प्रीति का संवर्धन करती है।"[3]

---

१. मध्यस्य प्रथिमानमेति जघनं, वक्षोजयोर्मन्दता
दूरं यात्युदरं च, रोमलतिका नेत्रार्जवं धावति।
कन्दर्पं परिवीक्ष्य नूतनमनोराज्याभिषिक्तं क्षणा-
दङ्गानीव परस्परं विदधते निर्लुण्ठनं सुभ्रुवः॥

२. दत्ते सालसमन्थरं भुवि पदं, निर्याति नान्तःपुरान्,
नोद्दामं हसति, क्षणात्कलयते ह्रीयंत्रणां कामपि।
किंचिद्भावगभीरवक्रिमलवस्पृष्टं मनाग्भाषते,
स भ्रूभङ्गमुदीक्षते प्रियकथामुल्लापयन्तीं सखीम्

३. दृष्टा दृष्टिमधो ददाति, कुरुते नालापमाभाषिता,
शय्यायां परिवृत्य तिष्ठति, बलादालिङ्गिता वेपते।
निर्यान्तीषु सखीषु वासभवनान्निर्गन्तुमेवेहते,
जाता वामतयैव संप्रति मम प्रीत्यै नवोढा प्रिया॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

यहां मुग्धा अपनी वाम प्रतिकूल, कामयुक्त, सुन्दर) क्रियाओं से नायक की प्रीति का भाजन हो गई है।

(घ) मान में मृदु मुग्धा नायिका:—"वह (नायिका) पति के अपराध (अन्य नायिका संभोग) के समय, सखी के उपदेश के विना, विभ्रमयुक्त अंग-बलन (अंग-चालन) एवं वक्रोक्तियों से अपनी ईर्ष्यादि का) संसूचन प्रकटीकरण की विधि भी नहीं जानती (सखियों के सिखाये विना), अपना मान प्रकट करने की रीति भी नहीं जानती। स्वच्छ-अच्छ (निर्मल) कपोलों के मूल में नेत्रोत्पलों (कमलवत् नेत्रों) से पर्यस्त (गिरते हुए) आंसुओं तथा उन कपोलों पर लोटते हुए अलकों (मुख को भूषित करने वाले भंगियुक्त केशों) से युक्त, वह केवल रोती है।'[1]

(ङ) समधिकलज्जावती मुग्धा नायिका:—उदाहरणार्थ 'प्रथमावतीर्णमदन विकारा' का उदाहरण द्रष्टव्य है।

मध्यानायिका:—'मध्यानायिका विचित्रसुरता, प्ररूढ़-स्मरा, प्ररूढ़-यौवना, ईषत्प्रगल्भ-वचना तथा मध्यम-व्रीड़िता होती है।'[2]

(क) विचित्रसुरता मध्या नायिका:—"उस मृगनयनी ने, उत्तेजित काम-वासना के कारण, कान्त (प्रिय) के साथ संभोग क्रीड़ाओं के अवसर पर कुछ ऐसा चातुर्य प्रदर्शित किया कि उसके (रति-कालीन) कूजितों (कूजनों, अव्यक्त मधुर ध्वनियों) का अनुवदन (ध्वनि का अनुकरण) करते हुए सैकड़ों गृह-कपोत कई बार उसके शिष्यवत् प्रतीत हुए"[3] यहाँ मध्या नायिका के विचित्र सुरत क्रीड़ा का वर्णन है।

(ख) प्ररूढ़स्मरा:—इसका भी यही उदाहरण ज्ञातव्य है।

(ग) प्ररुढ़यौवना नायिका:—गुणकथन "उसके दोनों नेत्र···छटा है" आदि उदाहरण द्रष्टव्य है।

प्रगल्भनायिका:—यह नायिका स्मरान्धा, गाढ़तारुण्या, समस्तरति-

---

१. सा पत्युः प्रथमापराधसमये सख्योपदेशं विना
नो जानाति सविभ्रमाङ्गवलनावक्रोक्तिसंसूचनम्।
स्वच्छैरच्छकपोलमूलगलितैः पर्यस्तनेत्रोत्पला
बाला केवलमेव रोदिति लुठल्लोलालकैरश्रुभिः॥

२. मध्या विचित्रसुरता प्ररूढस्मरयौवना।
ईषत्प्रगल्भवचना मध्यमव्रीडिता मता॥

३. कान्ते तथा कथमपि प्रथितं मृगाक्ष्या चातुर्यमुद्धतमनोभवया रतेषु।
तत्कूजितान्यनुवदद्भिरनेकवारं शिष्यायितं गृहकपोतशतैर्यथास्याः॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu. Collection.

कोविदा, भावोन्नता, दर-व्रीड़ा (अल्पलज्जा वाली) एवं आक्रान्तनायका (नायक पर अधिकार रखने वाली) होती है।[1]

(क) स्मरान्धा (प्रगल्भा) नायिका:—"हे सखि ! तू धन्य है, जो प्रिय के संगम (समागम) के समय, रतान्तर (सुरत के अवसरों पर) विश्रब्ध (धीर, दृढ़) होकर, सैकड़ों चाटुक (प्रियवचन) कर लेती हो। हे सखियों ! मैं तो प्रिय द्वारा नीवी (कटी-वस्त्र-बंध) पर हाथ रक्खे जाते ही, शपथ खाती हूँ कि मुझे कुछ स्मरण रहता हो।"[2] अतिशय कामोत्तेजना से स्मृति का लुप्त हो जाना नायिका की स्मरान्धता का प्रमाण है।

(ख) गाढ़ तारुण्या (प्रगल्भा) नायिका:—उस अद्भुत-यौवना नायिका का उर (वक्षस्थल) उन्नत-स्तन युक्त है, दोनों नयन सुदीर्घ (अति विशाल) हैं, उसकी भौहें अत्यन्त वक्र हैं (उसके) वचन उन (भौहों) से भी (वक्र-तर) हैं, मध्यकटिप्रदेश) अधिकतनु (कृश) है, नितम्ब अनून (अन्यून, अधिक) गुरु (विशाल, भारी), गतिमन्द (मन्थर) है।"[3]

(ग) समस्तरतकोविदा (संभोग की सब विधियों की ज्ञात्री) प्रगल्भा नायिका:—"प्रच्छद-पट (चादर), कहीं ताम्बूल (के राग, रंग) से अक्त (व्यक्त), कहीं अगरु (गंध-द्रव्य) के पंक (लेप) के अंक (चिह्न) से मलिन (धूमिल), कहीं गन्ध-चूर्णों के उद्गार (क्षरण) से युक्त (चूर्ण का क्षरण करने वाला), कहीं सालक्तक (महावर-रंजित) चरण-चिह्न-युक्त हैं। आभोग (संभोग) कालीन त्रिवलीभंग (त्रिवली की लहरियों) से (उदर पर पड़ी हुई चर्म-संकुचन रेखाओं, त्रिगुणित तरंगों द्वारा), तथा अलकों (कुंचित-केशों) से गिरे हुए शीर्ण (कुम्हलाये) कुसुमों के द्वारा (उक्त) प्रच्छद-पट (शय्या का आवरण) उस नायिका की (संभोग-संबंधिनी) सब अव-

---

१. स्मरान्धा गाढतारुण्या समस्तरतकोविदा।
भावोन्नता दरव्रीडा प्रगल्भा क्रान्तनायका॥ ३।६०॥

२. धन्यासि या कथयसि प्रियसंगमेऽपि
विश्रब्धचाटुक शतानि रतान्तरेषु।
नीवीं प्रति प्रणिहिते तु करे प्रियेण
सख्यः शपामि यदि किञ्चिदपि स्मरामि॥

३. अत्युन्नतस्तनमुरो नयने सुदीर्घे
वक्रे भ्रुवावतितरां वचनं ततोऽपि।
मध्योऽधिक तनुरनूनगुरुर्नितम्बो
मन्दागतिः किमपि चाद्भुतयौवनायाः॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

स्थाओं (आसनों) का कथन (द्योतन) कर रहा है ।"[1] शय्यापट पर पड़े हुए विविध चिह्न नायिका के सुरत-प्रयुक्त विविध आसनों का पाण्डित्य सूचित करता है ।

(घ) भावोन्नता (प्रगल्भा) नायिकाः—"मधुर वचनों, भ्रूभंगों (भौहों की कुटिलता) सहित आंगुलितर्जनों (भर्त्सनों), महोत्सव (संभोगानन्द) के बन्धु (सहायक), रभस-रचित (शीघ्रता से किये गये, प्रेमावेशपूर्वक किये गये), अंग न्यास (आंगिक-मुद्राओं), असकृदसकृत् (बार-बार, अत्यन्त प्रवृद्ध) अपांग-विलोकितों (कटाक्षों) द्वारा वह नायिका त्रिभुवन-विजिगीषा में पंचेषु (कामदेव) की सहायता करती है ।"[2] यहाँ नायिका के कुशल हाव भावादि का वर्णन है ।

(च) स्वल्प व्रीड़ा (प्रगल्भा) नायिकाः—इसके लिए 'स्मरान्धा प्रगल्भा नायिका' का उदाहरण देखना चाहिए ।

(छ) आक्रान्तनायक (प्रगल्भा) नायिकाः—हे विलासी स्वामिन् ! भंगुर (स्वयमेव भंजनशील, नष्ट हो जाने वाली) यावक (महावर, अलक्तक) को पुनः लगा दो तथा भाल को सतिलक कर दो । हे प्राणेश ! स्तनतट के टूटे हुए हार को पुनः जोड़ दो (पुनः उस त्रुटित हार का योजन, एकत्रीकरण कर दो) यह कह कर सम्पूर्ण चन्द्र के समान मुखवाली वह नायिका सम्भोग की समाप्ति के समय, प्रिय के द्वारा स्पृष्ट होकर (छुई जाकर) रोमांचित होकर, पुनः मोह को प्राप्त हो गई ।"[3]

---

१. क्वचित्ताम्बूलाक्तः क्वचिदगरुपङ्काङ्कमलिनः
क्वचिच्चूर्णोद्गारी क्वचिदपि च सालक्तकपदः
वली भङ्गाभोगैरलकपतितैः शीर्णकुसुमैः
स्त्रियाः सर्वावस्थं कथयति रतं प्रच्छदपटः ॥

२. मधुरवचनैः सभ्रूभङ्गैः कृताङ्गुलितर्जनै
रभसरचितैरङ्गन्यासैर्महोत्सव बन्धुभिः ।
असकृदसकृत्स्फारस्फारैरपाङ्गविलोकितै-
स्त्रिभुवन जये सा पञ्चेषोः करोति सहायताम् ॥

३. स्वामिन्भङ्गुरयावकं सतिलकं भालं विलासिन्कुरु,
प्राणेश, त्रुटितं पयोधरतटे हारं पुनर्योजय ।
इत्युक्त्वा सुरतावसानसमये संपूर्ण चन्द्रानना
स्पृष्टा तेन तथैव जातपुलका प्राप्ता पुनर्मोहनम् ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

मध्या और प्रगल्भा के अन्य भेद:—मध्या और प्रगल्भा नायिकायें पुनः धीरा, अधीरा और धीराधीरा होती हैं। इस प्रकार इनके छः भेद हुए। मध्याधीरा (अपराधी प्रिय को) क्रोध आने पर सोत्प्रास वक्रोक्ति (व्यंग्य-वाक्य) द्वारा, अधीरा परुषोक्ति (कठोर-वचन) से तथा धीराधीरा रुदित (रोदन) से प्रिय को पीड़ित करती है।[1]

मध्याधीरा:—मान-नर्म—'तुमने मुझसे···होता है' का उदाहरण पृ० १५८ देखना चाहिए।

मध्याधीराधीरा:—'धीराधीरामध्या की साश्रु सोत्प्रास वक्रोक्ति' "हे बाले······रोती हूँ" उदाहरणार्थ द्रष्टव्य है।

मध्याअधीरा:—"हे धूर्त ! सैकड़ों मनोरथों (कामनाओं) के साथ, कृत्रिम-हाव-रम्या (बनावटी कामचेष्टायें दिखाने के कारण सुन्दर लगने वाली) वही प्रिया तुम्हारे मन में विद्यमान है। तुम्हारे इस हृदय में हमारे ऐसी (स्त्रियों) के लिए अवकाश (स्थान) नहीं है, इसलिए मेरे चरणों पर (तुम्हार) गिरना विडम्बना (छलना) ही है।"[2]

प्रगल्भाधीरा नायिका:—यदि प्रगल्भा नायिका धीरा होती है तो वह कोप के आकार को छिपाकर बाहरी आदर दिखाती हुई भी सुरत में उदासीन रहती है (सम्भोग में उपेक्षा का भाव रखती है) यथा—'सावहित्यादरा प्रगल्भा' का उदाहरण देखने योग्य है।

धीराधीराप्रगल्भा नायिका:—नायक को सोल्लुण्ठभाषित (व्यंग्य, ताना, चुटकी) से पति को खेदित करती है"[4]। यथा—"हे सुन्दर ! तुम अनलंकृत

---

१. ते धीरा चाप्यधीरा च धीराधीरेति षड्विधे।
प्रियं सोत्प्रासवक्रोक्त्या मध्या धीरा दहेद्रुषा ॥३.६१॥

२. सार्धं मनोरथशतैस्तव धूर्त, कान्ता
सैव स्थिता मनसि कृत्रिमहावरम्या।
अस्माकमस्ति नहि कश्चिदिहावकाश-
स्तस्मात्कृतं चरणपातविडम्बनाभिः॥

३. प्रगल्भा यदि धीरा स्याच्छन्नकोपाकृतिस्तदा।
उदास्ते सुरते तत्र दर्शयन्त्यादरान्बहिः॥३.६२–६३॥

४. धीराधीरा तु सोल्लुण्ठभाषितैः खेदयत्यमुम्॥
तर्जयेत्ताडयेदन्या प्रत्येकं ता अपि द्विधा।३.६३–६४॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

होते हुए भी मेरे मन को बलपूर्वक हर लेते हो। पुनः इस समय तो तुम उसके नख-क्षत से अलंकृत हो।" [1]यहाँ नायिका धीरा-धीरा है।

अधीराप्रगल्भाः—तर्जन और ताड़न भी करती है। उदाहरणार्थ 'धृष्ट-नायक' का उदारण "(नायिका के) क्रोध·········करता है"। द्रष्टव्य है।

ये (उपर्युक्त मध्या, प्रगल्भा आदि) छहों नायिकायें नायक के प्रेम के आधिक्यवा न्यूनता की दृष्टि से दो-दो प्रकार की होती हैं, यथा, नर्मगर्म' का उदाहरण द्रष्टव्य है।

अतएव मध्या और प्रगल्भा के द्वादश भेद कहे गये हैं, तथा मुग्धा का केवल एक प्रकार। अतः स्वीया (स्वकीया) नायिकायें, सब मिल कर, तेरह प्रकार की हुईं।

परकीया नायिकाः—ये दो प्रकार की होती हैं—[2]परोढा (अन्य की विवाहिता) यात्रादि-निरता (यात्रा = मेला, नृत्य गायनयुक्त अभिनयों आदि में रुचि रखने वाली), कुलटा (व्यभिचारिणी) एवं गलित (नष्ट)-त्रपा (लज्जा) होती है।[2] यथा—(परोढा)—स्वामी नि.श्वसित (निःश्वास) की भी असूया (निन्दा) करते हैं, सपत्नी समुदाय मनोजिघ्र (मन, चित्त की बातों, भेदों को जान लेने वाला है; स्वश्रू (सास) इंगितों (संकेतों) की देवता है (इंगितों का अर्थ अपनी दिव्य शक्ति से जान लेती है अतः हमारे संकेतों का सार, रहस्य जान लेगी और हम लोगों का संगम होने न देगी), हमारे नेत्रों की ईहा (अभिलाषा) को याता (पति के भाइयों की स्त्रियां) चाट लेती हैं (नेत्रों की ईहा—दर्शन, अथवा नेत्रों द्वारा व्यक्त मिलन की अभिलाषा वा संकेतो को विफल कर देती हैं)। इसलिए दूर से ही यह अंजलि देती हूँ (कर-सम्पुट बद्ध कर प्रणाम करती हूँ)। अब तुम्हारे इन नेत्रों की भंगिमाओं से व्यक्त भावों से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा। हे मधुर

---

१. अनलंकृतोऽपि सुन्दर हरसि मनो मे यतः प्रसभम्।
किं पुनरलंकृतस्त्वं संप्रति नखक्षतैस्तस्याः॥

२. परकीया द्विधा प्रोक्ता परोढा कन्याका तथा था।
यत्रादिनिरतान्योढ़ा कुलटा गलितत्रपा॥
कन्यात्वजातोपयमा सलज्जा नवयोवना।
धीरा कला प्रगल्भा स्याद्वेश्या सामान्यनायिका॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रबन्ध (माधुर्यपूर्ण, शृंगारिक योजनाओं, व्यवस्थाओं) के रसिक ! यहाँ का यह (आज का) परिश्रम व्यर्थ गया"।[१]

कन्याः—अजातोपयमा (नहीं हुआ है विवाह जिसका, अविवाहिता) सलज्जा एवं नवयौवना होती है। पिता-मातादि के आयत्त (अधीन) रहने के कारण कन्या भी परकीया कही जाती है। जैसे (मालती माधव) में मालती।

वेश्याः—नायिका धीरा, कला-प्रगल्भा (नृत्य, गीतादि में चतुर) और सामान्य नायिका (सबकी सामान्य स्त्री) होती है। वह निर्गुणों से द्वेष नहीं करती तथा गुणियों में राग (प्रीति) भी नहीं रखती। वह धनमात्र देखकर बाहरी अनुराग प्रदर्शित करती है। भलीभांति (काम) अङ्गीकार करके भी (स्वीकरण के लिए प्रतिश्रुत, प्रतिज्ञात हो कर भी, स्वीकार करने की प्रतिश्रुति, प्रतिज्ञा करके भी) धन के परिक्षीण (कम, न्यूनतर) हो जाने पर मनुष्य को पुनः मैत्री कर लेने का आशय रख कर माता द्वारा निकलवा देती है। माता द्वारा निकलवा देने पर उससे पुनः मैत्री कर लेने की इच्छा बनी रहती है। तस्कर, षण्डक (नपुंसक) मूर्ख, सुख-प्राप्त धन (सुख से अर्थात् अनायास जिससे धन प्राप्त होता है), लिंगी, (ढोंगी ब्रह्मचारी आदि), छन्न-काम (कपटकामुक) आदि प्रायः इसके वल्लभ (प्रिय) होते हैं। यह (वेश्या) भी मदनायत्ता (काम के वशीभूत) कभी-कभी सत्यानुरागिणी (सत्य अनुराग से युक्त) होती है।

उक्त नायिकाओं के कुल सोलह भेद हुए। मुग्धा, मध्या-धीरा, मध्या-अधीरा, मध्याधीराधीरा, प्रगल्भाधीरा, प्रगल्भा अधीरा, प्रगल्भा-धीराधीरा तथा मुग्धा के अतिरिक्त, छः प्रकार की मध्या और प्रगल्भा के, प्रत्येकशः, कनिष्ठा एवं ज्येष्ठा दो-दो भेद और, बराबर हुए बारह; तथा मुग्धा का उक्त १ प्रकार कुल तेरह प्रकार हुए। ये तेरह तथा उक्त दो परकीया (अन्योढा तथा कन्या) = १५ तथा एक वेश्या = १६। ये १६ भेद वाली नायिकायें अवस्था भेद से प्रत्येक आठ-आठ प्रकार की होती हैं—स्वाधीनभर्तृका, खण्डिता, अभिसारिका, कलहान्तरिता, विप्रलब्धा, प्रोषित भर्तृका, वासकसज्जा तथा विरहोत्कंठिता (इस प्रकार इन $१६ \times ८ = १२८$ भेद हुए)।

---

१. स्वामी निःश्वसितेऽप्य मनोजिघ्रः सपत्नीजनः,
श्वश्रूरिङ्गितदैवतं, नयनयोरीहालिहोयातरः।
तद्दूरादयमञ्जलिः, किमधुना दृग्भङ्गिभावेन ते,
वैदग्धीमधुर रसिकः व्यर्थोऽप्यमत्र श्रमः॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

१. स्वाधीनभर्तृका:—रति गुणाकृष्ट नायक जिसका अन्तिक (सामीप्य) न छोड़े वह स्वाधीनभर्तृका है। उदाहरणार्थ देखें 'अनुकूल नायक' 'हे सखि न तो मेरे···मानती हूँ (पृ० १७२)।

२. खण्डितानायिका:—अन्य संभोगचिह्नित नायक जिसके पार्श्व में आये वह ईर्ष्या-कषायिता नायिका धीरों (पण्डितों) द्वारा खण्डिता कही जाती है। उदाहरण देखिए 'मान-नर्म' 'तुमने जो मुझसे···सफल होता है'। पृ० १५८

३. अभिसारिका नायिका:—वह है जो मन्मथवशंवदा (काम-वश) कान्त का अपने पास अभिसरण करावे या स्वयं उसके समीप अभिसार करे। देखें पृ० १४४ प्रिय को अपने समीप बुलाने, सारण कराने वाली नायिका—'हे अभिदूति···करुणा करें'।

(ख) स्वयं अभिसरण करने वाली नायिका:—"इन दोनों कर-कंकणों को (मैंने) उत्क्षिप्त कर (खिसका) दिया, (जिससे बजे नहीं) मेखला को दृढ़तापूर्वक बांध लिया, मुखर मजीरों (झंकार करने वाले नूपुरों) की मूकता यत्नपूर्वक (ध्यानपूर्वक) प्रतिपादित (सम्पन्न) किया (ऐसा उपाय किया कि वे बजें नहीं), हे प्रिय सखि ! (इस प्रकार) मैंने क्रीड़ाभिसारोत्सव (रति-क्रीड़ा के लिए किया गया अभिसार का उत्सव) रभस से (हर्षपूर्वक) आरम्भ किया है (त्यों ही) यह चाण्डाल (छुद्र) चन्द्रमा तिमिरावगुंठन (अन्धकार रूपी आवरण) का पटक्षेप कर रहा है (अंधकार का नाश कर रहा है)।"[१]

अभिसरण विधियां:—(क) कुलजा यदि अभिसार करे तो (मानो) अपने गात्र (शरीर) में संलीन (मग्न) होकर (संकुचित होकर, शरीर का संवरण कर, नत होकर) आभूषणों को मूक बनाकर अवगुंठन से संवीत (आच्छादित) होकर (चले)।

(ख) वेश्या यदि अभिसार करे तो विविध रंगों के (रंग-विरंगे) स्वच्छ वेश से युक्त हो कर, नूपुर तथा कंकणों को बजाती हुई एवं आनन्द से मत्त होने के कारण स्खलित (विचलित) बातें करती तथा रुक-रुक कर चलती हुई दृष्टिगत होती है।

---

१. उत्क्षिप्तं करकङ्कणद्वयमिदं बद्धा दृढं मेखला
यत्नेन प्रतिपादिता मुखरयोर्मञ्जीरयोर्मूकता।
आरब्धे रभसान्मया प्रियसखि, क्रीड़ाभिसारोत्सवे
चण्डालस्तिमिरावगुण्ठनपटक्षेपं विधत्ते विधुः॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अभिसार के स्थानः—क्षेत्र (खेत), वाटी (उद्यान), भग्नदेवालय, दूती-गृह, वन, शून्यस्थान, श्मसान, नद्यादितट, ये आठ तथा ध्वान्ताच्छन्न कोई भी आश्रय (स्थान) अभिसारेच्छुकों तथा पुंश्चली स्त्रियों के विनोदन के लिए उपयोगी कहे गये हैं।

कलहान्तरिता नायिका:—चाटुकार प्राणनाथ का रोष से अपासन (निवारण) करके पश्चात्ताप करती है। यथा—'मानभंग के उपाय' का उदाहरण पृ० १६५ दर्शनीय है।

विप्रलब्धा नायिका:—जिसका प्रिय संकेत करके भी समीप न आये वह 'नितान्तमवमानिता' (अत्यन्त अपमानिता) नायिका विप्रलब्धा कही जाती है। यथा—पूर्वोक्त 'विप्रलब्धनायिका' का उदाहरण पृ० १४२ द्रष्टव्य है।

प्रोषितभर्तृका:—जिसका पति 'नानाकार्यवशात्' दूर-देशगत होता है, वह मनोभव दुःखार्ता (कामपीड़िता) नायिका प्रोषितभर्तृका है। यथा 'प्रवास में उपसर्गार्थक व्याविद्ध का उदाहरण पृ० ४४ देखना चाहिए।

वासकसज्जानायिका:—सुसज्जित वास-वेश्म (रात्रि-निवास) में (सखी) जिसका मण्डन (शृंगार, अलंकरणादि) करे तथा जो 'विदित-प्रिय-संगमा' हो (जिसका प्रियमिलन निश्चित हो) वह वासकसज्जा है। यथा—'हे सखि ! केयूर (भुजबन्द) को दूर करो, दोनों हाथों में रत्नजटित वलयों की आवश्यकता नहीं, यह ग्रीवाभरण-लातिका (लता के सदृश ग्रीवा का आभूषण) भारी है (अतः) इसकी भी आवश्यकता नहीं, मुझे तो केवल एकावलि हार पिन्हा दो (क्योंकि) अनंगोत्सव के विधान में बहुतर नेपथ्य (बहुत वेश-भूषा) पथ्य (अनुकूल) नहीं होता।"[1]

विरहोत्कण्ठिता नायिका:—"आने के लिए कृत-चित्त हो कर भी, यदि, प्रिय दैवात् नहीं आता, तो, उसके अनागम से दुःखार्त्ता नायिका विरहोत्कण्ठिता कही जाती है। यथा—"क्या (मेरा प्रिय) किसी अन्य (नायिका) प्रिया द्वारा रोक लिया गया, अथवा, मेरी सखी ने उसे उद्विग्न (खिन्न) कर दिया, वा किसी के कारणके महत्व से (किसी महत्वपूर्ण कारण से) मेरा प्रिय अब तक नहीं आया ? इस प्रकार की आलोचना (वितर्क) करके, वह मृगनयनी, करतल (हथेली) पर

---

१. विदूरे केयूरे कुरु, करयुगे रत्नवलयै
 रलं गुर्वी ग्रीवाभरणलतिकेयं, किमनया।
 नवामेकामेकावलिमयि, मयि त्वं विरचये-
 र्न नेपथ्यं पथ्यं बहुतरमनङ्गोत्सवविधौ ॥ ३।८५ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

मुख-कमल रख कर, दीर्घ निःश्वास लेने तथा रोने लगी एवं पुष्पों की माला को उसने फेंक दिया।"[1]

कुछ विद्वानों का मत है कि उक्त दो परस्त्रियाँ अर्थात् (कन्यका और अन्योढ़ा) प्रिय-प्रदत्त संकेत के पूर्व विरहोत्कंठिता होती है। पश्चात् विदूषकादि के साथ अभिसार करने पर अभिसारिका होती हैं। यदि किसी कारण से संकेत-स्थान पर प्रिय प्राप्त न हुआ तो वे विप्रलब्ध कही जाएगी। यही तीन अवस्थायें इनकी हो सकती हैं। अस्वांधीनपतिका होने के कारण अन्य पांच अवस्थायें इनकी नहीं हो सकतीं। डा० सत्यव्रत सिंह 'व्याख्याकार साहित्यदर्पण' के मतानुसार इस प्रसंग में 'पति' और 'भर्ता' का अर्थ कविराज विश्वनाथ ने 'प्रणयी वा कामुक' मान कर उक्त स्वकीया-परकीया सभी नायिकाओं की उक्त स्वाधीन-भर्तृका, खण्डिता, अभिसारिकादि आठ अवस्थायें मानी हैं, क्योंकि परकीया नायिकायें भी स्वाधीन प्रणयिनी वा स्वाधीन कामुका तो हो ही सकती हैं। यह मत इस दृष्टि से ठीक भी है। कविराज विश्वनाथ ने 'पति' और 'भर्ता' का अवश्य कुछ ऐसा उदार और व्यापक अर्थ लगाया होगा।

साहित्यदर्पणकार ने माघ से एक उदाहरण सकीर्ण नायिकाओं का (जिनमें अन्य नायिकाओं के लक्षण मिश्रित हों) दिया है। इस उदाहरण में एक ही नायिका में, मध्याधीरा, मध्याअधीरा तथा प्रगल्भाअधीरा के लक्षण मिलते हैं। उक्त उदाहरणचार युग्मों का है। प्रथम के लिए 'मध्याधीरा द्वारा सोत्प्रासक्रोक्ति' का उदाहरण पृ० १३२ देखना चाहिए। दूसरे श्लोक का अर्थ है—"हे कितव (वंचक)! मेरे लिए व्यर्थ ही, वृक्षों के (कोमल) पल्लवों तथा पुष्पों के कर्णपूर (कर्णफूल) आहित करने (कानों में स्थापित करने) से क्या (लाभ)? निश्चय ही जन-विदित (सर्वविदित) आप के व्यलीकों (छलों) से मेरे कर्ण-युग्म (दोनों कान) परिपूरित हो गये हैं।"[2] तृतीय युग्म के लिए 'दान अर्थात् व्याज (बहाने) से भूषणादि देकर ईर्ष्यामान का उपचार, शीर्षकस्थ उदाहरण पृ० १०७ 'मुहुरुपहसिता···महांस्त्वयायदत्त' द्रष्टव्य है। अन्तिम युग्म का अर्थ है:—

इस प्रकार कहती हुई अन्या (एकतर नायक-नायिका में से एक) ने कान्त

---

१. किं रुद्धः प्रियया कयाचिदथवा सख्या ममोद्वेजितः
किंवा कारणगौरवं किमपि यन्नाद्यागतो वल्लभः।
इत्यालोच्य मृगीदृशा करतले विन्यस्त वक्त्राम्बुजं
दीर्घं निःश्वसितं चिरं च रुदितं क्षिप्ताश्च पुष्पस्रजः ॥ ३।८६ ॥

२. तव कितव किमाहितैर्वृथा नः क्षितिरुहपल्लवपुष्पकर्णपूरैः।
ननु जनविदितैर्भवद्व्यलीकैश्चिर परिपूरितमेव कर्णयुग्मम् ॥३.८७-८८॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

को स्पन्दित होते हुए पक्ष्मरूपी केसर (नेत्र रोम) वाली श्रवण-नियमित (आकर्ण व्यवस्थित, कानों तक विस्तृत) आंखों एवं असित अम्बुरुह (नील कमल) से एक साथ ही प्रहार किया''।[१]

उक्त उदाहरणों में जो महाकवि 'माघ' के शिशुपालवध' से उद्धत है, एक ही नायिका के विविध लक्षणों की अभिव्यक्ति है। उसकी सोत्प्रास-वक्रोक्ति से 'धीरमध्यता' परुष वचन से 'अधीरमध्यता' एवं कर्णोत्पल ताड़न से 'अधीर प्रगल्भता' का लक्षण-सांकर्य लक्षित होता है।

नायिकाओं के अलंकार:—यौवन काल में नायिकाओं के २८ सत्वज (सात्विक) अलंकार माने गये हैं। इनमें भाव, हाव और हेला अंगज अलंकार हैं। शोभा, कान्ति, दीप्ति, माधुर्य, प्रगल्भता, (दक्षता, धृष्टता) औदार्य तथा धैर्य (सात अलंकार) अयत्नज हैं। लीला, विलास, विच्छित्ति, विव्वोक, किलकिंचित, मोट्टायित, कुट्टमित, विभ्रम, ललित, मद, विहृत, तपन मौग्ध्य, विक्षेप, कुतूहल, हसित, चकित, तथा केलि—ये अठारह स्वभावज हैं। पूर्वोक्त भाव से धैर्य तक के दश अलंकार नायकों में भी प्राप्त होते हैं। किन्तु ये सब नायिकाश्रित हो कर ही विच्छित्ति (विचित्रता) विशेष का पोषण करते हैं (नायिकाओं में ही ये भावादि विशेष चमत्कारक होते हैं।

भावः—(नायक तथा नायिका के) निर्विकारात्मक (विकार-विहीन) चित्त में उत्पन्न प्रथम विकार कामानुभूति को भाव कहते हैं :—

''वसन्त ऋतु का समय भी वही है, वही मलयज पवन भी है, यह अबला भी वही किन्तु इसका मन कुछ और ही (भिन्न प्रतीत होता है।''[२]

हाव:—'भ्रूनेत्रादि विकारों (परिवर्तनों, विकसित रूपों) द्वारा 'संभोगेच्छा प्रकाशक' (प्रिय समागम की अभिलाषा व्यक्त करने वाले) अल्प संलक्ष्यविकारों (किंचिन्मात्र लक्षित होने वाले अंग-परिवर्तनों) से विशिष्ट भाव ही हाव कहा जाता है। जैसे—

"(रोमाञ्चित होने के कारण) नव कदम्ब (फल) के सदृश अङ्गोंद्वारा भावों (प्रथम-विक्रियाओं) को विवृत (व्यक्त) करती हुई (उनका विवरण

---

१. इति गदितवती रुषा जघान
स्फुरितमनोरमपक्ष्मकेसरेण।
श्रवणनियमितेन कान्तमन्या
सममसिताम्बुरुहेण चक्षुषा च।

२. स एव सुरभिः कालः, स एव मलयानिलः।
सैवेयमबला किंतु मनोऽन्यदिव दृश्यते॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

करती हुई) शैलसुता (पार्वती), वक्रीकृत, सुन्दरतर एवं त्रस्त (पर्यस्त, क्षिप्त, चंचल) नेत्रों से युक्त मुख से सुशोभित हुई (पुलकित हो कर, भगवान् शंकर की ओर, तिरछे एवं चंचल नेत्रों से युक्त देखती हुई स्थितथीं)" ।[१] यहाँ पार्वती के 'साचीकृत पर्यस्त विलोचन, बालकदम्ब-कल्प अङ्ग-हाव के लक्षण हैं।

हेला—वे ही 'अल्प-संलक्ष्य-भ्रू नेत्रादि-विकार 'जो हाव कहे जाते हैं, अत्यन्त समालक्ष्य (अतिशय स्पष्ट, सुव्यक्त) हो जाते हैं, तो उनको हेला कहते हैं। यथा—पूर्वोक्त हेला का उदाहरणं 'स्तनोद्भेद होते‥‥‥संशय होने लगा' पृ० १४५ देखें।

शोभा:—रूप, यौवन, लालित्य (सौन्दर्य) एवं सुख भोगादि के कारण (उत्पन्न) अङ्गों के भूषण (अलंकरण, सुसज्जीकरण) को शोभा कहते हैं।

यौवनशोभा, यथा:—वह (पार्वती) अब बाल्यावस्था-भिन्न (बचपन से भिन्न) एक ऐसी अवस्था में पहुंच गई है जो प्रकृति से ही अङ्गरूपी यष्टि की शोभा स्वरूपा है, जो आसव (मद्य) न होते हुए भी मद का कारण है, तथा पुष्प न होते हुए भी काम का अस्त्र है।"[२]

कान्ति:—मन्मथाप्यायित (कामोन्मेष के कारण प्रवृद्ध) शरीर की द्युति ही कान्ति है। यथा—'गुण-कथन' शीर्षस्थ उदाहरण पृ० १६० "उसके दोनों नेत्र‥‥‥‥ छटा देखें"।

दीप्ति:—कान्ति ही अत्यन्त विस्तीर्ण होने पर दीप्ति कही जाती है। यथा—"(यह सुन्दरी नायिका) तरुणाई का विलास (प्रणय-क्रीड़ा), अतिशय लावण्य-सम्पृत्ति (सौन्दर्य के वैभव) का, मानों, हास (विकास) है, इस पृथ्वीतल की शोभा है, एवं युवकों के मन का वशीकरण है।"[3]

माधुर्य:—सर्वावस्था विशेष में (प्रत्येक दशा में) स्थिर रहने वाली रमणीयता (मनोहरता) माधुर्य है।

यथा:—'माधुर्य' शीर्षकस्थ—"शैवल से—‥‥‥नहीं करती ?" उदाहरण पृ० १४६

प्रागल्भ्य:—नि:साध्वसत्व (निर्भयता, अनुद्वेग) को प्रागल्भ्य कहते हैं। यथा—

---

१. विवृण्वती शैलसुतापि भावमङ्गैः स्फुरद्बालकदम्बकल्पैः।
साचीकृता चारुतरेण तस्थौ मुखेन पर्यस्तविलोचनेन ॥३.९४॥

२. असंभृतं मण्डनमङ्गयष्टेरनासवाख्यं करणं मदस्य।
कामस्य पुष्पव्यतिरिक्तमस्त्रं बाल्यात्परं साऽथ वयः प्रपेदे ॥

३. तारुण्यस्य विलासः समधिकलावण्यसंपदो हासः।
धरणितलस्याभरणं युवजनमनसो वशीकरणम् ॥३.९६॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

"युवती रमणियाँ आलिंगित होने पर आलिङ्गनों से, चुम्बित होने पर चुम्बनों से एवं दष्ट होने (दांत से काटे जाने) पर दशन (काटने की क्रिया) से अपने प्रिय को अपना दास बना लेती हैं।"[1]

औदार्यः--सर्वदा विनम्र रहना औदार्य है यथा:--

"वह (मेरी प्रिया) अपराध व्यक्त हो जाने पर भी न तो कभी कठोर वचन कहती है, न दोनों भौहों को वक्र करती है, न अपने कानों से कर्णफूल निकाल कर पृथ्वी पर फेंकती है। वह कान्ता गर्भगृह (मध्य के कक्ष) के वातायन (खिड़की) के छिद्र से, बाहर सखी के मुख की ओर अपने पर्यश्रु नेत्र (आंसुओं से भरी आंखें) डाल देती है।"[2]

धैर्य:—आत्मश्लाघा से मुक्त अचंचल मनोवृत्ति को धैर्य कहते हैं। यथा--धैर्य' का उदाहरणपृ० १४७।

लीलाः--अंग, वेष, अलंकार तथा प्रेमयुक्त वचनों में, प्रीति द्वारा प्रयोजित प्रिय की अनुकृति को लीला कहते हैं। यथाः--"मृणाल का व्याल बना कर, उसे कंकणवत् धारण कर, वेणी के बन्ध (वेणी बांधने की चोटी) से कपर्दिनी (कपर्द अर्थात् जटा-जूट धारण करने वाली) बनी हुई पर अर्थात् शिव की लीला से अनुकरण करने वाली पार्वती जगत की रक्षा करे"।[3]

विलास:—इष्ट के संदर्शन (प्रिय के दर्शन) से यान (गति), स्थान (स्थिति), आसन (बैठने की क्रिया) की तथा मुख नेत्रादि के कर्मों में (व्यक्त) विशेषता को विलास कहते हैं। यथा—पूर्वोक्त (विलास) उदाहरण—"अत्रान्तरे किमपि वा······मन्मथमाविरासीत" पृ० १४७।

विच्छित्ति:—कान्ति का पोषण करने वाली (बढ़ाने वाली) थोड़ी भी आकल्प-रचना (वेश-रचना) विच्छित्ति है—"स्वच्छ जल के स्नान से धुले हुए अङ्ग, ताम्बूल की द्युति से सुन्दर (राग से रमणीय) ओष्ठ, वस्त्र भी अत्यन्त

---

१. समाश्लिष्टाः समाश्लेषैश्चुम्बिताश्चुम्बनैरपि।
दष्टाश्च दंशनैः कान्तं दासी कुर्वन्ति योषितः॥

२. न ब्रूते परुषां गिरं, वितनुते न भ्रूयुगं भंगुरं,
नोत्तंसं क्षिपति क्षितो श्रवणतः सामेस्फुटेऽप्यागसि।
कान्तागर्भगृहेगवाक्षविवरव्यापारिताक्ष्या बहिः
सख्या वक्त्रमभि प्रयच्छति परं पर्यश्रुणीलोचने॥ ३।९७

३. मृणालव्यालवलया वेणीबन्धकपर्दिनी।
परानुकारिणी पातुलीतया पार्वती जगत्॥ ३।९८

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सूक्ष्म और स्वच्छ, वस, विलासिनी (सुन्दरी, कामुक) स्त्रियों की, इतना ही आकल्प (वेशरचना) यथेष्ट है, यदि वह काम से शून्य नहीं है।"[१]

विब्बोकः—अत्यन्त गर्व के कारण इष्ट वस्तुओं के प्रति भी अनादर को विब्बोक कहते हैं। यथाः—"जिनमें सद्गुणों का पालन होते हुए भी (जो सद्गुणों का अनुसरण करती हुई भी) दोषान्वेषण-परा अर्थात् दोष निकालने में निरत रहती है, जो अपने श्रेष्ठ प्राणों को भले ही दे दें किन्तु प्रिय की ओर सम्पूर्ण दृष्टि नहीं डालतीं, अत्यन्त अभिलाषित (वस्तु) के लिए भी जिनकी विधि (कार्य करने का ढंग) निषेधात्मक (नकारात्मक) होती है (जो 'हाँ' के स्थान पर 'ना' करती हैं) इस प्रकार की त्रिलोक-विलक्षण (तीनो लोकों—आकाश, पाताल, मर्त्य के प्राणियों से भिन्न) प्रकृति वाली स्त्रियाँ तुम पर प्रसन्न हों।"[२]

किलकिंचितः—अभीष्टतम संगमादि-जात (अत्यन्त प्रिय के समागम से उत्पन्न)हर्ष, मन्द मुस्कान, शुष्क-रुदित (अकारण निरश्रुरोदन), हसित, (हास), त्रास, क्रोध एवं श्रम (खेद, क्लान्ति) का सांकर्य (मिश्रण) किलकिंचित है। यथा—'कामी प्रिय की वांछा (इच्छा) का विरोध न करती हुई भी (अथवा विरोध न करने की इच्छा करती हुई भी) उसके (आलिंगनादि प्रवृत्त) हाथों का निवारण करती है, निन्दन करती है किन्तु मधुर-स्मित-गर्भ (मधुर हास से युक्त) सुख (की अनुभूति) होने पर भी वह सुन्दर आँखों वाली (करभोरु) हारि (रुचिर मनोहर) रोदनाभास (शुष्क रोदन) करती थी।"[३]

मोट्टायितः—प्रिय (वल्लभ) की कथादि (के प्रसंग में) प्रिय के भाव (राग, प्रेम) से भावित (अनुरंजित) चित्त से युक्त, कानों (का खुजाना आदिक

१. स्वच्छाम्भः स्नपनविधौतमङ्गमोष्ठ-
स्ताम्बूलद्युति विशदो विलासिनीनाम्।
वासस्तु प्रतनु विविक्तमस्त्विवतीया-
नाकल्पो यदि कुसुमेषणा न शून्यः ॥ ३।९९ ॥

२. यासां सत्यपि सद्गुणानुसरणे दोषानुवृत्तिः परा
या प्राणान्वरमर्पयन्ति न पुनः संपूर्णं दृष्टिं प्रिये।
अत्यन्ताभिमतेऽपि वस्तुनि विधिर्यासां निषेधात्मक
स्तास्त्रैलोक्यविलक्षण प्रकृतयो वामाः प्रसीदन्तु ते ॥३ १००॥

३. पाणिरोधमविरोधितावाञ्छं भर्त्सनाश्च मधुरस्मितगर्भाः।
कामिनः स्म कुरुते करभोरुर्हारि शुष्करुदितं च सुखेऽपि ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

मोट्टायित है।—'हे सुभग! तुम्हारी कथा के आरम्भ होने पर कान की खुजली में लीन, जभाइ लेती हुई वह कमलमुखी रमणी अपने अङ्गों को तोड़ती है।"[1]

कुट्टमितः—केश, स्तन, अधरादि के ग्रहण करने से हर्ष प्राप्त होने पर भी, व्याकुल होकर शिर और हाथ हिलाने (कंपाने) को कुट्टमित कहते हैं। यथा—"पल्लव से ही उपमित होने (पल्लव की उपमिति से निरूपित होने) के कारण साम्य-युक्त (समान), अतएव सपक्ष (एक ही पक्ष के), अभीष्ट अधर-बिम्ब के, प्रिय द्वारा काटे जाने पर उस तरुणी के अधर स्वच्छ एवं अशान्त क्षुब्ध वलय युक्त हाथ के व्याज से कष्टग्रस्त के सदृश मधुर ध्वनि करने लगे।"[2] यहाँ अधर और कर सपक्षी एवं समान इसलिए हैं कि दोनों की उपमिति (सादृश्य) पल्लव से दी जाती है। अतएव दोनों सपक्षी 'कर' और 'पल्लव' एक दूसरे से सहानुभूति रखते हैं। 'अधर' के दष्ट होते ही हाथ भी कंकड़ों के व्याज से कम्पित या झंकृत हो उठे।

विभ्रमः—शीघ्रता, हर्ष, राग (प्रेम) आदि के कारण दयित (प्रिय) के आगमनादि के अवसर पर विभ्रम (उद्वेग) से अस्थान (अनुचित स्थान) में वेश-भूषादि का धारण विभ्रम है। यथा—पूर्वोक्त विभ्रम का उदाहरण पृ० १४७—'श्रुत्वाऽऽयातं······तिलकः कृतः'।

ललित—अंगों के सुकुमारतापूर्ण विन्यास को ललित कहते हैं। यथा—गम्भीर और श्रुति-मधुर नूपुर-ध्वनियुक्त कमलवत् वाम चरण को नचाती तथा दूसरे (दक्षिण चरण) को अनतिलोल (अत्यन्त अचंचल) रीति से रखती हुई, कामोद्दीपन के कारण मन्द (अथवा कामोद्दीपक मन्द) गति से चली"।[3]

मदः—सौभाग्य, यौवनादि एवं गर्व से उत्पन्न विकार को मद कहते हैं। यथा—'स्वाधीनभर्तृका नायिका' शीर्षस्थ उदाहरण "मागर्वमुद्वह······वेपथुरन्तरायः" पृ० १४०-४१।

विहृतः—वक्तव्यकाल में भी व्रीड़ा के कारण अवच (बोलने के लिए

---

१. सुभग! त्वत्कथारम्भे कर्णकण्डूति लालसा
उज्जृम्भवदनाम्बोजा भिनत्याङ्गानि साऽङ्गना ॥३.१३०॥

२. पल्लवोपमिति साम्यसपक्षं दष्टवत्यधरबिम्बमभीष्टे।
पर्यकूजिसरुजेव तरुण्यास्तारलोलवलयेन करेण ॥३.१४०॥

३. गुरुतरकलनूपुरानुनादं सललितनर्तितवामपादपद्मा।
इतरदनतिलोलमादधाना पदमथमन्मथमंथरं जगाम् ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अननुकूल) विहृत है। यथा—"दूर (देश) से आने पर जब मैंने कुशल पूछा तो वह कुछ न बोली। परन्तु उसके अश्रु-संकुल नयनों ने सब कुछ कह दिया।"[1]

तपन:—प्रिय-विच्छेद (प्रिय-वियोग) के कारण उत्पन्न कामोत्तेजित व्यापारों (चेष्टितों) को तपन कहते हैं। यथा—उद्वेग का उदाहरण 'तुम्हारे वियोग''नहीं देता' पृ० १६५।

मौग्ध्य—प्रिय के सम्मुख प्रतीत वस्तु की भी अज्ञातवत् पुनः पृच्छा को तत्त्वविद् (उस तत्त्व के ज्ञाता) मौग्ध्य कहते हैं। यथा—

"हे नाथ ! मेरे कंकण में जटित ये मोती किस पेड़ से मिले हैं (इन मुक्ताफलों के कौन से द्रुम (वृक्ष हैं) ? किस ग्राम में (वे द्रुम) हैं तथा किसके द्वारा वे प्ररोपित हैं।"[2]

विक्षेप:—भूषाओं (आभूषणों शृंगारों) की अर्धरचना (अर्द्ध-धारण), झूठ-मूठ (मिथ्या) चारों ओर देखना तथा प्रिय के समीप ईषत् (अल्प) रहस्यपूर्ण बात कहना विक्षेप है। यथा:—

"वह कृशाङ्गी युवती धमिल्ल (केश) को आधा ही संयत कर सकी है, आधे मुक्त (छूटे) ही रह गये, तिलक आधा ही लगा सकी है, कुछ (थोड़ा) रहस्य की बातें करती है एवं चकित हो कर चारों ओर देखती है।"[3]

कुतूहल:—रम्य (रमणीय) वस्तु के समालोकनार्थ चंचलता (लोलता) को कुतूहल कहते हैं।—

"प्रसाधन करने (शृंगार करने, अलंकृत करने) वाली स्त्री के सम्मुख प्रसारित चरण को झटके से हटा कर, किसी स्त्री ने अपनी लीलागति (सविलास, सुन्दर मन्थर गति) का त्याग कर, द्रव राग से युक्त अलक्तक के पद-चिह्नों (अङ्कों) को गवाक्ष (वातायन) तक के मार्ग में फैला दिया।"[4] बारात में जीते हुए रघु कुमार अज के दर्शनार्थ किसी स्त्री के कुतूहल का यह वर्णन है।

---

१. दूरागतेन कुशलं पृष्टा नोवाच सा मया किंचित्।
पर्यश्रुणी तु नयने तस्याः कथयांबभूवतुः सर्वम् ॥३.१०५॥

२. केद्रुमास्ते क्व वा ग्रामे सन्ति केन प्ररोपिताः।
नाथ, मत्कंकणन्यस्तं येषां मुक्ताफलं फलम् ॥३.१०७

३. धम्मिल्लमर्धमुक्तं कलयति तिलकं तथाऽसकलम्।
किंचिद्वदति रहस्यं चकितं विष्वग्विलोकते तन्वी ॥३.१०८

४. प्रसाधिकालम्बितमग्रपादमाक्षिप्य काचिद् द्रवरागमेव।
उत्सृष्टलीलागतिरागवाक्षादलक्तकाङ्कां पदवीं ततान ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हसित:--यौवनोद्भेद-संभव (यौवनोद्गम से उत्पन्न) वृथा हास को हसित कहते हैं । यथा--

यह रमणी अचानक, जो हसने लगी, इससे स्पष्ट है कि, कामदेव ने इसके हृदय वा शरीर में स्वराज्य स्थापित कर लिया है ।[१]

चकित:--दयित (पति) के आगे भय से भीत होना तथा उद्विग्न होना चकित है । यथा--'शिशुपालवध' अष्टमसर्ग से--"जलविहार के समय" ऊरू (जांघ) से चंचल शफरी (एक प्रकार की मछली) के टकरा जाने से सुन्दर जघों वाली रमणी के हृदय में अतिशय विभ्रम (घबराहट, सन्देह) व्याप्त हो गया । तरुणी स्त्रियां लीला (क्रीड़ा, विलास) से ही, विना कारण के क्षुब्ध (भीत) हो जाती हैं, यदि कारण हो तो क्या कहना ?"[२]

केलि:--कान्त के साथ विहार (मनोरंजन) के समय के क्रीड़ित (क्रीड़ायें) को केलि कहते हैं ।--

"मुख के फूंक से (आंखों में पड़े हुए) पुष्परज को, (आंखों से) दूर न कर पाते (सकते) हुए, उत्कण्ठित सी (उन्मना) उस स्थूल स्तनों वाली (रमणी) ने प्रिय को निवारित करने के लिए अपने पयोधर से (प्रिय के) उर (वक्ष) में (धक्का) मारा" ।[३]

मुग्धा और कन्या की अनुरागेङ्गित प्रणय-चेष्टायें:--मुग्धा अथवा कन्या प्रिय को देखकर व्रीड़ा प्रदर्शित करती तथा सम्मुख नहीं देखती । प्रच्छन्न (ओट या गुप्त स्थान में स्थित,) भ्रमण करते हुए, वा अतिक्रान्त (पार्श्व से वा पुरोभाग से जाते हुए) प्रिय को देखती है । बहुधा (कई बार) प्रश्न किये जाने (पूछे जाने) पर भी, मन्द, मन्द, मधुर स्वर में, गद्गद् युक्त (स्वभंग वा वैस्वर्य-युक्त) वाणी में प्रायः प्रिय से किंचित् भाषण करती है । अन्य व्यक्ति द्वारा प्रवर्तित (चलाई गई, चर्चित) प्रिय की कथा को शश्वत्साव धान हो कर अन्यत्र दत्ताक्षी (दूसरी ओर दृष्टि किये हुए) वह प्रिय की बालानुरागिणी, सुनती है ।

---

१. अकस्मादेव तन्वङ्गी जहास यदियं पुनः ।
नूनं प्रसूनबाणोऽस्यां स्वाराज्यमधितिष्ठति ॥३.१०९॥

२. त्रस्यन्ती चलशफरीविघट्टितोरू-
वामोरूरतिशयमाप विभ्रमस्य ।
क्षुभ्यन्ति प्रसभमहो विनापि हेतो
र्लीलाभिः किमुसति कारणे तरुण्यः ॥ वही ॥

३. व्यपोहितुं लोचनतो मुखानिलैरपारयन्तं किलपुष्पजं रजः ।
पयोधरेणोरसि काचिदुन्मना प्रियं जघानोन्नतपीवरस्तनी ॥ ३.११०॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सब नायिकाओं की अनुराग-चेष्टायें:—प्रिय के सविध (समीप) चिरकाल तक स्थान (स्थिति, रहना) को बहुत (सौभाग्य) मानती है। उसके (प्रिय के) विलोचन-पथ (दृष्टि मार्ग) में अनलंकृत नहीं जाती। कोई-कोई स्त्री कुन्तल (केश) एवं संव्यान (वस्त्र) के संयमन (नियमन, नियंत्रण) के व्यपदेश (छल) से अपना बाहुमूल, स्तनद्वय, नाभिकमल का स्फुट (स्पष्ट) प्रदर्शन करती है। प्रिय के परिचारको (सेवकों) को अपनी बातों से आच्छादित कर देती (ढ़क देती, संतुष्ट कर देती) है। उसके मित्र में विश्वास रखती है तथा उनका बहुत मान करती है। सखियों के मध्य में प्रिय का गुण-कथन करती, अपना धनभी देती, उसके सोने पर सोती, उसके दुःखमें दुःखी एवं सुख में सुखी होती है। प्रिय के दृष्टिपथ में स्थित हो कर, दूर से प्रिय को सदा देखती हुई, अपनी सखियों से काम-विकारों का कथन करती है। यत्किंचित् (कुछ, कोई वस्तु) भी देख कर व्यर्थ हंसती है। कर्ण-कन्डूयन (कान-खुजाना) तथा कवरी (केश-पाश) का मोक्ष (छोड़ना) या संयम (बांधना) करती, जंभाई लेती, अंग स्फोट (अंगों का तोड़ना, अंगड़ाना) करती, बालक का आलिंगन कर उसका चुम्बन करती, अपनी वयस्या (सखी) के भाल पर तिलक लगाती, अंगुष्ठाग्र से (पैर की अंगुली से) लेखन करती भूमि कुरेदती), सकटाक्ष निरीक्षण करती, अपने अधरों को स्वयमेव है दांतों से काटती, अधोमुखी होकर प्रियबचन बोलती, उस स्थान का त्याग नहीं करती जहां उसका (प्रिय) दिखाई देता है। वह किसी कार्य के व्याज से प्रिय के घर आती, तथा उस प्रिय के द्वारा दी हुई किसी भी वस्तु को अङ्गों में धारण कर बार-बार निहारती है। प्रिय के योग से हर्षित तथा वियोग से मलिन और कृश हो जाती है। उक्त (प्रिय) के शील को बहुत मानती, एवं उसकी प्रिय-वस्तु को अपना प्रिय मानती है। अत्यल्प मूल्य के पदार्थों को मांगती तथा सोते समय परिवर्तित नहीं होती। प्रिय की सम्मुखीना (सम्मुख-स्थिता) होने पर सात्विक विकारों को प्राप्त होती (स्वेद, रोमांच से युक्त हो जाती है। प्रिय पर अनुरक्त होने वाली वह विशाल नितम्ब-युक्ता स्त्री सुन्दर एवं सत्य भाषण करती है। इन स्त्रियों में से नवस्त्री (नववय शालिनी) के चेष्टित अधिक लज्जायुक्त होते हैं। मध्या नायिकाओं की चेष्टायें मध्य-व्रीड़ (मध्यग-परिमाण की लज्जा से युक्त), तथा, अन्यस्त्रियों, प्रगल्भाओं तथा वारयोषिताओं की चेष्टाये स्रंसमान-(गलित)-त्रप (निर्लज्ज) होती हैं। इनमें से कुछ चेष्टाओं के लिए निम्न उदाहरण देखिये—

"आश्चर्य है यह नायिका (मुझे) देखकर भी (बार-बार) देखती

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

देखती तथा सरम नख-क्षतों से लक्षित (अंकित) भुजामूल को आविष्कृत (प्रकाशित) कर रही है ।"[1]

भावाभिव्यक्ति के अन्य उपाय:--लेख-प्रस्थापन (पत्र-प्रेषण). स्निग्ध वीक्षण (सरस अवलोकन), मृदुभाषित (मधुर भाषण), दूतीसंप्रेषण, से भी आर्याओं (सभ्य, कुलीन स्त्रियों) के भावों की अभिव्यक्तिहोती है ।

दूतियों के भेद:—नायिका की सखी, नटी (अभिनेत्री आदि), दासी धात्रेयी (धाय, उपमाता की पुत्री), प्रतिवेशिनी (पड़ोस की स्त्री), बाला प्रव्रजिता (तापसी, संन्यासिनी), कारू (रजकी प्रभृति), शिल्पिनी (चित्रकारादि स्त्री) ताम्बूलिक, गान्धिकस्त्री प्रभृति तथा स्वयं नायिका भी, दूती का कार्य करती है। सखीदूती का उदाहरण देखें 'उद्वेग' का उदाहरण 'तुम्हारे वियोग में………" पृ० १६० ।

स्वयं दूती:—यथा—"हे पथिक ! तुम पिपासित से (के सदृश) दिखाई पड़ते हो । तो अन्यत्र कहाँ जाते हो ? इस घर में घनरस (जल, यहाँ रति का प्रगाढ़ रस) पीने वाले को वारण करने (रोकने) वाला कोई नहीं है" ।[2]

दूती के गुण हैं—कला-कौशल, उत्साह, भक्ति, चित्तज्ञता (मन की बात जानना), स्मृति, माधुर्य, नर्म (परिहासादि)—विज्ञान, वाग्मिता ये दूतियाँ औचित्य के विचार से उत्तम, मध्यम तथा अधम होती हैं ।

---

१. अन्तिकगतमपि मामियमवलोकयतीव हन्त दृष्ट्वापि ।
सरस नखक्षतलक्षितमाविष्कुरुते भुजामूलम् ॥

२. पन्थिअ पिआसिओ विअलच्छीअसि जासि ता किमण्णत्तो ।
ण मणापि वारओ इध अत्थि घरे घणरसं पिअत्ताणम्

[पथिक पिपासित इव लक्ष्यसे यासितत्किमन्यतः ।
न मनागपि वारकोऽत्रगृहे घनरसं पिबताम् ॥]

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

षष्ठ अध्याय

शारदातनय के भावप्रकाश में शृंगार रसः—

बारहवीं शती का आरम्भिक काल, भोज एवं मम्मट के उपरान्त, शारदातनय का कार्यकाल है। भावों, अनुभावों एवं रसों के सम्बन्ध में शारदातनय की स्थापना भी विचारणीय है। भरत के नाट्यशास्त्र, धनंजय के दशरूपक एवं भोज के शृंगार-प्रकाश का आधार ग्रहण करते हुए भी शारदातनय ने अपनी स्थापनाओं में नवीनता उपस्थित की है। उनके अनुसार उद्दीपन विभाव आठ प्रकार के हैं—ललित, ललिताभास, स्थिर, चित्र, खर, रूक्ष, निन्दित एवं विकृत। इनमें से ललित और ललिताभास, शृंगार तथा हास्य के, स्थिर और चित्र, वीर तथा अद्भुत के, खर, रूक्ष, रौद्र एवं करुण के तथा विकृत भयानक का और निन्दित बीभत्स का विभाव है।

ललित विभावः—ललित विभाव वे विभाव हैं जो विषयानुकूल इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण किये जाकर शृंगारोत्कर्ष के हेतु होते हैं। अतएव रखना एवं कर्णेन्द्रिय के द्वारा ग्रहीत सुस्वादु व्यंजनादि एवं मधुर ध्वनि के द्वारा ग्रहीत सुख, नेत्रों कोप्राप्त सुन्दर रूप-दर्शन, त्वचा को प्राप्त सुस्पर्श, नासिका को प्राप्त सुगन्ध आदि अवसरानुकूल शृंगार के पोषक उद्दीपन विभाव हैं।

ललिताभास विभावः—वे संसूचित (विज्ञात वा विज्ञापित), श्रुत (सुने गये), दृष्ट (देखे गये) एवं स्मृत (स्मरण किये गये) भाव हैं जो हास्य सम्पत्ति के प्रकाशक हैं।

स्थिर विभावः—वे श्रुत, दृष्ट, स्मृत एवं ख्यात विभाव है जो स्थैर्य (दृढ़ता, प्रगाढ़ता) के हेतु अतएव वीराख्य-रसपोषक कहे गये हैं।

चित्र विभावः—वे विचित्रता के जनक भाव हैं जो अद्भुत ऐश्वर्य (विभूति) के भावक कहे गये हैं।

रूक्षविभावः—वे उद्दीपक भाव हैं जो गोचर विषयों के द्वारा अक्षों (इन्द्रियों) को तत्क्षण-क्लेश पहुंचाते हैं। ये रूक्ष भाव करुणोत्पत्तिकारक होते हैं।

खर विभावः—ऐसे विभाव हैं जो मन द्वारा ग्रहण किये जाने मात्र से ही कातरता (व्याकुलता, कष्ट, अधैर्य) उत्पन्न करते तथा रौद्र रस के उत्कर्ष (उन्नति) में सहायक होते हैं।

निन्दित बिभावः—वे भाव हैं जिनके (प्रभाव के) द्वारा, जिनके कारण आँखें द्रुत (शीघ्र) निमीलित पक्ष्मावृत हो जाती, मुंद जाती हैं, एवं

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

स्पृहा-रहित हो जाती है। उक्त भीषण दृश्य की पुनर्दर्शनेच्छा से विरत हो जाती हैं (ये भाव बीभत्सोल्लासकारक कहे गये हैं।

विकृत विभावः—इन्द्रियों के संपर्क से दूषित इन्द्रियों के विषय, जो विकार उत्पन्न करते हैं वे ही विकृत भाव भयानक के विभाव कहे जाते हैं।

मधुर, सुकुमार एवं रूपयौवनशाली तन्वंगी और तरुण व्यक्ति शृंगार के आलम्बन कहे जाते हैं। शेष रसों के आलम्बन विभाव 'विभाव प्रकाश' के 'प्रथमोऽधिकार' में वर्णित हैं।

भाव प्रकाश में अनुभावः—विभावों के उपर्युक्त विवरण के उपरान्त शारदातनय ने अनुभावों का वर्णन किया है। अनुभावों के इस विवरण में भोज के 'सरस्वती-कंठाभरण' से प्रेरणा ली गई है। तदनुसार अनुभावों के चार वर्ग माने गए हैं—मनारम्भ (मन से उत्पन्न), वागारम्भ (वाणी से उत्पन्न), गात्रारम्भ (शरीर से उत्पन्न) एवं बुद्ध्यारम्भ।

मनारम्भानुभावः—योषिताओं के दशभावादि—भाव, हाव, हेलादि मनारम्भानुभाव के अन्तर्गत आते हैं।

गात्रारम्भानुभावः—लीला, विलास, विभ्रम आदि स्त्रियों के अलंकार गात्रारम्भानुभाव कहे जाते हैं।

वागारम्भानुभाव—प्रलाप, विलाप, अनुलापादि द्वादशालाप वागारम्भानुभाव के अन्तर्गत आते हैं।

बुद्ध्यारम्भानुभवाः—इसके अन्तर्गत वैदर्भी, पांचाली आदि चार रीतियां भारती, सात्वती आदि चार वृत्तियां एवं चार प्रवृत्तियां आती हैं।

पौरुषगात्रारम्भानुभावः—शोभा, विलास, धैर्य, गाम्भीर्य आदि आठ पौरुष अलंकार भी गात्रारम्भानुभाव के अन्तर्गत माने गये हैं।

स्त्रियों के मानसानुभावः—वाचिक, आङ्गिक, सात्विक एवं आहार्य अभिनयों के द्वारा अन्तःकरण को भावित करने वाले अलंकार भाव कहे जाते हैं।

हावः—भावों से किंचित् प्रकर्षवान् (उत्कृष्ट) ग्रीवा, नासिका, नेत्र एवं भ्रूआदि के विलास हाव कहे जाते हैं।

हेलाः—शृंगार के आकार (इंगित, चेष्टा) के सूचक ललित हाव ही हेला कहे जाते हैं।

शोभा कान्तिः—मन्मथ (काम) को आप्यायित (तुष्ट) करने वाली रूप, उपभोग, तारुण्य, संबंधिनी आङ्गिक छवि को शोभा एवं कान्ति कहते हैं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

दीप्तिः—देश, काल एवं गुणादि से उद्दीप्त कान्ति ही विस्तार को प्राप्त होकर दीप्ति कही जाती है।[१]

माधुर्यः—सभी अवस्थाओं में चेष्टाओं की मृदुकारिता को माधुर्य कहते हैं।

प्रागल्भ्यः— सब प्रकार से एवं पूर्णतः निस्साध्वसत्व (निर्भयता) का प्रयोग प्रागल्भ्य कहा जाता है।

धैर्यः—आत्मसम्मान एवं प्रतिष्ठा का दृढ़ता पूर्वक ग्रहण धैर्य कहा जाता है।

औदार्यः—सत्त्वावस्था (सत्व=धर्म, सत्य) का अनुसरण करने वाले विद्वान पुरुषों के प्रश्रय (विनय, प्रीति) को औदर्य कहते हैं। उपर्युक्त भाव, हावादि दश अलंकार सात्विक अलंकार कहे जाते हैं।[१]

नारीगात्रारम्भानुभाव वा शरीरालंकारः—स्त्रियों के दश शारीर अलंकार हैं—लीला, विलास, विच्छित्ति, विभ्रम, किलकिंचित, मोट्टायित, कुट्टमित, विव्वोक, ललित एवं विहृत।

लीलाः—मन को मधुर लगने वाले, प्रीतिपूर्वक आयोजित वागङ्ग चेष्टितों (वाचिक एवं आङ्गिक चेष्टाओं) से युक्त पुरुष एवं स्त्रियों के द्वारा किये गये प्रिय के अनुकरण को लीला कहते हैं।

विलासः—प्रिय-संगम काल में, आङ्गिक क्रियाओं में, नेत्र, भ्रू,मुख के कर्मों की विशेषता को विलास कहते हैं।

विच्छित्तिः—परा (श्रेष्ठा) शोभा को उत्पन्न करने वाला अनुभाव विच्छित्ति कहा जाता है।

विभ्रमः—अभीष्ट के दर्शन से जनित हर्षातिरेक तथा त्वरा के कारण वाचिक, आङ्गिक, सात्विक अभिनयों, अभिव्यक्तियों तथा आभूषणों के (धारण काल में) स्थान में व्यत्यय (गड़बड़ी) हो जाय तो उस अनुभाव को विभ्रम कहते हैं।

किलकिंचितः—क्रोध, अभिलाष, हर्षादि भावों के संकर (मिश्रण) को किलकिंचित कहते हैं।

मोट्टायितः—प्रिय की स्तुति, कथा (गुणकथनादि) आलाप, (संभाषण) सुनने एवं लीला हेलादि के दर्शन से उन्ही भावों सेभावित (अधिवासित, सिक्त) हो जाने को मोट्टायित कहते हैं।

---

१. भावो हावश्च हेला च शोभा कान्तिः सदीप्तिका।
प्रागल्भ्यं धैर्यं मौदार्यं माधुर्यमिति सात्विका॥ भा० प्र० १.८.२३-२४

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कुट्टमित:—आनन्द (प्रीति) पूर्वक अधर-केश-ग्रहणादि, सौख्य (प्रीति हर्ष, आमोद, प्रमोद) प्रदायि उपचारों (क्रियाओं, व्यवहारों) से दुःखोपचारवत् कुपित होना कुट्टामित कहा जाता है। यह कोप, प्रदर्शन मात्र होता है।

विव्वोक:—अभीष्ट (इच्छित) भाव (स्थिति) के उपगमन (अङ्गीकार, प्राप्ति) तथा अभीष्ट (प्रिय) के दर्शन होने पर गर्व अथवा अभिमान के कारण अनादर क्रिया को विव्वोक कहते हैं।[1]

ललित:—अङ्गों के सुकुमार विन्यास (स्थापना, रचना), भ्रू, नेत्र, अधर आदि की अनुल्बण (अस्पष्ट) मसृण क्रियाओं को ललित कहते हैं।

विहृत:—स्वभाव, व्रीड़ा, मान अथवा ईर्ष्या के कारण अवसर प्राप्त होने पर भी उत्तर न देना विहृत नामक अनुभाव है।

पौरुषगत्रारम्भानुभाव:—शोभा, विलास, माधुर्य, गाम्भीर्य धैर्य, ललित, औदार्य और तेज पौरुष सत्व के भेद हैं।[2]

शोभा:—दक्षता (सामर्थ्य) शौर्य, उत्साह, नीच से कुत्सा (घृणा) अधिक से वारम्बार स्पर्धा करना शोभा है।

माधुर्य:—चेष्टित, आलाप, स्पर्श में स्पृहणीयता को माधुर्य कहते हैं। श्रृंगार युक्त चेष्टादि का वांछनीय होना ही माधुर्य है। उनकी वांछनीयता माधुर्य नहीं है।

विलास:—वृषयान अर्थात् वृष (बैल) के समान श्रेष्ठ- भद्र गमन (गति, चाल), स्मित (श्रेष्ठ हास्य) एवं आलाप को विलास कहते हैं।

गाम्भीर्य:—अविज्ञात इंगित (अभिप्रायनुरूप चेष्टा का आविष्करण, संकेत) आकार (इत्यादि सूचक मुखराग आदि की वैकृति) आदि के भाव (स्थित, सत्ता) को गाम्भीर्य कहते हैं।

ललित:—श्रृंगारमय चेष्टाओं को ललित कहा गया है।

औदार्य:—प्रिय (प्रीतिकर) आलाप, उदार (सरल) स्मित एवं दान को औदार्य कहा जाता है।

तेज:—अवमान (अपमान का न सहना ही तेज है।

---

१. गर्वोमदोऽभिमान: स्यादहंकारस्त्वहं कृतिः।
स्यादुद्धतमनस्कत्वे मानाश्चित्तसमुन्नतिः ॥ श० कल्प० पृ० ७४

२. गात्रारम्भानुभावांस्तानिमान्पश्यन्ति सूरयः।
शोभा विलासो माधुर्यं गाम्भीर्यं धैर्यमेव च ॥
ललितौदार्यतेजांसि सत्त्व भेदास्तु पौरुषाः।
भा०प्र०१.९.२३.२४;१०.१

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

वागारम्भानुभाव:—निम्नोक्त बारह हैं—आलाप, प्रलाप, विलाप, अनुलाप, संलाप, संदेश तथा अतिदेश, निर्देश उपदेश, अपदेश, व्यपदेश। इनकी परिभाषयें 'प्रथमोऽधिकार' पृ० १०-११ में द्रष्टव्य हैं।

बुद्धयारम्भानुभाव:—इसके अन्तर्गत वैदर्भी, पाञ्चाली, लाटी, गौड़ी—ये प्रसिद्ध चार रीतियाँ हैं। शारदातनय ने इनके अतिरिक्त 'सौराष्ट्री, द्राविड़ी दो और रीतियों का उल्लेख किया है।

'ऋग्यजुस्सामाथर्वसंभावा' भारती, सात्त्वती, कैशिकी एवं आरभटी ये चार चार वृत्तियाँ तथा दाक्षिणात्या, आवन्त्या, पौरस्त्या तथा ओड्रमागधी—ये चार प्रवृत्तियाँ भी बुद्धयारम्भानुभाव मानी गई हैं।

रस और उनके भेद:—'भावप्रकाशन' के 'तृतीयोऽधिकार' में शारदातनय ने रसों के विभागों का उल्लेख किया है। प्रत्येक रस के तीन प्रकार बताये गये हैं।

श्रृंगार के भेदः—तदनुसार श्रृङ्गार के तीन भेद हैं—वाचिक, नैपथ्यात्मा एवं क्रियात्मा (क्रियात्मक)

वाचिक श्रृंगार:—वह है जो भावगर्भ रहःसंवित (रहः—एकान्त, गोपनीय, संवित=अंगीकार, एकान्त में क्रियाकारी), मधुर नर्म-पेशल (परिहास-शोभा) अर्थात् विनोद-केलियुक्त होने के कारण सुन्दर, सुवृत्त एवं श्रवणानन्दी (कानों को आनन्द देने वाला) होता है।

आङ्गिक श्रृंगार:—वास, अङ्गराग, भूषा (अलंकार) एवं माल्य (पुष्प स्रक्) से युक्त, प्रसाधित प्राप्तयौवन अङ्गों का जो श्रृंगार है वह आङ्गिक श्रृंगार है।

क्रियात्मक श्रृंगार:—दन्तच्छेद, नखच्छेद, मणित (मैथुनकालीन वाक्य रतिकूजितम्), सीत्कार, चुम्बन, चूषण (पीना), शयनादि के उपचार संगीत की क्रियादि के भाव से युक्त श्रृंगार है।

इसी प्रकार शारदातनय ने हास्य के तीन प्रकार—वाचिक, नैपथ्यज एवं आङ्गिक—बताये हैं। हंसाने वाले वाक्यों के प्रयोग को वाचिक हास्य, माल्य, आभरण, वस्त्रादि के विपर्यय पूर्वक निक्षेप (धारण) को नैपथ्यज हास्य, स्वभाव अथवा कपट से अंगों के विकराल (भयंकर) अभिनय को आङ्गिक हास्य कहते हैं।

वीररस के तीन प्रकार—युद्धवीर, दानवीर, दयावीर।

युद्धवीर :-–निरायुध, एकायुध अथवा एकाकी, हीनपरिच्छद होते हुए भी जिसमें अभीति (भय का अभाव), बहुत लोगों से युद्ध करने का

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

व्यवसाय (उपजीविका, अनुष्ठान), रण में मद, शस्त्रास्त्र-घात के समय हर्ष, समर से अपलायन, भीताभयप्रदान (डरे हुए को अभय-दान), प्रपन्न की आर्त्ति (पीड़ा) के भंजन का गुण, सामर्थ्य, जिसमें हो वह युद्ध-वीर है।

दानवीर :—अर्थी (याचक) को अधिक मात्रा में ईप्सित अर्थ (धन) प्रदान से, जो अनेक पुनरायात (पुनः आये हुए) याचकों, स्वजनों एवं इतर जनों को दान एवं मधुर वाक्यों द्वारा मान-प्रदान करता है वह दान-वीर कहा जाता है।

दयावीर :—व्याधि, दरिद्रता, शस्त्रास्त्र, क्षुधा, पिपासा आदि से पीड़ित जनों पर अनग्रह करने वाला दया वीर है।

अद्भुत के तीन प्रकार हैं—मानसाद्भुत, आंगिक अद्भुत एवं वाचिकाद्भुत।

मानसाद्भुत :—ध्यान, नेत्रों में विस्तार, मुख और दृष्टि में प्रसन्नता, आनन्दाश्रु, सरोमांच एवं अनिमेषावलोकन, मन का अनिश्चलत्व मानसाद्भुत के लक्षण हैं।

आंगिकाद्भुत :—वस्त्र एवं अंगुलियों का भ्रमण, उठ-उठ कर बहुत बोलना, दान-प्रबन्ध (दान का अविच्छिन्न क्रम), नटन, (नृत्य करना), परस्पर आलिंगन करना, भुजाओं एवं भुजातल (नीचे का) भाग का ठोंकना (ताल मारना) आदि विकारों को आंगिकाद्भुत कहते हैं।

वाचिकाद्भुत :—इसमें हाहाकार, साधुवाद, कपोलस्फालन ध्वनि (गाल बजाना), उच्च स्वर में हास, हर्ष-सूचक घोष, गीत एवं उच्चावच (विभिन्न प्रकार के) वचन बोलना आदि विकार परिलक्षित होते हैं।

संभोग एवं वियोग श्रृंगार, उसकी महत्ता एवं व्यापकता :—इसी प्रकार शेष रसों के भी भेद गिनाये गये हैं जो 'तृतीयोऽधिकार' पृ० ६६-६७ में द्रष्टव्य हैं।

चतुर्थ अधिकार (प्रकरण) में भाव प्रकाशनकार ने श्रृंगार रस के भेद-प्रभेद एवं नायक नायिकाओं के विवरण दिये हैं। तदनुसार रस के आलम्बन भावों के साधारण गुण सुख की ईप्सायें अर्थात् भोग हैं जो सुख के साधनस्वरूप हैं। शृङ्गार में भोग विशेषतः विद्यमान रहता है अतएव उसका सविस्तार कथन किया गया है। भोगोपभोग संभोग पर्याय वाचक हैं। संभोग में सर्वत्र जन्तुओं की मानसी (मनोभावा) रति होती है जो सराग युवा-युवतियों की मुख्य-वृत्ति मानी गई है। भोग्य-द्रव्य के उपभोग को ही भोग कहा जाता है। सब देश तथा सब काल में उपभोग अर्थात् कामोपचार, सम्भोग, एवं काम, शक्तिशाली होता है। अतएव स्त्री और पुरुषों के सुख का

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कारण होता है। यह सुख ही आनन्द का सम्भेद है जो स्त्री पुरुष के परस्पर सम्पर्क से उत्पन्न होता है। यह सुखोपचार ही श्रृंगारगत आनन्दकारक कर्म कहा गया है। यतः शृङ्गार प्रमदाओं के आमोद का कारण एवं सुखाश्रय होता है अतएव उसका सुविस्तर वर्णन किया जाता है। अपने विभावों से वर्धित एवं विहित रूप में अनुभूतित रति को ही स्थायी-भाव कहा गया है। परस्पर-स्वसंवेद्य सुख एवं संवेदनात्मिका अनुभूति सराग स्त्री-पुरुष के रति का स्वरूप है।

प्रेम की परिभाषा :—अन्योन्य भोग्य-बुद्धि वाले स्त्री पुरुष का ऐकान्तिक रति-भाव, प्रेम से अंकुरित, मान से पल्लवित, प्रणय से कोरकित रकित, स्नेह से कुमुमित, राग से फलवान एवं अनुराग से भोग्य, होता है। 'इ' शब्द से वाच्य मदन, प्रकर्षतः प्रेम में परिमिति एवं अधिष्ठित होकर युवा-युवती के परस्पर रति का आश्रय कहा जाता है। विभावादिकों से पुष्ट प्रेम ही रति का पोषण करता है। यह रति ही अत्यन्त सरलता से प्रीतिकारक कौटिल्य को उत्पन्न करता है। इस प्रेम-कौटिल्य के कारण नायिका के मनोरथ का निरोधन होता है। यह मनोरथ-निरोधन मान कहा जाता है। 'मा' एवं 'न' की पुनरुक्ति (वीप्सा) रोध का सूचक होने के कारण बुधजन के द्वारा मान कहा गया है।

मान के भेद:—स्त्री-पुरुष के मान दो प्रकार के होते हैं—ईर्ष्यामान एवं प्रणयमान। सपत्नी के दर्शन, स्पर्श एवं श्रवण की असहता एवं स्थिर ईर्ष्या के कारण प्रणय में जो रोष उत्पन्न होता है उसे स्त्री का ईर्ष्यामान कहा जाता है।

मान:—जो अपने प्रियत्व के कारण श्रृंगार में स्थान पाता है, जो प्रिय-प्रिया के प्रेम को मापता है वह मान कहा जाता है।

प्रणयः—युवा-युवतियों के द्वारा बाह्याभ्यन्तर श्रृंगारिक उपचार, मान प्रकर्ष, रोषास्वाद आदि के कारण जब प्रेम समुन्नत दशा को प्राप्त होता है तो वह प्रणय कहा जाता है।

प्रणय मानः—वह मान है जो दो (प्रिय-प्रिया) के प्रति समान प्रणय होने के कारण उत्पन्न होता है तथा जो अभीष्ट अर्थ के अनुकूल होने के कारण ईर्ष्या की अवस्था में भी प्रसाद अर्थात् प्रसक्ति की सृष्टि करता है। यह प्रणयमान युवक और युवती दोनों के हृदय मे उत्पन्न हो सकता है, किन्तु ईर्ष्यामान केवल योषिताओं में ही पाया जाता है, क्योंकि पुरुषों में ईर्ष्यामान तुरन्त वैर का रूप धारण कर लेता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

स्नेहः—स्वतः कुटिलता से युक्त प्रेम यदि मान से अन्वित हो तो भी यदि हृदय में विषय (अभीष्ट) के प्रति ममत्व एवं द्रवार्द्रत्व हो तथा आत्मा, भय और शंका से रहित हो जाय तो उस दशा को स्नेह कहते हैं। उक्त द्रव 'द्रवार्द्रत्व' दो प्रकार से होता है—दर्शन से एवं स्पर्शन से। स्पर्श से द्रवत्व उसी प्रकार उद्‌भूत होता है, जैसे वह्नि संस्पर्श से जतु। दर्शन से द्रव चन्द्रकान्तवत् (चन्द्रमा की किरणों के दर्शनमात्र से द्रवित चन्द्रकान्तमणि के समान) उत्पन्न होता है।

छल के भाव अथवा अभाव की दृष्टि से स्नेह के दो भेद होते हैं—कृत्रिम एवं अकृत्रिम। सोपाधि (छलयुक्त) स्नेह कृत्रिम एवं निरुपाधि (निश्छल) स्नेह अकृत्रिम कहा जाता है।

वियोगज दुःख के प्रभाव के स्वरूप की दृष्टि से प्रौढ़, मध्य, मन्द-विभाग से स्नेह के पुनरपि तीन प्रकार होते हैं। प्रतियोगी (सहयोगी, प्रिय) के विदेशस्थ, मृत वा दुर्बल होने के कारण धर्मी युवा-युवती को जो क्लेशकारी होता है वह स्नेह 'प्रौढ़-स्नेह' कहा जाता है। उक्त प्रकार के सहयोगी के वियोग की अनुभूति से जब स्नेह की अतिरंजना (अतिवृत्ति) होती है तो वह 'मध्य-स्नेह' कहा जाता है। तदात्व (वर्तमान काल, तत्काल) ही व्यसनापत्ति मात्रक (कामज-दुःखयुक्त) स्नेह 'मन्द स्नेह' कहा जाता है।

उत्तम, मध्यम एवं नीच पात्र-गतत्व की दृष्टि से स्नेह स्थिर, गत्वर एवं नश्वर त्रिधा होता है। उत्तम पात्र में अवस्थित होने अथवा उपकारापेक्षा न होते हुए जो स्नेह वृद्धि को प्राप्त होता है वह स्नेह-स्थिर कहा जाता है। वह स्नेह जो, बहूपकाराप्रभव एवं उपकारापेक्षी होता है, वह मध्यम पात्र में अवस्थित एवं बर्धित स्नेह 'गत्वर-स्नेह' कहा जाता है। दोषश्रवणमात्र से सौमनस्य का त्याग कर जो स्नेह प्रातिकूल्य में प्रवर्तित होता हे वह नश्वर-स्नेह कहा गया है।

रागः—गुण (सत्व, रज, तम,), द्रव्य (पंचमहाभूत एवं कालदिक् आत्मा एवं मन), देश काल आदि के प्रभवानुसार जो चित्त को दीप्त अथवा रंजित करता है वह राग कहा जाता है। यह राग स्थिरता एवं अनस्थिरता की दृष्टि से तीन प्रकार का होता है—नीली, कुसुम्भ एवं मांजिष्ठा। जो राग क्षालित होने पर भी नही जाता तथा बहुत शोभित (प्रदर्शित) नही होता वह नीली राग है।

मंजिष्ठारागः—वह राग है जो क्षालित होने पर जाता (नष्ट होता) ता नहीं किन्तु शोभित भी बहुत होता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

कुसुम्भरागः—वह राग है जो क्षालित होने पर अर्थात् परीक्षित होने पर नष्ट हो जाता है किन्तु प्रत्यक्षतः शोभित होता है।

इनमें से मंजिष्ठा राग ज्येष्ठ (उत्तम), नीली राग (मध्यम) एवं कुसुम्भ राग (अधम) कहा जाता है। अनुवृत्त (अनुसृत, आचारित) एवं अविच्छिन्न राग को 'अनुराग कहते हैं। उक्त प्रेमादि भाव शृंगारालम्बनाश्रय होते हैं।

इसके उपरान्त शारदातनय ने शृंगारोचित देश (आराम सरिच्छैलादि), कला (संगति विद्यादि), काल (दिवा रात्रिचन्द्रार्कास्तमादयः), वेष (अलंकार युक्ति आदि) बाह्य चेष्टाप्रकार (उद्यान-यात्रामदिरावारिकेलिरतोत्सवादि), दिवा विहारदेश (प्रासाद, मण्डप, भवन आदि), निशाविहार देश (संगीतशाला वारान्तःपुर आदि), दिवा-चेष्टा (उद्यानयात्रा, सलिलक्रीड़ा द्यूतादि) निशा-चेष्टा (मदिरादि,), शृंगारोचित-काल-गुण (चन्द्रिका कोकिलालापादि), द्रव्य (चन्दन, सुगन्धि आदि), क्रिया (उद्यान-यात्रा, मदिरापानादि) का वर्णन किया है। ऋतुओं के अनुसार गन्ध, सुरभि, सलिल क्रीड़ादि रागदीपनों का भी वर्णन किया है जो द्रष्टव्य है।

शृंगार के भेदः—प्रिय के सामीप्य अथवा दूरस्थता की दृष्टि से शृंगार के तीन भेद किये गये हैं—वियोग, अयोग एवं सम्भोग विभावादि से पुष्ट राग से समन्वित नायक-नायिका की असंगति को अयोग कहते हैं।

बियोग—संभोग मे मग्न प्रिय-प्रिया के विप्रकर्ष (दूरस्थता) को वियोग कहते हैं।

यह वियोग दो प्रकार का होता है—मानकृत एवं प्रवासकृत।

मानकृत बियोगः—प्रणय-मान एवं ईर्ष्यामान के कारण होता है। ईर्ष्यामान तीन प्रकार से उत्पन्न होता है—अनुमान से, प्रत्यक्ष ज्ञान से तथा श्रवण से। यह तीन प्रकार से विभावित (पुष्ट) होता है—गोत्रस्खलन, भोगांक और उत्स्वपनाइत से। प्रणयेर्ष्यामान को दूर करने के लिए साम, दान, भेद, नति, उपेक्षा एवं रसान्तर ये छः उपाय बताये गये हैं। प्रिय वचन को साम, सख्युपग्रह को भेद, एवं व्याज सी भूषादि दान को दान एवं पादपतन को नति, अवधीरण (तिरस्कार) को उपेक्षा, रभसत्रास हर्षादि से, कोपभ्रंश को रसान्तर कहते हैं।

प्रवासकृत वियोगः—भिन्न देशत्व को प्रवास कहते हैं। भिन्न देशत्व शाप से, सम्भ्रम से एवं बुद्धिपूर्वक होता है। बुद्धिपूर्व प्रवास भावी, भवन् (वर्तमान) एवं भूत तीन प्रकार का होता है। स्वरूप-परिवर्तन द्वारा अन्यथा भाव-करण को शाप कहते हैं। दिव्य अथवा मानुष विप्लव (उपद्रव, संकट)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

जो सहसा उत्पन्न होता है उसे सम्भ्रम कहते हैं। मरण भी वियोग का एक भेद माना गया है। किन्तु यह मत दूषित कहा गया है। मरण में प्रलाप एवं शोक पाया जाता है। प्रवास शाप-सम्भव भी होता है। सम्भ्रमजन्य एवं बुद्धिपूर्वप्रवास में कार्श्य (कृशता), श्वास, अश्रुनिर्गम एवं लम्बालकादि अनुभाव (प्रसाधन के अभाव में केशों का बढ़ जाना) पाये जाते हैं। साधारण्य (साधारणता, सार्वजनिकता) एवं विभावादि को दृष्टि में रखते हुए अयोग और वियोग श्रृंगार भी करुण के अनुरूप होते हैं किन्तु अयोग वियोगादि में रति के स्थाई भाव होने के कारण करुण से भेद हो जाता है। मरण यदि प्रत्युज्जीवन कांक्षा-सापेक्ष होता है तो दुःख साधारणात्मक होने के कारण वियोगोत्थ कहा जाता है। संभोग ही काम है जो चतुर्धा विभाजित किया गया है—मित, संकर, सम्पन्न, एवं समृद्धिमान।

मित संभोगः—वह है जब पारस्परिक संभोगोपचार के समय युवा युवती, साध्वस (क्षोभ, भय) आदि के कारण भोग-प्रयोग को, सीमित कर देते हैं।

संकर संभोगः—वह है जब प्रसाद के विद्यमान रहते हुए भी व्यलीकादि (अपरिचित, अनुचित) स्मृति आदि के कारण कोपानुवर्तन (क्रोधानुसरण) से सम्भोग संकीर्ण (विकृत) हो जाता है।

सम्पन्न सम्भोगः—वह होता है जब आयात (आये हुए) प्रोषित (प्रवासी) पति के द्वारा कामोपभोग सम्पन्न होता है।

समृद्धिमान सम्भोगः—वह है जब मृत-जीवित प्रिय प्रत्युज्जीवन हर्षादि के कारण सम्भोग दीपनातिशय (अतिशय उत्तेजन) से अत्यन्त दीप्त हो जाता है।

सम्भोगकालीन चेष्टा—चुम्बनालिङ्गनादि, स्तम्भ, रोमांच, स्वेद साध्वस, आदि सम्भोगकालीन चेष्टा कही जाती है।

वियोगकालीन चेष्टाः—शिशिराचार (जडवत व्यवहार), चिन्ता, निःश्वसित, स्तम्भ, वैस्वर्य, कम्प, अश्रु, प्रलयादि वियोगकालीन चेष्टायें हैं।

वियोग कालीन अवस्थायेः—ये अवस्थायें दश या बारह गिनाई गई हैं जो इस प्रकार हैं—इच्छा, उत्कंठा, अभिलाषा, चिन्ता, स्मृति, गुणास्तुति, उद्वेग, प्रलाप उन्माद, व्याधि। जाड्य और मरण भी मन्मथावस्था मानी जाती है किन्तु कुछ विद्वानों के द्वारा ये वर्जित हैं।

इसके उपरान्त शारदातनय ने उक्त अवस्थाओं के लक्षण, अनुभावादि गिनाये हैं जिनको विस्तार-भय से देना उचित नहीं समझा गया है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

शृंगारोचित पात्रः—ये पात्र नायक-नायिका, उनके सखा-सखी, विटादि सचिव, दूती और दूत हैं। नायक तीन प्रकार के होते हैं—ज्येष्ठ, मध्य और कनिष्ठ। सर्वगुणोपेत नायक ज्येष्ठ कहा जाता है। दो तीन या पांच, छः गुणों से हीन नायक मध्यम कहा जाता है। बहुत गुणों से हीन नायक अधम कहा जाता है।

स्वभाव-भेद से नायक चार प्रकार के माने गये हैं—ललित, धीरशान्त, धीरोदात्त और धीरोद्धत। राजभोगों के प्रति निश्चिन्त (उदासीन), यौवनाभोगभूषित, विलासी, भोग-रसिक एवं रति-प्रिय नायक ललित कहा जाता है। कलासक्त, क्षमायुक्त, कुछ-कुछ गम्भीर एवं कुछ ललित आदि के गुणों से युक्त नायक धीरशान्त होता है। महासत्व, अतिगम्भीर, क्षमावान, अविकत्थन (अनात्मश्लाघाकर) स्थिर, निगूढ़ाहंकार और दृढ़व्रत नायक धीरोदात्त होता है। विकत्थन, चल, चण्ड, मायावी, छद्मपरायण, समत्सर एवं अहंकारी नायक धीरोद्धत होता है।

नायिकाओं के प्रति व्यवहार की दृष्टि से नायकों के पुनः चार भेद माने गये हैं अनुकूल, दक्षिण, शठ एवं धृष्ट। इस प्रकार के नायकों के ४८ भेद गिनाये गये हैं। इसके उपरान्त उपनायक—नर्म-सचिव, काम-सचिव (पीठमर्द, विट, विदूषकादि), धर्मसचिव (ऋत्विज, पुरोहित, तपस्वी, वेदविद् ब्राह्मण आदि), अर्थ सचिव (मन्त्री, सैन्यपाल, कुमार सुहृदादि) के संक्षिप्त विवरण दिये गये हैं। तदुपरान्त कथिनी, लिङ्गिनी, दासी, कुमारी, कारुशिल्पिनी, पाखण्डिनी, प्रतिवेश्या, सखी, रंगोपजीविनी प्रेक्षणिका का (तमाशा, देखने की शौकीन) एवं धात्रेयिका आदि स्त्री पुरुषों की दूतियों का उल्लेख किया गया है।

विभिन्न दृष्टियों से नायिका-भेदः—

त्रिविधा नायिकाः—नायक के साथ सम्बन्ध की दृष्टि से नायिका के तीन भेद किये गये हैं—स्वा, अन्या एवं साधारणी। स्वीयानायिका मुग्धा, मध्या एवंप्रगल्भा होती है। मध्या नायिका अधीरा, धीरा, धीराधीरा होती है। प्रगल्भा और मध्यमा नायिकायें क्रम से ज्येष्ठा और कनिष्ठा होती हैं। इन दोनों के भी उदात्त, ललित एवं शान्त भेद से तीन प्रकार होते हैं। अन्याङ्गना ऊढ़ा और कन्यका होती है। साधारण स्त्री और गणिका में कोई-प्रभेद नही होता। स्वीया के तेरह भेद, अन्याङ्गना के दो भेद, एवं वेश्या का एक भेद उक्त नायिकाओं की दृष्टि से उत्तमाधममध्यमा तीन प्रकार की होती हैं।

इसके आगे शारदातनय ने अन्या एवं गणिका नायिकाओं की अवस्थाओं, (विरहोत्मना, अभिसारिका, विप्रयलब्धादि) भेद-निरूपण, स्वीया और अन्य

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

के स्वरूप, स्वान्यागणिकाओं के अभिप्रायभेद, रति में मुग्धा, मध्या, प्रगल्मा, धीरा, अधीरा धीराधीरा के स्वरूप का वर्णन किया है। तदुपरान्त उदात्ता, उद्धता, शान्ता एवं ललिता नायिकाओं के स्वरूप और चेष्टाओं का विवरण दिया गया है जिसका ग्रन्थ विस्तार के भय से यहाँ विवरण देना उचित नहीं समझा गया।

इसके उपरान्त खण्डिता, विप्रलब्धा, वासकसज्जा, स्वाधीनभर्तृका, कलहान्तरिता, प्रेषितभर्तृका, विरहोत्कण्ठिता, एवं अभिसारिका नायिकाओं के लक्षण और चे. ओं का वर्णन किया गया है जो निम्नलिखित है। इन नायिकाओं की उक्त आठ अवस्थायें होती हैं।

खण्डिता नायिका:—वह नायिका है जो अन्य नायिका के व्यासंग के कारण प्रातःकाल विलम्ब से आये हुए पति के शरीर पर भोगाङ्क देख कर खिन्न होती है। इस नायिका की चेष्टाये हैं—भयभीत होना, चिन्ता करना, चुप रहना, प्रिय का ध्यान करना, क्लेशानुभूति करना, खिन्न होना दीर्घश्वास लेना और रोना आदि।

विप्रलब्धा नायिका:—इसका नायक समय निश्चित किये जाने, संकेत देने, एवं दूती के प्रेषण करने पर भी नायिका के समीप नही आता। चिन्ता निःश्वास, खे,द हृत्ताप, मूर्च्छना, प्रलाप, जागरण आदि कार्य विप्रलब्धा की, विक्रियायें है।

वासकसज्जा:—वह नायिका है जो भोगोपकरणों से सज्जित वास-वेश्म में भोग शयन पर आसीन होकर प्रिय की प्रतीक्षा करती है। सखी के साथ विनोद, संभोगमनोरथ का विचिन्तन, हृल्लेख (औत्सुक्य) श्वसित, दूती प्रत्यागमन चिन्तनादि वासकसज्जा की विक्रियाएँ हैं।

स्वाधीनभर्तृका नायिका:—वह नायिका है जिसका दयित सदैव उसके साथ रहता हैं तथा रति-रसास्वादन से मुदित रहती है। उद्यान, सलिलक्रीड़ा, कुसुमापचयक्रीड़ा, आपान-केलि (मद्यपानार्थ गोष्ठिका) 'आदि स्वाधीनभर्तृका के विलास हैं।

कलहान्तरिता नायिका:—वह नायिका है जो श्रृंगार पर कृतापराध प्रिय के प्रणत होने पर भी ईर्ष्या-क्रोधवश दूर कर देती है, तदनन्तर पश्चात्ताप से तप्त होती है। हृद्दाह, सम्भ्रम, मोह, निश्वसित, ज्वर, मुहुर्मुहुः विलापादि इस नायिका की विक्रियाएँ हैं।

प्रोषितभर्तृका:—वह नायिका है जिसका प्रोषित (प्रवासी) पति उचित वा स्वयं दत्त समय पर अन्यनायिकाव्यासङ्ग (आसक्ति) के कारण नहीं

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

आता। मालिन्य, जागर, कार्श्य निमित्तादि परीक्षण, अङ्गसाद (विषाद, क्लान्ति) चिन्ता, जाड्य, शैया-रति प्रोषितनाथा की विक्रियायें हैं।

विरहोत्कण्ठिता नायिका:—इसका पति उचित दिवस के प्राप्त होने पर भी किसी हेतु से नहीं आता। अङ्गसाद, वेपथु अनुभूति, स्मृति, द्वेष, हृत्ताप, वाष्पनिर्गमन, दूती सख्यादि में विश्रम्भ, स्वीयावस्था का प्रदर्शन आदि इस नायिका के विकारज भाव हैं।

अभिसारिका नायिका के भेद:—अभिसारिका नायिकाओं के तीन भेद माने गये हैं—पराङ्गना, वेश्या और प्रेष्या। पराङ्गना नायिका अपने ही अङ्गों में विलीन होती हुई निश्शब्दपदसंचारा, पश्चान्निर्वर्तितपदा (रह रह कर पीछे पैर लौटाती हुई), पदे पदे शंकमाना, प्रभूत वेपथुमती (बहुत कांपती हुई), स्वेद-जल से स्नापिताङ्गा (नहलाये हुए अङ्गों वाली), शार्दूल-दर्शन-त्रस्त-हरिणी-शावक-वीक्षणा (दृष्टि वाली), ज्योत्स्नी, तमस्विनी-यान-योग्य-वेश-भूषिता। (चांदनी-तमोयुक्त रात्रि में गमन के योग्य वेश से सुसज्जिता) नीली, कुसुम्भ, मंजिष्ठा राग (रंग में रंजित), पट्टोत्तरीयक (रेशमी दुपट्टा) से युक्त अवगुंठितसर्वाङ्गी (परिवेष्टिता) शनैः शनैः अभिसरण करती है।

वेश्या अभिसारिका अविस्मरस्मित-मुखी, मदारुण-विलोचना, स्नातानुलिप्त-सर्वाङ्गी, नानाभरण-भूषिता, परिजनों से आवृत, स्फीत (बहुत अधिक भोगोप करणों से उज्ज्वल), नितम्बालम्बि-रशना-स्वनोद्भूत-मनोभवा (नितम्बों तक लटकती हुई करधनी की ध्वनि से उत्पन्न काम से युक्त), चरणाम्भो रुहरणन्-मणिमंजीरमंथरा (चरण कमलों में ध्वनि करते हुए मणि के नूपरों के कारण मन्दगति युक्त) एवं प्रसन्न होकर अभिसरण करती है।

प्रेष्या भिसारिका:—विस्रस्तबाहुविक्षेप (हाथ फेंकती हुई), स्रंसद्धम्मिल्लामलिका (लटके हुए बालों की माला से युक्त), व्याविद्धगतिसंचार (बाधित गति वाली), श्लथमानांशुकाचंला (ढ़ीले रेशमी अंचल वाली), प्रस्फुरद्भ्रूविलासश्री (फड़कते हुए भ्रू की शोभा से युक्त), विभ्रमोत्फुल्ल-लोचना (विभ्रम नामक हाव से विकासित नेत्र वाली), अविराम-आदर-समद-स्खलित जल्पिता (निरन्तर औत्सुक्य एवं मद के कारण स्खलित वाक्यों से युक्त) अभिसरण करती है।

इसके उपरान्त शारदातनय ने परागंना, वेश्या, एवं प्रेष्याभिसारिकाओं द्वारा सुप्त नायक के प्रबोधन का क्रम दिया है जो चतुर्थोधिकार के अन्त में द्रष्टव्य है। अन्त में उत्तमा, मध्यमा एवं अधमा नायिकाओं के गुणों का वर्णन है जो इस प्रकार है—

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उत्तमा नायिका:—भर्त्ता द्वारा अप्रिय कार्य किये जाने पर भी उसका प्रिय ही करती है तथा ईर्ष्या युक्त होती हुई भी प्रिय के अपराधों पर चुप हो जाती है।

मध्यमा नायिका:—यह स्वयं पति की कामना करती है एवं जो पुरुष के द्वारा काम्य (इच्छित) होती है, प्रिय के अपराध करने पर अपराध करती, अनृत बोलने पर अनृत (असत्य) बोलती, स्नेह करने पर स्नेह करती, उपकार करने पर उपकार करती है।

अधमा नायिका:—यह अकारण ही कोप करती, याचना करने पर कुछ नहीं देती, अरूप, रूपवन्त, गुणी, निर्गुण, जीर्ण वा युवा किसी भी पुरुष की कामनाकरती है एवं रोष, ईर्ष्या एवं कलह से आक्रान्त रहती है।

यौवन को अवस्थायें:—चतुर्थोधिकार में शारदातनय ने समस्त नायक एवं नायिकाओं एवं उनके सहायकों के पृथक्-पृथक् वर्णन एवं उनकी प्रवस्थाओं के विवरण दिये हैं। पंचमोधिकार में समस्त योषिताओं, युवकों, उनके यौवन तथा भेदादि का विवरण दिया है। शृंगार-रसाश्रय सत्वयुक्त अवान्तर नायक एवं नायिकाओं के भेद दिखाते हुए, गम्यागम्य भाव से उन (नायक-नायिकादि) में विरक्ति अथवा रति का विवरण दिया है। तदनुसार सर्व स्त्रीसमाज के यौवन के चार प्रकार कहे गये हैं। इन चारों प्रकारों के यौवनों के भिन्न-भिन्न विचेष्टित होते हैं।

प्रथम यौवन की अवस्था:—प्रथम यौवन में स्त्रियां आरूढ़राग, असमग्र अरुण अधर एवं नेत्र, स्मर-स्मेर (कामज मुसुकानयुक्त) मुखमण्डल-वाली, गर्वज-रजयुक्त गतिवाली अङ्गमुद्भिन्नलावण्ययुक्त (प्रस्फुट सौन्दर्ययुक्त अङ्गोंवाली), सौरभयुक्त आविर्वदन (सुगन्धयुक्त प्रकाशित मुखमण्डल वाली), उद्भिन्न स्तनवाली, किंचित् अविभक्त सन्धियों वाली, अभिरूप्य (मनोहर), अकाठिन्य (अकटोरता), अङ्गों के अनिमार्दव (माधुर्य) वाली होती है। प्रथम यौवन में स्त्रियां रतिक्लेश को सहने वाली, मृदुस्पर्शाभिलाषिणी, सम्मानित संस्कारयुक्त अङ्गों वाली, सखियों की केलि में लालसा वाली, सपत्नी-दर्शन पर न हर्ष न शोक वाली, वल्लभ के संगमावसर पर न राग न विराग ाली चेष्टाओं से युक्त होती है।

द्वितीय यौवनावस्था:—द्वितीय यौवनकाल में स्त्रियां पीनपयोधर वाली, पूर्णावयव एवं मन्थर गात्रवाली, आयत जघनवाली, कृशमध्य (कटि) वाली, समुन्नतश्रोणी (नितम्ब) वाली, स्फुट रोमराजिवाली, निम्ननाभि वाली, अभिव्यक्त वलित्रय (त्रिवली) वाली, करिकराकार ऊरू (जानुपरिभागवाली) रक्तिम पाणिपाद वाली, स्निग्ध अङ्गों केश, नेत्र एवं दन्तपंक्ति वाली होती हैं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

इस यौवन की निम्न चेष्टायें हैं—अपराध को न सहने वाली, अनुनय ०र प्रसन्न न होने वाली, ईर्ष्या करने वाली, प्रणय-क्रुद्धा होने वाली, प्रतिपक्षाभ्यसूयिनी, साभिप्राया, सखियों से स्नेह करने वाली, बन्धुओं के प्राप्त होने पर उन पर क्रोध करने वाली, मानग्रहण करने वाली, अनुनयादि की अविचलित होकर इच्छा करने वाली, रतिकेलि आदि में निभ्रित (वितीत, शान्त) रहने वाली, गर्विता, एकान्त की चेष्टा करने वाली होती हैं।

तृतीय यौवनावस्थाः--अधरों में राग, नेत्रों में अस्निग्धत्व, छाया (कान्ति) से रहित तीक्ष्ण स्पर्शित्व, श्लथावयवता, कपोलों का कान्ति-म्लानित्व तृतीय यौवन की अवस्थायें हैं। इसमें चेष्टाये— काम तन्त्र वैदग्ध्य, कान्ताभीष्टानुकूलता, अपराध के समय अनादर, प्रतिपक्षी से अमत्सर कान्त का अपरित्याग तथा उसके आकर्षण का कौशल आदि इस की अवस्थायें हैं।

चतुथ यौवन :—श्रोणी, स्तन, ऊरु, जघन, अधर एवं गण्डादि की निर्मांसता, जर्जरता एवं विलम्बित-कपोलता चतुर्थ यौवन की अवस्थायें है। इसकी चेष्टायें है—रति, व्यायाम, केलि में अशक्तता एवं अनुत्साह, प्रतिपक्षाकूलता, प्रिय के साथ आसन।

इसके उपरान्त स्त्री पुरुष के यौवन काल का निर्धारण, उसके द्वारा अभिगम्य स्त्री पुरुष का स्वरूप-वर्णन, वैशिक नायक-स्वरूप-दर्शन एवं उत्तम, मध्यम अधम वैशिक नायक के भेद बताये गये हैं।

वैशिक नायक के लक्षण:—वैशिक नायक शास्त्रवित, शीलसम्पन्न, रूपवान, प्रियदर्शन, विक्रान्त, धृतिमान्, वयोवेशकुलान्वित, सुरभि (मनोरम), मधुर, त्यागी, सहिष्णु, अविकत्थन, अशंकित, प्रियभाषी, चतुर, सुभग, शुचि, कामोपचार-कुशल, दक्षिण, देशकालवित, अदीनवाक्य, प्रियवाक्, वाग्मी, दक्ष, प्रियंवद्, अबुब्ध, सुखभोगी, श्रद्धान, दृढ़व्रत, गम्या स्त्री में भी अविश्रम्भी, (विश्वास न करने वाला) और मानी होता है। सर्वकलाओं का विशेषज्ञ होने एवं वेश्योपचार के कारण वह वैशिक कहा जाता है।

उत्तम नायकः—यह काम के वशीभूत नहीं होता, किन्तु वशंगत सा दीखता है। स्वभाव से आसक्त होते हुए भी सक्तवत् दिखाई पड़ता है। वह त्यागी, स्वभाव-मधुर, सम दुःख-सुख, शुचि, कामतन्त्र-निपुण, क्रुद्धानुनय, कोंबिद अनादर होने पर स्फुरित (अस्थिर), दयिता से किंचित विरक्त होता है।

मध्यम नायकः—यह नायक नायिका के अनुचित व्यवहार पर भी न क्रुद्ध होता है और न प्रसन्न होता है एवं समय-समय पर उसको वसनादि देता है तथा उसमें दोष देखकर उससे विरक्त होता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अधम नायक :—कामतन्त्र (व्यवहार) में निर्लज्ज, रतिकेलि में कर्कश, भय और अमर्ष से अविज्ञान, कृत्याकृत्यविमूढ़धी, मूर्ख, विरक्त स्त्रियों के प्रति भी प्रसक्त एवं मित्रों के द्वारा निवार्यमाण होने, पौरुष प्राप्त करने पर भी अन्य स्नेह परावृत एवं संयुक्तरमणा स्त्री की भी कामना करता है।

इसके उपरान्त स्त्रियों के द्वारा नायक के प्रीतिपूर्वक आह्वान में (प्रणयी, नाथ, स्वामी आदि) उपर्युक्त शब्दों की परिभाषा का विधान किया गया है। तब कोपसम्भवा स्त्रियों के द्वारा उपर्युक्त व्यवहार (वचन) का वर्णन है, जैसे—वाम, विरूप, शठ, निर्लज्ज आदि भोज के समान शारदातनय ने भी धर्म से अर्थ, अर्थ से काम, काम से सुख, फलोदय तथा सुख का मूल प्रमदाओं को मानकर उनसे सम्भोग का विधान किया है एवं अपने-अपने सत्व के समाश्रित नानाशीला स्त्रियों का वर्णन किया है।

शील के आधार पर नायिकाओं के भेद—

देवशीला :—प्रत्यङ्ग-उपाङ्ग में स्निग्धता, आरोग्य, आर्जव, दानेच्छा, संगीत-प्रेम, स्वेदाल्पत्व, रतिसाम्य, कृतज्ञता आदि उक्त नायिका के लक्षण हैं।

दैत्यशीला :—स्थिर-क्रोधा, शठा, अधर्मता, निष्ठुरभाषिणी, मद्यमांस-प्रिया, लुब्धा, चपला, कलहप्रिया, ईर्ष्यावती एवं चलस्नेहा होती है।

गन्धर्वशीला :—स्निग्धत्वक्केशनयना, नखदन्तक्षतप्रिया, आरामभंगया: मृद्वी, स्मितपूर्वाभिभाषिणी, तन्वी, संगीतसंसृष्टा (संसक्ता), मन्दापत्या (मन्दगर्भा) रतिप्रिया एवं पुष्पशय्याभिलाषिणी होती है।

यक्षाङ्गना :—स्वल्पविस्वेदकणिका, मद्यगन्धामिषप्रिया, प्रियंवदा, अदीर्घ-शायिनी, मेधाविनी एवं चिरविस्मृत दृष्टप्रिय के प्रति कृतज्ञ होती है।

राक्षसशीला :—बृहदायतसर्वाङ्गी, रूक्ष, विस्तीर्णलोचना, खररोमा, दिवास्वप्ननियता, उच्चभाषिणी, नखदन्तक्षतकरी, क्रोधेर्ष्याकलहप्रिया एवं निशाविहारशीला होती है।

पतत्रिशीला :—व्यावृत्तास्या, शीघ्रगति, क्षीणोद्यानफलप्रिया, नैकत्रनियता, तीक्ष्णा, चपला, बहुभाषिणी, प्रतिपत्तिपराङ्मुखी (कर्त्तव्य ज्ञान, ढंग के प्रति उदासीन) न्यूनाधिकाक्षिदन्तोष्ठकर्णस्तननखाङ्गलि, रोमशाङ्गी, महारावा, सुरति में कुत्सितक्रिया वालोद्वेगकरी, रात्रिचारिणी, अनृतभाषिणी एवं मद्यमांसप्रिया पिशाचशीला होती है।

व्यालशीला :—मानावमानरहिता, रूक्षत्वक्कटुकस्वप्ना, विशालाक्षी, शठा एवं धृष्टा होती है।

नागशीला :—निद्रालु, कोपना, तिर्यग्गति, ताम्रविलोचना, गन्धाभिला-षिणी, तीक्ष्णनासा, उग्रदशना चला एवं सदा श्वसनशालिनी होती है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

मर्त्यशीला :—ऋज्वी, सुहृत्प्रिया, देवगुरुभक्ता, उपचारपरा, नित्यमहंकारविवर्जिता, सुशीला, एवं गन्धमाल्यरतिप्रिया होती है।

कपिशीला :—अल्पगात्रा, फलारामप्रिया, पिंगलरोमदृक्, प्रसह्यफलशीला, तीक्ष्णा, चपला तथा शीघ्रकोपप्रसादा होती है।

हस्तिशीला :—मन्दायतगति, मन्दचेष्टा, अत्यशमलालसा तथा दीर्घरोषप्रसादा होती है।

मृगशीला :—शीघ्रगा, चपला, भीरु, गीतवाद्यरतिप्रिया, चलविस्तीर्णनयना, कोपना, विरहासहा, वन-शय्यासनप्रिया तथा मृगशीला होती है।

मत्स्यशीला :—बहुभृत्यवती, दूरगामिनी, सलिलप्रिया, दीर्घगात्री, दुराचारा एवं अनिमेषिणी होती है।

उष्ट्री :—दीर्घोन्नततरग्रीवा, लम्बोष्ठी, निष्ठुरस्वना, कट्वम्ललवणप्रीता एवं वनप्रिया होती है।

मकरसत्वा :—स्थूलशीर्षा, अंचितग्रीवा, कुटिलदारितास्या, महास्वप्ना एवं सर्वमत्स्यगुणयुता होती है।

खरशीला :—स्थूलजिह्वोष्ठदशना, रूक्षत्वक्-कटुभाषिणी, रतिप्रिया एवं सदा हृष्टा होती है।

शूकरशीला :—सपत्नीद्वेषिणी, रुष्टा, बह्वपत्या, दूरीरता, दीर्घास्या एवं पिंगदृग्रोमा होती है।

हयशीला :—विभक्त-पार्श्व-ऊरु-कटि-स्तन-श्रोणि-शिरोधरा, दानशीला, ऋजुस्थूलकेशा, मधुरभाषिणी, कोपना एवं रतिलोला होती है।

महिषशीला :—स्थूलदन्ता, पृथु श्रोणि, खररोमा, अरुणेक्षणा, अभीरु, उन्नतास्या, लोकद्विष्टा, रतिप्रिया, सलिलारण्यरसिका होती है।

अजशीला :—कृश, तरलदृक्, सूक्ष्म रोमा, तनुभुजान्तरा, (कृश छाती वाली), शीत-भीरु, जलोद्विग्ना, बह्वपत्या, वनप्रिया, उष्मलाङ्गी (गरम शरीरवाली) एवं सच्चरिष्णु होती है।

गोसत्वा :—पृथुपीनोन्नतश्रोणि, तनुजंघा, सुहृत्प्रिया, पितृदेवार्चनारता, दृढारम्भा, प्रजाहिता, स्थिरा एवं परक्लेशसहा होती है।

इसके उपरान्त शारदातनय ने वेश्या, कुलाङ्गना एवं अन्य नायिकाओं के लिए उचित उपचारों का वर्णन किया है। उन्होंने अ-रक्त, विरक्त एवं गन्तुकामा स्त्रियों के चिह्न, लिङ्गादि का उल्लेख करते हुए अन्त में सब रसों के उपयुक्त दृष्टिभेद का भी लक्षण दिया है। प्रसंगप्राप्त शृंगाररस के उपयुक्त दृष्टि के लक्षण हैं उनका हर्ष, प्रसाद-ललिता, कान्ता, मन्मथशालिनी (कामयुक्त) एवं विलास-भ्रूकटाक्षा होना।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

चौखम्बा संस्कृत सीरिज आफिस
वाराणसी-१

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection